प्रेक्षाध्यान : सिद्धान्त और प्रयोग

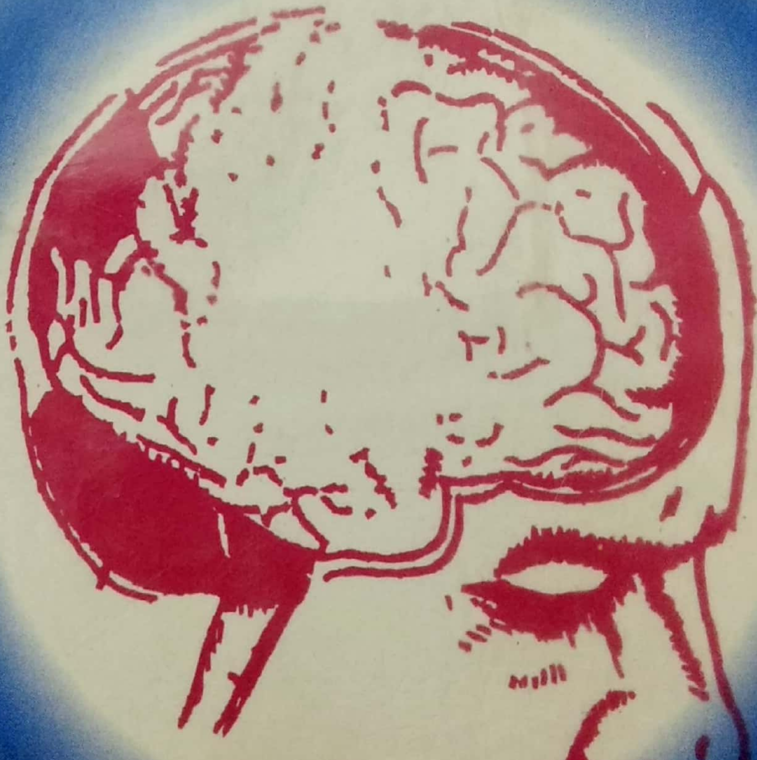

आचार्य महाप्रज्ञ

Scanned by CamScanner

प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग

(अजमेर विश्वविद्यालय द्वारा बी.ए. के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत "जीवन विज्ञान और जैन दर्शन" विषय के लिए स्वीकृत)

निदेशन :

आचार्य महाप्रज्ञ

समाकलन :

मुनि किशनलाल

(प्रेक्षा—प्राध्यापक)

शुभकरण सुराणा

(प्रेक्षा—प्रशिक्षक)

जैन विश्व भारती

लाडनूं-३४१३०६

(राजस्थान)

Scanned by CamScanner

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
लाडनूं-३४१३०६ (राजस्थान)

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

ISBN-81-7195-000-9

मूल्य : ४०.०० रुपये

सस्करण : 2003

मुद्रक : एस.एम प्रिन्टर्स उल्धनपुर, दिल्ली–32

PREKSHA-DHYAN : SIDDHANT AUR PRAYOG
Acharya Mahapragya

Rs. 40.00

Scanned by CamScanner

संबोध

जीवन के लिए रोटी अनिवार्य है। केवल रोटी ही अनिवार्य नहीं है, उससे भी अधिक अनिवार्य है–भावनात्मक और मानसिक स्वास्थ्य। जीवन विज्ञान का विषय जीविका के लिए अनुपयोगी नहीं है, किन्तु वह अधिक उपयोगी है भावनात्मक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए। अजमेर विश्वविद्यालय ने इस विषय को स्नातक स्तर पर स्वीकार किया है। प्राध्यापक और विद्यार्थी वर्ग की सुविधा के लिए प्रस्तुत पुस्तक समाकलित है। इसके समाकलन में मुनि किशनलाल और शुभकरण सुराणा की संभागिता है। विद्यार्थी की रुचि और क्षमता को ध्यान में रखकर पुस्तक के समाकलन में तीन दृष्टिकोणों को सुरक्षित रखा गया है–

- सरलता
- सरसता
- उपयोगिता

विश्वास है–यह अभिनव विषय नए जीवन-निर्माण की प्रक्रिया में सहयोगी बन सकेगा।

–आचार्य तुलसी

Scanned by CamScanner

विकास-वृत्त

जैन साधकों की ध्यान-पद्धति क्या है—यह प्रश्न दूसरे ने नहीं पूछा, स्वयं हमने ही अपने आपसे पूछा। वि॰ सं॰ २०१७ में यह प्रश्न मन में उठा और उत्तर की खोज शुरू हो गयी। उत्तर दो दिशाओं से पाना था—एक आचार्य से, दूसरा आगम से। आचार्य श्री ने पथ-दर्शन किया कि आगम से इनका विशद उत्तर प्राप्त किया जाए।

आगम-साहित्य में ध्यान-विषयक कोई स्वतंत्र आगम उपलब्ध नहीं है। ***नंदी सूत्र*** की उत्कालिक आगमों की सूची में ***'ध्यान-विभक्ति'*** नामक आगम का उल्लेख है, किंतु वह आज उपलब्ध नहीं है। इस स्थिति में उपलब्ध आगम-साहित्य में आए हुए ध्यान-विषयक प्रकरणों का अध्ययन शुरू किया और साथ-साथ उनके व्याख्या-ग्रन्थों तथा ध्यान-विषयक उत्तरवर्ती साहित्य का भी अवगाहन किया। इस अध्ययन से जो प्राप्त हुआ, उसके आधार पर ध्यान की एक रूपरेखा उत्तराध्ययन के टिप्पणों में प्रस्तुत की गयी। विक्रम संवत २०१८ में आचार्य श्री ने 'मनोनुशासनम्' की रचना की। मैंने पहले उसका अनुवाद किया और वि॰ सं॰ २०२४ में उस पर विशद व्याख्या लिखी। उसमें जैन-साधना-पद्धति के कुछ रहस्य उद्घाटित हुए। वि॰ सं॰ २०२८ में आचार्यश्री के सान्निध्य में साधु-साध्वियों की विशाल परिषद् में जैन योग के विषय में पांच भाषण हुए। उनमें दृष्टिकोण की और कुछ स्पष्टता हुई। वे ***'चेतना के ऊर्ध्वारोहण'*** पुस्तक में प्रकाशित हैं। भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण-शताब्दी के वर्ष में ***'महावीर की साधना का रहस्य'*** पुस्तक प्रकाशित हुई। ये सारे प्रयत्न उसी प्रश्न का उत्तर पाने की दिशा में चल रहे थे।

यह प्रश्न का बीज विक्रम सं॰ २०१२ के उज्जैन चातुर्मास में बोया गया था। वहां आचार्यश्री के मन में साधना-विषयक नये उन्मेष लाने की बात आयी। 'कुशल साधना'—इस नाम से कुछ अभ्यास-सूत्र निर्धारित किए गए और साधु-साध्वियों ने उनका अभ्यास शुरू किया। साधना के क्षेत्र में यह एक प्रथम रश्मि थी। उससे बहुत नहीं, फिर भी कुछ आलोक अवश्य मिला। उसके पश्चात् अनेक छोटे-छोटे प्रयत्न चलते रहे। वि॰ सं॰ २०२० की सर्दियों में मर्यादा महोत्सव के अवसर पर 'प्रणिधान कक्ष' का प्रयोग

Scanned by CamScanner

किया गया। उस दस-दिवसीय साधना-सत्र में काफी बड़ी संख्या में साधु-साध्वियों ने भाग लिया। उसमें 'जैन योग' पर काफी चर्चा हुई। 'भाव क्रिया' के विशेष प्रयोग किए गए। उस चर्चा का संक्षिप्त संकलन ***'तुम अनंत शक्ति के स्रोत हो'*** पुस्तक में प्राप्त है।

कई शताब्दियों से विच्छिन्न ध्यान-परम्परा की खोज के लिए ये सभी प्रयत्न पर्याप्त सिद्ध नहीं हुए। जैसे-जैसे कुछ समझ में आते गए, वैसे-वैसे प्रयत्न को तीव्र करने की आवश्यकता अनुभव होती गयी। वि॰ सं॰ २०२६ में लाडनूं में एकमासीय साधना-सत्र का आयोजन किया गया। उसके बाद वि॰ सं॰ २०२८-२०३१ में चुरू, राजगढ़, हिसार और दिल्ली–इन चारों स्थानों में दस-दस दिवसीय साधना-सत्र आयोजित किए गए। ये सभी साधना-सत्र 'तुलसी अध्यात्म नीडम्' जैन विश्व भारती के तत्त्वावधान में और आचार्य तुलसी के सान्निध्य में सम्पन्न हुए। इन शिविरों ने साधना को पुष्ट वातावरण निर्मित किया। अनेक साधु-साध्वियों तथा गृहस्थ ध्यान-साधना में रुचि लेने लगे। अनेक साधु-साध्वियां इस विषय पर विशेष अभ्यास और प्रयोग भी करने लगे।

वि॰ सं॰ २०३२ के जयपुर-चातुर्मास में परम्परागत जैन ध्यान का अभ्यास-क्रम निश्चित करने का संकल्प हुआ। हम लोग आचार्यश्री के उपपात में बैठे और संकल्प पूर्ति का उपक्रम शुरू हुआ। हमने ध्यान की इस अभ्यास विधि का नामकरण 'प्रेक्षाध्यान' किया। यह 'प्रेक्षा-ध्यान-पद्धति' के विकास का संक्षिप्त इतिहास है।

–आचार्य महाप्रज्ञ

Scanned by CamScanner

प्राक्कथन

भारतीय शिक्षा पद्धति में सुधार की चर्चा बहुत समय से चल रही है। श्री प्रकाश आयोग से श्री कोठारी आयोग तक अनेक आयोगों की अनुशंसा और स्थापनाएं इस तथ्य की साक्षी है कि शिक्षा में परिवर्तन अभिलषणीय है। शिक्षा पद्धति को बदलने के अनेक प्रयास किए गए। मूल्यपरक शिक्षा इसी चिन्तन से बढ़ा एक चरण है। वर्तमान शिक्षा विद्यार्थी को अपने विषय में निपुणता हासिल अवश्य करवाती है। उसका ही परिणाम है कि आज एक से एक अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर, तकनिसीयन, कलाविद प्रादुर्भूत हो रहे हैं, किंतु साथ ही उनमें दायित्व बोध, आविष्कार वृत्ति, दूसरों के प्रति करुणा, सहिष्णुता, अनुशासन आदि मूल्यों का विकास प्रश्नचिन्ह बना हुआ है। मूल्यपरक शिक्षा पर चिन्तन बहुत हुआ। इसे पाठ्यक्रम में किस तरह लागू किया जाए यह अहं सवाल था। अजमेर विश्वविद्यालय ने अध्यात्म विद्या के विकास का सार्थक प्रयास किया है। धर्म निरपेक्षिता के नाम पर पुरानी विचारधाराएं हैं—चाहे वे वैदिक हों, जैन हों, बौद्ध हों या अन्य कोई भी हों उनका भारतीय शिक्षा जगत् में पठन-पाठन का रास्ता खोलकर स्तुत्य कार्य किया है। किसी विचारधारा को जानना और उसके संबंध में प्रयोग करना महत्वपूर्ण कार्य है। विज्ञान के प्रयोग में सत्य को जनता के सामने प्रस्तुत किया। प्राचीन युग में ऋषियों ने भी अध्यात्म विद्या का विकास किया था जिससे आंतरिक चेतना को अनावृत्त और प्रगट होने का अवसर उपलब्ध हुआ।

भौतिक विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान दो अलग-अलग विज्ञान नहीं हैं। सत्य को जानने के प्रयोग को विज्ञान कहा गया है। वह विज्ञान भौतिक सामग्री से प्रगट होता है। अतः उसे भौतिक विज्ञान कहा गया। अतीन्द्रिय चेतना से सत्य को जानने की प्रक्रिया को अध्यात्म विज्ञान अथवा चेतना का विज्ञान कहा गया है। दोनों प्रक्रियाएं सत्य को जानने की हैं, उनके परिणाम भी एक ही उपलब्ध होते हैं। हां यह सत्य है कि भौतिक विज्ञान का इतिहास मात्र ८०० वर्ष पुराना है जबकि अध्यात्म का यह विज्ञान हजारों वर्ष पुराना है। दोनों का अध्ययन और अध्यापन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय से ही एक अभिनव संस्कृति का अभ्युदय हो सकेगा।

Scanned by CamScanner

अजमेर विश्वविद्यालय के स्नातक पाठ्यक्रम में जीवन विज्ञान और जैन विद्या का समावेश किए जाने पर अजमेर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री उपाध्याय ने आचार्य श्री तुलसी और युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के सान्निध्य में एक संगोष्ठी का समायोजन विद्या भूमि राणावास में किया। चर्चा के पश्चात् एक सुझाव आया कि ६ प्रश्नपत्र प्रस्तुत विषय में हैं। प्रत्येक प्रश्नपत्र में इतनी सन्दर्भ पुस्तकें सुझाई गई हैं जिनको एक साथ पढ़ना विद्यार्थी के लिए कष्ट साध्य होगा इसलिए हर प्रश्नपत्र में पाठ्यक्रमानुसार सर्व सामग्री एक जगह संकलित कर दी जाए तो विद्यार्थी को अध्यापन में सुविधा हो जाएगी। इस सुझाव के संदर्भ में प्रत्येक प्रश्नपत्र के लिए निदेशक के साथ समाकलन मण्डल का चयन किया गया। "प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग" में प्रश्नपत्र में उल्लिखित विषयों के अनुरूप सामग्री का अध्ययन कर समाकलन प्रस्तुत किया गया है। जिन पुस्तकों के आधार पर समाकलन किया गया है वह अधिकतर जीवन विज्ञान ग्रन्थ माला प्रेक्षाध्यान का ही साहित्य है। तदर्थ हम परम श्रद्धेय आचार्य श्री तुलसी एवं श्रद्धेय युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के प्रति श्रद्धानत हैं। साथ ही प्रेक्षा-प्राध्यापक मुनिश्री महेन्द्र कुमार एवं प्रेक्षा-प्रवक्ता श्री जेठालाल एस॰ झवेरी के आभारी हैं।

समाकलन के बाद हमने पुस्तक का आद्योपांत वाचन करके इसमें जो कमी थी उसे पूरा किया है और जो अनावश्यक पुनरावृत्तियां थीं उन्हें हटा दिया है। इस कार्य में जिनके कीमती सुझाव और परामर्श मिला वे हैं—डॉ॰ दयानन्द भार्गव (अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, जोधपुर वि॰ वि॰), डॉ॰ गोपालकृष्ण भारद्वाज, डॉ॰ भंवरलाल जोशी। श्री मांगीलाल जैन (निदेशक, जीवन-विज्ञान अकादमी, जै॰ वि॰ भा॰) का सहयोग रहा। हम इन सबके प्रति आभार व्यक्त करते हैं। धर्मेश मुनि तथा श्री हनुमान चिण्डालिया, श्री कमल सिंह, मानमल पटावरी पाली ने समय-समय पर व्यवस्थाओं में सहयोग कर पुस्तक को समय पर तैयार करने में मदद की उसके लिए हम इनके सहयोग को भी मूल्यवान् मानते हैं। आशा है पुस्तक छात्रों के लिए उपयोगी साबित होगी। पुस्तक में अगर कोई कमी रही हो तो कृपया अपने सुझावों से हमें अवगत करें ताकि आगामी संस्करण में परिस्कार किया जा सके।

—मुनि किशनलाल
—शुभकरण सुराणा

Scanned by CamScanner

प्रकाशकीय

प्रेक्षा-ध्यान ध्यानाभ्यास की एक ऐसी पद्धति है, जिसमें प्राचीन दार्शनिकों को प्राप्त बोध एवं साधना पद्धति को आधुनिक वैज्ञानिक सन्दर्भों में प्रतिपादित किया गया है। इन दोनों में तुलनात्मक विवेचन के आधार पर आज युग-मानस को इस प्रकार प्रेरित किया जा सकता है जिसमें मनुष्य के पाशवी आवेश तिरोहित हों एवं विश्व में अहिंसा, शांति और आनन्द के प्रस्थापन के मंगलमय लक्ष्य की संप्राप्ति हो सके।

दीर्घश्वास-प्रेक्षा, समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा, शरीर-प्रेक्षा, चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा, लेश्या-ध्यान, कायोत्सर्ग, अनुप्रेक्षा और भावना—ये प्रेक्षाध्यान साधना-पद्धति की विभिन्न प्रयोगात्मक प्रक्रियाएं हैं। ये सारी प्रक्रियाएं रूपांतरण की हैं। फिर उपदेश देने की जरूरत नहीं होगी कि ऐसा बनो, वैसा बनो, धार्मिक बनो, स्वार्थ को छोड़ो, भय और ईर्ष्या को छोड़ो। यह केवल उपदेश कारगर नहीं होता। जो उपाय निर्दिष्ट किए गए हैं, उन्हें काम में लेना होगा। स्वयं एक दिन यह स्पष्ट अनुभव होने लगेगा कि रूपांतरण घटित हो रहा है, धार्मिक वृत्ति का जागरण हो रहा है, क्रोध और भय छूट रहे हैं, माया और लोभ टूट रहे हैं। उन दोषों से छुटकारा पाने के लिए अलग से प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। वे स्वयं मिटते जाएंगे। इन दोषों को मूलतः नष्ट करने का यही उपाय है।

असाम्प्रदायिक ध्यान-पद्धति

प्रेक्षाध्यान भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों को प्रभावित करने वाला अनुभव हो सकता है, क्योंकि उसके द्वारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर विभिन्न प्रकार के लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं।

किसी भी धर्म-सम्प्रदाय, जाति आदि के भेदभाव के बिना प्रेक्षाध्यान का अभ्यास किया जा सकता है।

पिछले १२ वर्षों में लगभग नौ हजार से अधिक साधक प्रेक्षाध्यान के अभ्यास से प्रशिक्षित किए जा चुके हैं, जिसमें वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक, अधिकारी आदि बुद्धिजीवी तथा जैन, सनातन, सिक्ख, मुसलमान, आदि विभिन्न धर्मों के अनुयायी सम्मिलित हुए हैं।

भारत सरकार द्वारा दूरदर्शन पर चारों कार्यक्रमों की एक पूरी शृंखला "प्रेक्षाध्यान" के नाम से प्रदर्शित की गई थी, जिसकी प्रक्रिया में सैकड़ों दर्शकों ने ऐसे कार्यक्रमों को बहुत पसन्द किया है।

इस विधि से साधना करने वाले अनेक व्यक्तियों को जीवन-परिवर्तन

Scanned by CamScanner

की भूमिका तक पहुचने की क्षमता प्राप्त हुई है। अनेक लोगों ने जहां शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त किया है, वहां सैकड़ों की संख्या में लोग मानसिक तनाव एवं अन्य मानसिक बीमारियों से मुक्त हुए हैं।

युगप्रधान गणाधिपति श्री तुलसी एवं उनके उत्तराधिकारी आचार्यश्री महाप्रज्ञ के सतत मार्गदर्शन एवं परिश्रम का ही यह परिणाम है कि आज सहस्र–सहस्र लोग इस आध्यात्मिक साधना के मार्ग पर चल कर समस्याओं से मुक्त जीवन जीने का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। प्रेक्षाध्यान-पद्धति के रूप में मानव-जाति को इन दो महान् अध्यात्म-मनीषियों का अनुपम वरदान प्राप्त हुआ है। हमें दृढ़ विश्वास है कि इस सार्वभौम एवं सार्वजनीन विधि को समझकर विद्यार्थी-वर्ग लाभान्वित होगा।

प्रस्तुत पुस्तक को विद्यार्थियों के हाथों तक पहुंचाने में अनेक व्यक्तियों का सक्रिय योगदान हमें मिला है। सर्वप्रथम हम परम श्रद्धास्पद युगप्रधान गणाधिपति श्री तुलसी एवं श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ के चरणों में श्रद्धा पुष्प समर्पित करते हैं जिनके आशीर्वाद एवं मार्ग-दर्शन से हम अपने कार्य में सफल हो सके हैं। पुस्तक के समाकलक प्रेक्षा-प्राध्यापक मुनिश्री किशनलाल एवं प्रेक्षा-प्रशिक्षक श्री शुभकरण सुराणा के हम आभारी हैं, जिन्होंने अपने कलात्मक समाकलन से पुस्तक को ऐसा रूप दिया है, जो विद्यार्थियों के लिए सुपाच्य एवं आकर्षक बना है। इसके साथ ही हम प्रेक्षा-प्राध्यापक मुनिश्री महेन्द्रकुमार के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिन्होंने अथक परिश्रम कर एक महीने के स्वल्पकाल में ही हमारे प्रकाशन कार्य को सम्पन्न करवाने में अपूर्व योगदान दिया है। हमारी संस्था के शोध-अधिकारी श्री रामस्वरूप सोनी, शोध-विद्वान् डॉ० परमेश्वर सोलंकी आदि विद्वानों ने भी प्रूफ-संशोधन में तत्परता के साथ जो सहयोग किया है, उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

अजमेर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० उपाध्याय एवं पाठ्यक्रम-मण्डल के प्रति हम हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि उन्होंने पुस्तक को बी० ए० के पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित किया। अजमेर के डॉ० भंवरलाल जोशी एवं श्री मांगीलाल जैन के प्रति भी हम अपना आभार प्रगट करना चाहेंगे जिनकी सूझ-बूझ एवं सहयोग की बदौलत अजमेर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए हम यह पुस्तक प्रकाशित कर सके हैं।

हम आशा करते हैं कि विद्यार्थी-वर्ग के लिए प्रस्तुत पुस्तक न केवल अध्यापन-काल में अपितु समग्र जीवन-काल में उपयोगी होगी।

—श्रीचन्द बैंगानी

Scanned by CamScanner

अनुक्रम

प्रेक्षाध्यान : सिद्धान्त

१. प्रेक्षा-ध्यान : आधार और स्वरूप **३-३३**

प्रेक्षा : अर्थ-व्यञ्जना ३; ध्येय ५; प्रेक्षा-ध्यान की उपसंपदा ६; उपसम्पदा की चर्या ७; आसन-प्राणायाम १०; प्राणायाम १०; मुद्रा १०; अर्हं और महाप्राण-ध्वनि ११; महाप्राण-ध्वनि १३; ध्वनि-तरंगों के शरीर-शास्त्रीय प्रभाव १३; ध्वनि-प्रकम्पनों के मानसिक प्रभाव १४; एकाग्रता और अप्रमाद १५; कायोत्सर्ग १६; अन्तर्यात्रा १७; श्वास-प्रेक्षा १६; समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा २०; शरीर-प्रेक्षा २२; चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा २४; लेश्या-ध्यान २७; भावना और अनुप्रेक्षा २८; विचार-प्रेक्षा और समता ३०; संयम : संकल्प-शक्ति का विकास ३१; संकल्प : कब और कैसे ? ३३

२. कायोत्सर्ग **३४-६३**

दबाव की कार्य-पद्धति ३४; शारीरिक स्थितियां ३५; अनुकम्पी और परानुकम्पी संस्थान ३६; तनाव से गड़बड़ी ३६; तनाव के कारण ३७; क्या बचने का उपाय है ? ३८; तनाव-मुक्ति क्या है ? ३६; कायोत्सर्ग से तनाव-मुक्ति ४१; स्वयं-सूचना की विलक्षण चिकित्सा-शक्ति ४१; स्वयं-सूचन ४३; कायोत्सर्ग के सहायक तत्त्व ४४; स्वर-यन्त्र का कायोत्सर्ग-मौन ४५; आध्यात्मिक दृष्टिकोण ४६; प्रयोजन ५३; निष्पत्तियां ५७

३. श्वास-प्रेक्षा **६४-८०**

वैज्ञानिक दृष्टिकोण ६४; आध्यात्मिक दृष्टिकोण ६६; निष्पत्तियां ७६

४. शरीर-प्रेक्षा **८१-६४**

वैज्ञानिक आधार ८१; आध्यात्मिक आधार ८६; प्रयोजन ६१; निष्पत्तियां ६२

५. चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा **६५-११३**

वैज्ञानिक दृष्टिकोण ६५; आध्यात्मिक स्वरूप १०२; प्रयोजन १०६; निष्पत्तियां १११

Scanned by CamScanner

६. **लेश्या-ध्यान** **११४-१४५**
वैज्ञानिक दृष्टिकोण ११४, आभामण्डल १२०; आध्यात्मिक दृष्टिकोण १२५, प्रयोजन १३२; परिवर्तन और रूपान्तरण १३५; निष्पत्तियां १४१

७. **अनुप्रेक्षा** **१४६-१६८**
वैज्ञानिक आधार १४६; आध्यात्मिक दृष्टिकोण १५०; प्रयोजन १५७; निष्पत्तियां १६१

८. **आसन, प्राणायाम और मुद्रा** **१६६-१६५**
वैज्ञानिक दृष्टिकोण १६६; आध्यात्मिक दृष्टिकोण १७३; आसन : प्रयोजन १७७; प्राणायाम : प्रयोजन १८५; मुद्रा : प्रयोजन १६३

Scanned by CamScanner

खण्ड १

प्रेक्षाध्यान : सिद्धान्त

Scanned by CamScanner

: १ :

प्रेक्षाध्यान : आधार और स्वरूप

प्रेक्षा : अर्थ-व्यञ्जना

'प्रेक्षा' शब्द ईक्ष् धातु से बना है। इसका अर्थ है—देखना। प्र+ईक्षा—प्रेक्षा। इसका अर्थ है गहराई में उतरकर देखना। विपश्यना का भी यही अर्थ है। जैन साहित्य में प्रेक्षा और विपश्यना—ये दोनों शब्द प्रयुक्त हैं। प्रेक्षा-ध्यान और विपश्यना-ध्यान—ये दोनों शब्द इस ध्यान-पद्धति के लिए प्रयुक्त किये जा सकते थे, किंतु 'विपश्यना-ध्यान' इस नाम से बौद्धों की ध्यान-पद्धति प्रचलित है। इसलिए "प्रेक्षा-ध्यान" इस नाम का चुनाव किया गया। ***दशवैकालिक सूत्र*** में कहा गया है— ***"संपिक्खए अप्पगमप्पएणं"*** **आत्मा के द्वारा आत्मा की संप्रेक्षा करो, मन के द्वारा सूक्ष्म मन को देखो, स्थूल चेतना के द्वारा सूक्ष्म चेतना को देखो।** 'देखना'[1] ध्यान का मूल तत्त्व है। इसीलिए उस ध्यान-पद्धति का नाम 'प्रेक्षा-ध्यान' रखा गया है।

जानना और देखना चेतना का लक्षण है। आवृत चेतना में जानने और देखने की क्षमता क्षीण हो जाती है। उस क्षमता को विकसित करने का सूत्र है—जानो और देखो। भगवान् महावीर ने साधना के जो सूत्र दिए हैं, उनमें 'जानो और देखो' ये ही मुख्य हैं। 'चिन्तन, विचार या पर्यालोचन करो'—यह बहुत गौण और प्रारम्भिक है। यह साधना के क्षेत्र में बहुत आगे नहीं ले जाता।

'आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो'—यह अध्यात्म-चेतना के जागरण का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इस सूत्र का अभ्यास हम श्वास से प्रारम्भ करते हैं। श्वास शरीर का ही एक अंग है। हम श्वास से जीते हैं, इसलिए सर्वप्रथम श्वास को देखें। हम शरीर से जीते हैं, आत्मा शरीर में है, इसलिए शरीर को देखें। शरीर के भीतर होने वाले स्पन्दनों, कम्पनों, हलचलों या घटनाओं को देखें। इन्हें देखते-देखते मन पटु हो जाता है, सूक्ष्म हो जाता

---

१. यहां देखने का अर्थ आंखों (चर्म-चक्षुओं) से नहीं, चित्त को देखना है। इसे अंग्रेजी में perceive कहते हैं, जिसका अर्थ है "to see with mind eye"

Scanned by CamScanner

है, फिर अनेक स्पन्दन दीखने लग जाते हैं। वृत्तियां या संस्कार जब उभरते हैं, तब उनके स्पन्दन होने लग जाते हैं। पूरा का पूरा दोष-चक्र प्रत्यक्ष होने लग जाता है।

इस तथ्य को प्रकट करते हुए ***आयारो (आचारांग सूत्र)*** में बताया गया है, "जो क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रियता, अप्रियता आदि दोषों को अपने भीतर देख लेता है, वह जन्म, मृत्यु और दुःख के समग्र चक्रव्यूह को तोड़ देता है।"

"महान् साधक अकर्म (ध्यानस्थ) होकर मन, वचन और शरीर की क्रिया का निरोध कर जानता-देखता है।"

"द्रष्टा के लिए कोई निर्देश की अपेक्षा नहीं है, उसके कोई उपाधि नहीं होती।"

जब हम देखते हैं, तब सोचते नहीं हैं और जब हम सोचते हैं, तब देखते नहीं हैं। विचारों का जो सिलसिला चलता है, उसे रोकने का सबसे पहला और सबसे अन्तिम साधन है देखना। कल्पना के चक्रव्यूह को तोड़ने का सबसे सशक्त उपाय है—देखना। आप स्थिर होकर अनिमेष चक्षु से किसी वस्तु को देखें, विचार समाप्त हो जाएंगे। विकल्प-शून्य हो जाएंगे। आप स्थिर होकर अपने भीतर देखें—अपने विचारों को देखें या शरीर के प्रकंपनों को देखें, तो आप पाएंगे कि विचार स्थगित है और विकल्प शून्य हैं। भीतर की गहराइयों को देखते-देखते सूक्ष्म शरीर को देखने लगेंगे। जो भीतरी सत्य को देख लेता है, उसमें बाहरी सत्य को देखने की क्षमता अपने आप आ जाती है।

देखना वह है, जहां केवल चैतन्य सक्रिय होता है। जहां प्रियता और अप्रियता का भाव आ जाए, राग-द्वेष उभर जाए, वहां देखना गौण हो जाता है। यही बात 'जानने' पर लागू होती है।

हम पहले देखते हैं, फिर जानते हैं। इसे इस भाषा में स्पष्ट किया जा सकता है कि हम जैसे-जैसे देखते जाते हैं, वैसे-वैसे जानते चले जाते हैं।

जो पश्यक है—द्रष्टा है, उसका दृश्य के प्रति दृष्टिकोण ही बदल जाता है। माध्यस्थ्य या तटस्थता प्रेक्षा का ही दूसरा रूप है। जो देखता है, वह सम रहता है। वह प्रिय के प्रति राग-रंजित नहीं होता और अप्रिय के प्रति द्वेषपूर्ण नहीं होता। वह प्रिय और अप्रिय दोनों की उपेक्षा करता है—दोनों को निकटता से देखता है। और उन्हें निकटता से देखता है,

Scanned by CamScanner

इसलिए वह उनके प्रति सम, मध्यस्थ और तटस्थ रह सकता है। उपेक्षा या मध्यस्थता को प्रेक्षा से पृथक् नहीं किया जा सकता।

आंखें दृश्य को देखती हैं, पर उसे न निर्मित करती हैं और न उसका फल-भोग करती हैं। वे अकारक और अवेदक हैं।[1] इसी प्रकार चैतन्य भी अकारक और अवेदक है। ज्ञानी जब केवल जानता या देखता है, तब वह न कर्मबंध करता है और न विपाक में आए हुए कर्म का वेदन करता है। जिसे केवल जानने या देखने का अभ्यास उपलब्ध हो जाता है, वह व्याधि या अन्य आगन्तुक कष्ट को देख लेता है। इस वेदना की प्रेक्षा से कष्ट की अनुभूति ही कम नहीं होती, किन्तु कर्म के बंध, सत्ता, उदय और निर्जरा[2] को देखने की क्षमता भी विकसित हो जाती है।

ध्येय

किसी भी कार्य में प्रवृत्त होने से पहले मनुष्य अपने ध्येय का निर्धारण करता है। प्रेक्षा-ध्यान की साधना का पहला ध्येय है—चित्त को निर्मल बनाना। चित्त कषायों (क्रोध आदि आत्मा के परिणामों से) मलिन रहता है। कषायों से मलिन चित्त में ज्ञान की धारा नहीं बह सकती। हमारे भीतर ज्ञान होते हुए भी वह प्रकट नहीं होता, क्योंकि बीच में मलिन चित्त का परदा आ जाता है। चित्त की निर्मलता होते ही ज्ञान प्रकट होता है, उसका अवरोध समाप्त हो जाता है।

जब चित्त की निर्मलता होती है तब शांति का अनुभव स्वतः होने लगता है। मन का संतुलन, मन की समता और आनन्द का अनुभव होने लगता है। साधना की पहली निष्पत्ति है—आनन्द की अनुभूति।

हमारा ध्येय है—चित्त की निर्मलता। हमारा ध्येय आनन्द की प्राप्ति नहीं है। आनन्द प्राप्त होगा, किंतु वह ध्येय नहीं है। आनन्द हमारा आलंबन बनेगा। हमें आनन्द भी मिलेगा, शांति भी मिलेगी, किन्तु हमें उनको पार कर आगे जाना है। हमें पहुंचना है चित्त की निर्मलता तक। चित्त की निर्मलता हमारी ध्येय-प्रतिमा है। यह हमारे सामने रहे।

---

१. जो करने वाला है, कर्ता है, वह कारक है; जो भोगने वाला है, भोक्ता है, वह वेदक है। अकारक और अवेदक का तात्पर्य है—न करने वाला, न भोगने वाला।

२. नए कर्म-परमाणुओं को ग्रहण करना 'बन्ध' है। बन्धन के पश्चात् जब तक कर्मों का फल मिलना शुरू नहीं हो जाता, तब तक का समय 'सत्ता' है। जब क़र्म का फल मिलता है, तब 'उदय' है, और जब कर्म आत्मा से अलग हो जाते हैं, तब उसे 'निर्जरा' कहते हैं।

Scanned by CamScanner

व्यवहार के धरातल पर प्रेक्षा-ध्यान का ध्येय है—व्यक्तित्व का समग्र विकास। विकास के कुछ पहलू यहां प्रस्तुत हैं—

- बौद्धिक और भावनात्मक विकास का संतुलन।
- आध्यात्मिक और वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण।
- भावनात्मक परिवर्तन—अपने संवेगों पर नियन्त्रण करने की क्षमता का विकास।
- रासायनिक परिवर्तन—अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों में परिवर्तन, पीड़ा के क्षणों में एंडोर्फिन जैसे शामक रसायनों का उत्पादन।
- नाड़ी—संस्थान पर नियंत्रण करने की क्षमता का विकास।
- नशे की आदत को बदलने की क्षमता का विकास।
- कार्यकौशल (efficency) में वृद्धि।
- मनःकायिक (psychosomatic) रोगों से मुक्ति।
- मानसिक और भावात्मक तनाव का विसर्जन।
- अपराधी और आक्रामक मनोवृत्ति से मुक्ति।
- अनुशासन का विकास।
- सहिष्णुता का विकास।
- एकाग्रता में वृद्धि।
- सामंजस्य करने की क्षमता का विकास।
- मैत्री—भाव का विकास
- मानवीय सम्बन्धों को उदार और उदात्त बनाने की क्षमता का विकास।
- संकल्प शक्ति का विकास।
- आत्म—विश्वास का जागरण।
- अन्तर्दृष्टि का विकास।

प्रेक्षा-ध्यान की उपसंपदा

लेनी पड़ती है यहां, उपसंपदा उदार।
सहज समर्पित भाव से, बना हृदय निर्भार।
मार्ग और सम्यक्त्ववर, संयममय आचार।
यह उत्तम उपसंपदा, शुभ भविष्य संस्कार।।
पदन्यास अध्यात्म में, करता हूं अनिवार्य।
प्रथम मार्ग उपसंपदा, देते गुरुवर आर्य।।

Scanned by CamScanner

अन्तर् जागरणा–जगत्, में मेरा संचार।
यह द्वितीय उपसंपदा, करूं सहज स्वीकार।।
भीतर में रमता रहूं, जागरूकता साथ।
वह तृतीय उपसंपदा, आगम में आख्यात।।

साधना प्रारम्भ करने से पूर्व सभी साधक सुखासन में बैठ बद्धांजलि होकर प्रेक्षा-ध्यान की उपसम्पदा स्वीकार करते हैं। शरीर को शिथिल और मन को तनाव-मुक्त कर निम्न सूत्रों का उच्चारण करते हैं–

"अब्भुट्ठिओमि आराहणाए।"

मैं प्रेक्षा-ध्यान की आराधना के लिए उपस्थित हुआ हूं।

"मग्गं उवसंपज्जामि।"

मैं अध्यात्म-साधना का मार्ग स्वीकार करता हूं।

"सम्मत्तं उवसंपज्जामि।"

मैं अन्तर्दर्शन की उपसम्पदा स्वीकार करता हूं।

"संजमं उवसंपज्जामि।"

मैं आध्यात्मिक अनुभव की उपसम्पदा स्वीकार करता हूं।

यह प्रेक्षा-ध्यान की उपसम्पदा है।

उपसंपदा की चर्या

इस चर्या के ५ सूत्र हैं : १. भावक्रिया, २. प्रतिक्रिया-विरति, ३. मैत्री, ४. मितभाषण, ५. मिताहार।

मित्तभोजन मितभाषिता, मैत्री का आधार।
प्रतिक्रिया से शून्य हो क्रिया स्वयं निर्भार।।
सदा साधना में रहे, भावक्रिया उदार।
पांचों ही ये सूत्र हैं, सच्चे पहरेदार।।

१. भावक्रिया (वर्तमान क्षण की प्रेक्षा)

भावक्रिया के तीन अर्थ हैं–

१. वर्तमान में जीना।

२. जानते हुए करना।

३. सतत अप्रमत्त रहना।

जो वर्तमान क्षण का अनुभव करता है, वह सहज ही राग-द्वेष से बच जाता है। राग-द्वेष-शून्य वर्तमान क्षण को देखने वाला नए कर्म-संस्कार के बन्ध का निरोध करता है।

वर्तमान को जानना और वर्तमान में जीना ही भावक्रिया है। यांत्रिक

Scanned by CamScanner

जीवन जीना, काल्पनिक जीवन जीना और कल्पना-लोक में उड़ान भरना द्रव्यक्रिया है।[1]

हमारा अधिकांश समय अतीत की उधेड़बुन में या भविष्य की कल्पना में बीतता है। अतीत भी वास्तविक नहीं है और भविष्य भी वास्तविक नहीं है। वास्तविक है वर्तमान। वर्तमान जिसके हाथ से छूट जाता है, वह उसे पकड़ ही नहीं पाता। वास्तविकता यह है कि जो कुछ घटित होता है, वह होता है वर्तमान में। किन्तु आदमी उसके प्रति जागरूक नहीं रहता। भावक्रिया का पहला अर्थ है—वर्तमान में रहना।

भावक्रिया का दूसरा अर्थ है—जानते हुए करना। हम जो भी करते हैं, वह पूरी मन से नहीं करते। मन के टुकड़े कर देते हैं। काम करते हैं, पर मन कहीं भटकता रहता है। वह काम के साथ जुड़ा नहीं रहता। काम होता है अमनस्कता (absent-mindedness) से। वह सफल नहीं होता।

कार्य के प्रति सर्वात्मना समर्पित हुए बिना उसका परिणाम अच्छा नहीं आता। इसमें शक्ति अधिक क्षीण होती है, अनावश्यक व्यय होता है और काम पूरा नहीं होता। अतः हम जिस समय जो काम करें, उस समय हमारा शरीर और मन—दोनों साथ-साथ चलें।

भावक्रिया का तीसरा अर्थ है—सतत अप्रमत्त रहना। साधक को ध्येय के प्रति सतत अप्रमत्त और जागरूक रहना चाहिए। ध्यान का पहला ध्येय है—चित्त की निर्मलता। चित्त को हमें निर्मल बनाना है। ध्यान का दूसरा ध्येय है—सुप्त शक्तियों को जागृत करना। हमारी ध्यान-साधना के ये दो ध्येय हैं। इनके प्रति सतत जागरूक रहना भावक्रिया है।

द्रव्यक्रिया चित्त का विक्षेप है और ध्यान का विघ्न है। भावक्रिया स्वयं साधना और स्वयं ध्यान है। हम चलते हैं और चलते समय हमारी चेतना जागृत रहती है। "हम चल रहे हैं"—इसकी स्मृति रहती है—यह गति भावक्रिया है।

साधक का ध्यान चलने में ही केन्द्रित रहे, चेतना गति को पूरा साथ दे—यह गमनयोग है।

२. प्रतिक्रिया-निवृत्ति

उपसंपदा का दूसरा अर्थ है—क्रिया करना, प्रतिक्रिया न करना।

---

१. जिसमें केवल शरीर की क्रिया हो, वह द्रव्यक्रिया है। जिसमें शरीर और चित्त दोनों की संयुक्त क्रिया हो, वह भावक्रिया है।

Scanned by CamScanner

आदमी प्रतिक्रिया का जीवन जीता है। वह बाह्य वातावरण और परिस्थिति से प्रभावित होकर कार्य करता है। वह आवेग या उत्तेजना के वशीभूत होकर कार्य करता है। यह प्रतिक्रिया है, क्रिया नहीं। अध्यात्म-साधना का अर्थ है—प्रतिक्रिया से बचना। साधक क्रिया करे, प्रतिक्रिया नहीं। अन्यथा गाली के प्रति गाली, ईंट का जबाव पत्थर से, ***"शठे शाठ्यं समाचरेत्"*** "Tit for Tat"—ये सब बातें चलती हैं, इन्हें रोका नहीं जा सकता। इन्हें केवल वही व्यक्ति रोक सकता है, जिसने इस सचाई को समझ लिया है कि स्वतन्त्र अस्तित्व का धनी आदमी प्रतिक्रिया का जीवन न जीए। वह क्रिया का जीवन जीए।

३. मैत्री

उपसंपदा का तीसरा सूत्र है—मैत्री। साधक का पूरा व्यवहार मैत्री से ओतप्रोत हो। उसमें मैत्री की भावना का पूर्ण विकास हो। यह तभी संभव है, जब व्यक्ति से सर्वथा मुक्त हो जाता है। तब मैत्री स्वयं फलित होती है।

४. मिताहार

उपसंपदा का चौथा सूत्र है—मिताहार। परिमित भोजन का महत्त्वपूर्ण स्थान है साधना में। भोजन का प्रभाव केवल स्वास्थ्य पर ही नहीं होता, ध्यान और चेतना पर भी उसका प्रभाव होता है। आदमी अनावश्यक बहुत खाता है। अनावश्यक भोजन विकृति पैदा करता है। खाया हुआ पच नहीं पाता, क्योंकि उसको पचाने वाला रस पूरी मात्रा में नहीं मिलता। भोजन उतना ही पचता है, जितना उसे पाचन-रस प्राप्त होता है। शेष व्यर्थ हो जाता है। उससे सडांध पैदा होती है। मल आंतों में जम जाता है। इससे सारा नाड़ी-मण्डल दूषित हो जाता है। इससे मन और विचार भी दूषित होते हैं। चेतना पर आवरण आता चला जाता है। साधक को भोजन का पूरा ज्ञान होना चाहिए और कौन-सा भोजन क्या परिणाम लाता है, उसका भी ज्ञान होना चाहिये।

५. मौन

उपसम्पदा का पांचवां सूत्र है—मितभाषण या मौन। बोलना इसलिए जरूरी होता है कि हम जन-संपर्क में हैं। बोले बिना रहा नहीं जाता। किन्तु कम बोलना साधना है। इसका अर्थ यह नहीं कि जीवन भर मौन रहें। अनावश्यक न बोलें। बोलना पड़े, तो धीमे बोलें। यह मध्यम मार्ग अच्छा है। इससे व्यवहार भी नहीं छूटता और शक्ति का अनावश्यक व्यय

Scanned by CamScanner

भी नहीं होता। कम बोलना साधना का महत्त्वपूर्ण अंग है। इससे शक्ति संचित होती है।

आसन-प्राणायाम

प्रेक्षा-ध्यान की साधना के लिये प्रतिदिन आसन और प्राणायाम करना आवश्यक है क्योंकि जब तक शरीर को नहीं साधा जाता और खास कर आसन विशेष में कम से कम एक घण्टे तक स्थिर होकर बैठने का अभ्यास नहीं होता, तब तक ध्यान की गहराई में नहीं उतरा जा सकता। जैसे ही ध्यान की गहराई में जाने की कोशिश की जाएगी, शरीर साथ छोड़ देगा, आसन बदलना अनिवार्य हो जाएगा। आसन सिद्ध करना ध्यान की गहराई में जाने के पहले अनिवार्य है। इसीलिए प्रेक्षाध्यान पद्धति में आसन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आसनों का लगातार अभ्यास शरीर को जरा, व्याधि और इन्द्रिय-क्षीणता से बचाए रखता है। शरीर स्वस्थ रहने पर साधना सुगम हो जाती है।

प्राणायाम

प्राणायाम का भी प्रेक्षाध्यान में बहुत महत्त्व है, क्योंकि श्वास पर नियंत्रण किए बिना वृत्तियों का और भावों का परिष्कार नहीं हो सकता। हमारी जितनी भी वृत्तियां हैं, चाहे वे निषेधात्मक हों या विधेयात्मक सबके साथ श्वास का सम्बन्ध है। गहरा और लम्बा श्वास विधेयात्मक भावों के लिए उपयुक्त है। नाड़ी-तंत्र का परिष्कार भी श्वास पर निर्भर है। हीन भावना (Inferiority Complex) और उच्च भावना (Superiority Complex) से ग्रसित होना निषेधात्मक भाव है। वैज्ञानिक दृष्टि से सिम्पैथेटिक और पेरा-सिम्पैथेटिक तथा योग की दृष्टि से इड़ा और पिंगला का संतुलन ही प्राणायाम के माध्यम से किया जाता है।

मुद्रा

प्रेक्षाध्यान भाव-परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। जैसे हमारी भाव होते हैं, वैसी ही हमारे शरीर की मुद्राएं बनती हैं। अगर हम आलस्य में हैं, तो शरीर की वैसी ही मुद्रा बनेगी। अगर शोक में हैं, तो वैसी मुद्रा बनेगी। इस तरह प्रसन्नता, जल्दबाजी, धैर्य, जिज्ञासा, अहंकार, क्रोध, लोभ, आसक्ति, घृणा आदि जितने भी भाव हैं, उतनी ही उनकी मुद्राएं स्पष्टतया शरीर पर दृष्टिगोचर होने लगती हैं। प्रेक्षाध्यान का एक उद्देश्य है–निषेधात्मक भावों

Scanned by CamScanner

का निरसन और विधेयात्मक भावों का विकास। अगर हम विधेयात्मक भावों की मुद्राएं ध्यान-काल में अथवा जीवन में निरन्तर काम में लें, तो भीतर में हमारे भाव भी उसी अनुपात में बदलते नजर आएंगे, इसलिए प्रेक्षाध्यान साधना में जिस प्रकार आसनों का महत्त्व है, उसी प्रकार मुद्राओं का भी है।

अर्हं और महाप्राण-ध्वनि

'अर्हं' जैन जगत् का एक चर्चित एवं शक्तिशाली मन्त्र है। शरीर में मूल शक्ति का स्रोत है—प्राणशक्ति, ऊर्जा। अर्हं की ध्वनि से प्राणशक्ति सक्रिय होती है, हमारी भीतर विद्यमान किंतु सुषुप्त शक्तियां जागृत होती हैं, शक्ति-सम्पन्नता एवं अर्हता का बोध होता है।

ध्वनिशास्त्र के अनुसार हमारी शरीर में उच्चारण के ८ स्थान हैं—उर, कंठ, शिर, जिह्वासूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ और तालु। 'अर्हं' के सही उच्चारण से निर्मित बाह्य-ध्वनि-तरंगों से व्यक्ति प्रभावित होता है। उससे निश्चय पर पहुंचने में सहयोग मिलता है।

'अर्हं' के उच्चारण स्थान—'अ' का उच्चारण कंठ से होगा। 'र' मूर्धा से होगा, 'ह' का उच्चारण कंठ से होगा, 'म' का होठ से होगा। 'र' के उच्चारण के समय होठ खुले रहेंगे या इसके बाद जैसे ही 'म' का उच्चारण करेंगे, होठ बन्द हो जायेंगे।

शरीर-शास्त्रीय दृष्टिकोण—प्रेक्षा ध्यान के सन्दर्भ में—'अ' का उच्चरण-स्थान कंठ है। यह थाइराइड ग्रंथि का स्थान है। यह चयापचय का उत्तरदायी है। यहां के स्राव मन व शरीर को प्रभावित करते हैं।

'र्हं' का प्रभाव मस्तिष्क के अगले हिस्से यानी शांति-केन्द्र पर जो हाइपोथेलेमस का स्थान है। यह भावना का स्थान, सूक्ष्म व स्थूल शरीर का केन्द्र-बिंदु, मध्यवर्ती हृदय का स्थान है। ये सभी इससे प्रभावित होते हैं।

होठ से उच्चारित होने वाला 'म' उदान नामक प्राण का केन्द्र है। उदान सिद्धियां देने वाली प्राणशक्ति है।

'अर्हं' साधकों का इष्ट है। यह 'अर्हत्' का बीजमन्त्र है। अपनी क्षमताओं को प्रगट करने की अर्हता जाग जाए—वह अर्हत होता है।

आनन्द-केन्द्र थाइमस ग्रन्थि का प्रभाव क्षेत्र है। यह सूचक है कि

Scanned by CamScanner

अन्तर में पदार्थातीत आनन्द का स्रोत बह रहा है; हम आनन्द केन्द्र पर 'अर्हं' का ध्यान कर स्थायी आनन्द का अनुभव कर सकते हैं।

'अर्हं'—१. हमारे अस्तित्व की स्मृति है। २. हमारे इष्ट की स्मृति है। ३. सहज आनन्द को जागृत करने वाला है। ४. मानसिक तनाव को दूर करने वाला है। ५. मनःकायिक रोगों से बचाता है। ६. विकल्पों को शांत करने वाला है। ७. दाएं-बाएं पार्श्व में विद्यमान चैतन्य-केन्द्र जागृत हो जाते हैं।

'अ' कुंडलिनी (तैजस शक्ति) का स्वरूप है।

'र' अग्निबीज है, इससे बुरे संस्कार नष्ट होते हैं।

'ह' आकाशबीज है, चिदाकाश का अनुभव बढ़ता है।

'म्' एक झंकार है, इससे ज्ञान-तंतु सक्रिय बनते हैं।

'अर्हं' के सभी वर्ण बहुत शक्तिशाली हैं। आनन्द केन्द्र में सूर्य जैसे तेजस्वी 'अर्हं' के निरंतर ध्यानाभ्यास से अर्हं की अनुभूति विकसित होगी। पूरा व्यक्तित्व चैतन्यमय, आनन्दमय, और शक्तिमय बन जाएगा। तैजस-केन्द्र में सुनहरे रंग के कमल के मध्य अर्हं की कल्पना करें। फिर ६ बार शरीर के चारों ओर इसके कवच-निर्माण का अनुभव करें। यह कवच बाहरी दुष्प्रभावों से बचाने में बहुत सक्षम है।

'अर्हं' की खेज हजारों-हजारों प्रयोक्ताओं के द्वारा ध्यान में अनुभूत की गई स्थिति है। 'ओम्' की तरह 'अर्हं' भी परम सत्ता का प्रतीक है। जैन योगियों ने अर्हं की परमेष्ठी की पांच स्थितियों का प्रतीक माना है। 'अर्हं' में पूरे नवकार मन्त्र के विशाल व्यक्तित्व को स्थापित किया गया है। इसलिए 'अर्हं' बीज-मन्त्र कहलाता है।

'अर्हं' की संरचना में जिन पांच बिंदुओं के संकेत छिपे हुए हैं, उसमें एक दूसरी दृष्टि भी है। मन्त्रों की रचना वर्णों से होती है। वर्णमाला का आदि अक्षर 'अ' है और अन्तिम अक्षर 'ह' है। 'अर्हं' में 'अ' और 'ह' को संयुक्त कर वर्णमाला को संक्षिप्त किया गया है। 'ह' पर स्थित रेफ, अग्नि और शक्ति के संकेत हैं। 'अर्हं' में 'म्' (बिंदु) अन्तर् ध्वनि को अभिव्यक्त करने का प्रतीक है। बिंदु और नाद से सूक्ष्म और सूक्ष्मतम तरंगें तरंगित होती हैं। 'अर्हं' के महत्त्व को योगशास्त्र में रहस्यमय निरूपित किया गया है। 'अर्हं' में 'अकार' अमृतमय और सुखमय है। स्फुटायमान 'हकार' रत्नत्रय को संकलित करने वाला है। 'मकार' मोह-सहित कर्म-समूह को नाश करने वाला है।

Scanned by CamScanner

'अर्हं' के उच्चारण से चक्रों पर विशिष्ट क्रियाएं होती हैं। प्लुत-ध्वनि विशेष प्रकार का वातावरण निर्मित करती है, जिससे व्यक्ति विचार शून्य, शरीर-शून्य एवं मन-शून्य स्थिति को प्राप्त कर चेतना में उपस्थित हो जाता है।

'अर्हं' की ध्वनि में 'अ' की ध्वनि से विशुद्धिकेन्द्र प्रकंपित होता है। क्योंकि 'अ' का उच्चारण-स्थल कंठ है। 'र्' का उच्चारण-स्थल मूर्धा है। जिससे दर्शन, ज्योति एवं ज्ञानकेन्द्र प्रभावित होते हैं। उर पर विशिष्ट क्रियाएं होती है। 'ह' का उच्चारण-स्थल पुनः कंठ है। वह विशुद्धि-केन्द्र को शक्ति-संपन्न करता है। 'म' (बिंदु) की ध्वनि से ओष्ठ स्थान एवं मस्तिष्क प्रकंपित होते हैं। नाद से ज्ञानकेन्द्र सक्रिय होता है जिससे शक्ति के अभिव्यक्त होने की क्षमता उत्पन्न होती है।

महाप्राण ध्वनि

महाप्राण ध्वनि साधना-मार्ग में खोजी गई एक विलक्षण ध्वनि है, जिसके बार-बार गुंजार से शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर लाभदायक अनुभव किये जा सकते हैं।

महाप्राण ध्वनि की ध्वनि-तरंगें पूरे मस्तिष्क में फैल जाती हैं और मस्तिष्क को सक्रिय बनाती है। विचारों की चंचलता शांत होती है। ध्यान का वातावरण निर्मित होता है। मन की एकाग्रता बढ़ती है। दीर्घकाल तक अभ्यास करने से प्राण-शक्ति और स्मरण-शक्ति का विकास होता है।

अनेक अच्छी एवं कल्याणकारी क्रियाएं इसलिए आकर्षक या लोकप्रिय नहीं बनतीं कि उनको समझने या परखने का प्रयत्न तक नहीं किया जाता। सामान्यतः अनेक लोग उसे अन्धविश्वास कह कर मुंह फेर लेते हैं। ऐसी क्रियाओं का कम से कम तटस्थ अनुभव के द्वारा वस्तु-निष्ठ परीक्षण तो होना ही चाहिए और कभी-कभी वैज्ञानिक अध्ययन भी अपेक्षित होता है। उसके पश्चात् ही उसे तथ्यहीन या व्यर्थ माना जाना चाहिए। इसी कोटि की एक अभ्यास विधि है—अर्हं और महाप्राण की ध्वनि। यह एक विलक्षण ध्वनि है जिसके विधिवत् पुनः-पुनः उच्चारण के प्रयोग से न केवल शारीरिक स्तर पर अपितु मानसिक एवं भावात्मक स्तर पर भी अनेक लाभदायक परिणाम अनुभव किए जा सकते हैं।

ध्वनि-तरंगों के शरीर-शास्त्रीय प्रभाव

जब उनका उच्चारण किया जाता है तब ध्वनि-तरंगें समूचे

Scanned by CamScanner

पसली-पिञ्जर में गूंजती हुई फुफ्फुस के वायु-प्रकोष्ठ पर पहुंचती है। इन प्रकंपनों से फुफ्फुसीय कोशिकाएं सक्रिय एवं सप्राण होकर ऑक्सीजन-कार्बन-डाइऑक्साइड के विनिमय को पूरी क्षमता के साथ सम्पादित करती है। इस ध्वनि का अन्तिम गूंजन मस्तिष्क में होता हुआ कपालीय तंत्रिकाओं को झंकृत करता है तथा उनका कायाकल्प करता है।

एक इटालियन वैज्ञानिक डॉ॰ लेसर लसारियो ने "ध्वनि-जनित तरंगों के मानव शरीर पर होने वाले प्रभावों" का २५ वर्ष तक वैज्ञानिक अध्ययन करने के बाद यह प्रमाणित किया कि—

१. उच्छ्वसन के साथ शब्द-स्वरों के उच्चारण द्वारा उत्पन्न प्रकंपनों से भीतरी अवयवों की मालिश (Massage) हो जाती है।

२. भीतर के ऊतकों और तंत्रिका-कोशिकाओं की गहराई तक प्रकंपन पहुंचते हैं।

३. अवयवों और ऊतकों में रक्त-संचार निर्बाध बनता है और उन्हें प्रचुर मात्रा में रक्त की आपूर्ति होने से प्राण-शक्ति दीप्त होती है।

ध्वनि-प्रकंपनों से मानसिक प्रभाव

ध्वनि-तरंगों से मानसिक प्रभाव शारीरिक प्रभावों की तुलना में और अधिक महत्त्व रखते हैं। यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि संगीत-लहरियों का मनुष्य एवं अन्य प्राणियों के भावों पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है। उपयुक्त संगीत के माध्यम से इच्छित परिवर्तन भावधाराओं में लाया जा सकता है। अब प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध कर लिया गया है कि ध्वनि द्वारा किए जाने वाले आंतरिक प्रकंपन-मर्दन के प्रभाव से न केवल मांसपेशियों का शिथिलीकरण किया जा सकता है अपितु ग्लानि, विषाद और हीन-भावना जैसे मनोदशाओं को भी दूर किया जा सकता है।

जब हम मौन होते हैं, तब भी बहुत बार हम मानसिक वाक्य-रचना द्वारा अपने स्वर-यंत्र को बहुत व्यस्त रखते हैं तथा इस प्रकार अपनी स्नायविक ऊर्जा का अधिक मात्रा में अपव्यय करते रहते हैं। अर्हं-ध्वनि के उच्चारण के समय हमारी मानसिक वाक्य-रचना की क्रिया समाप्त हो जाती है और इस प्रकार उस उपेक्षा से व्यर्थ ऊर्जा-व्यय से हम अपने आप को बचा लेते हैं।

अर्हं ध्वनि की तरंगों के द्वारा हम शामक विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करते हैं, जो लगातार उसी आवृत्ति वाले अनुनादी स्पन्दनों को

Scanned by CamScanner

शरीर में उत्पन्न करती रहती है। नवीनतम शरीर-शास्त्रीय अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि इन स्पन्दनों का हमारी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जिनके द्वारा हमारी भावधारा, चिंतन एवं आचरण को प्रभावित किया जा सकता है।

ध्वनि-प्रकंपनों के प्रभाव से हमारी अनैच्छिक तंत्रिका-संस्थान की दो धाराओं—अनुकंपी और परानुकंपी तंत्रिकाओं—के बीच अधिक अच्छा संतुलन स्थापित होता है।

एकाग्रता और अप्रमाद

प्रेक्षा से अप्रमाद (जागरूक भाव) आता है। जैसे-जैसे अप्रमाद बढ़ता है, वैसे-वैसे प्रेक्षा की सघनता बढ़ती है। हमारी सफलता एकाग्रता पर निर्भर है। अप्रमाद या जागरूक भाव बहुत महत्त्वपूर्ण है। शुद्ध उपयोग—केवल जानना और देखना बहुत महत्त्वपूर्ण है किंतु इनका महत्त्व तभी सिद्ध हो सकता है, जब ये लम्बे समय तक निरन्तर चलें। पचास मिनट तक एक आलम्बन पर चित्त की प्रगाढ़ स्थिरता का अभ्यास होना चाहिए। यह सफलता का बहुत बड़ा रहस्य है।

ध्यान का स्वरूप है अप्रमाद, चैतन्य का जागरण या सतत जागरूकता। जो जागृत होता है, वही अप्रमत्त होता है। जो अप्रमत्त होता है, वही एकाग्र होता है। एकाग्रचित्त वाला व्यक्ति ही ध्यान कर सकता है। जो अपने अस्तित्व के प्रति प्रमत्त होता है—अपने चैतन्य के प्रति जागृत नहीं होता, वह सब ओर से भय का अनुभव करता है। जो अपने अस्तित्व के प्रति अप्रमत्त होता है—अपने चैतन्य के प्रति जागृत होता है वह कहीं भी भय का अनुभव नहीं करता, सर्वथा अभय होता है।

अप्रमत्त व्यक्ति को कार्य के बाद उसकी स्मृति नहीं सताती। बातचीत के काल में बातचीत करता है। उसके बाद बातचीत का एक शब्द भी याद नहीं आता। यह सबसे बड़ी साधना है। आदमी जितना काम करता है, उससे अधिक वह स्मृति में उलझा रहता है। भोजन करते समय भी अनेक बातें याद आती हैं। जिस समय जो काम किया जाता है, उस समय उसी में रहने वाला साधक होता है। शरीर, मन और वाणी का योग या सामंजस्य विरल व्यक्तियों में ही मिलता है। जहां शरीर और मन का सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता, वहां विक्षेप, चंचलता और तनाव होते हैं।

साधना का अर्थ है—कर्म, मन और शरीर की एक दिशा। इसे

Scanned by CamScanner

एकाग्रता या ध्यान कुछ भी कह दीजिए। एकाग्रता में विचारों को रोकना नहीं होता अपितु अप्रयत्न का प्रयत्न होता है। प्रयत्न से मन और अधिक चंचल होता है। एकाग्रता तब होती है, जब मन निर्मल होता है। बिना एकाग्रता के निर्मलता नहीं होती और बिना निर्मलता के एकाग्रता नहीं होती। तब प्रश्न आता है, क्या करना चाहिए? अपने आपको देखना चाहिए। अपना दर्शन करो और अपने आपको समझो। अधिकांश लोग अपने आपको नहीं पहचानते।

धनवान और गरीब, वृद्ध और युवक, पुरुष और स्त्री—सबका एक ही प्रश्न आता है कि मन की अशांति कैसे मिटे? मन अशांत नहीं है, वह ज्ञान का माध्यम है। अज्ञानवश हम अशांति का उसमें आरोप कर देते हैं। फूल में गंध है। हवा से वह बहुत दूर तक फैल जाती है। क्या गंध चंचल है? नहीं, हवा के संयोग से गंध का फैलाव हो जाता है। वैसे ही मन राग के रथ पर चढ़कर फैलता है। यदि मन में राग या आसक्ति नहीं है, तो मन चंचल नहीं होता।

'क्षण भर भी प्रमाद मत करो।' यह उपदेश-गाथा है। पर अभ्यास की कुशलता के बिना कैसे संभव है कि व्यक्ति क्षण भर भी प्रमाद न करे। मन इतना चंचल और मोह-ग्रस्त है कि मनुष्य क्षण भर भी अप्रमत्त नहीं रह पाता। वह अप्रमाद की साधना क्या है? अप्रमाद के आलम्बन क्या है, जिनके सहारे कोई भी व्यक्ति अप्रमत्त रह सकता है?

प्रेक्षा-ध्यान अप्रमाद की साधना है जिसके मुख्यतः दस अंग हैं—

१. कायोत्सर्ग
२. अन्तर्यात्रा
३. श्वास-प्रेक्षा
४. शरीर-प्रेक्षा
५. चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा
६. लेश्या-ध्यान (रंग ध्यान)
७. भावना
८. अनुप्रेक्षा
९. विचार-प्रेक्षा और समता
१०. संयम

कायोत्सर्ग

शरीर की चंचलता, वाणी का प्रयोग और मन की क्रिया—इन सब को एक शब्द में योग कहा जाता है। ध्यान का अर्थ है—योग का निरोध। प्रवृत्तियां तीन हैं और तीनों का निरोध करना है। फलतः ध्यान के भी तीन प्रकार हो जाते हैं—कायिक ध्यान, वाचिक ध्यान और मानसिक ध्यान। यह कायिक ध्यान ही कायोत्सर्ग है। इसे काय-गुप्ति, काय-संवर, काय-विवेक, काय-व्युत्सर्ग और काय-प्रतिसंलीनता भी कहा जाता है।

Scanned by CamScanner

कायोत्सर्ग का अर्थ है–शरीर का व्युत्सर्ग और चैतन्य की जागृति। प्रयोग में इसका अर्थ है–शरीर की बाह्य स्थूल प्रवृत्तियों का निरोध, सभी ऐच्छिक (कंकालीय) मांसपेशियों की शिथिलता एवं चयापचय जैसी सूक्ष्म आंतरिक क्रियाओं का मन्दीकरण। इस शारीरिक स्थिति में मानसिक तनाव का विसर्जन होता है।

कायोत्सर्ग–शरीर की स्थिरता और शिथिलिता मानसिक एकाग्रता की पहली शर्त है। चित्त की स्थिरता के लिए शरीर की स्थिरता अनिवार्य है। इसलिए प्रेक्षा-ध्यान का पहला चरण कायोत्सर्ग है, जो सभी प्रकार से किये जाने वाले प्रेक्षा-ध्यानों के प्रारम्भ में ही किया जाता है।

पूरे शरीर का कायोत्सर्ग करने के बाद स्वरयंत्र का कायोत्सर्ग करना आवश्यक है। हमारी विचारधारा का उद्‌गम स्वरयंत्र की चंचलता से होता है। जितनी स्वरयंत्र की चंचलता उतनी ही चित्त की चंचलता। स्वरयन्त्र का सम्पूर्ण शिथिलीकरण करने से अन्तर्मन की साधना होती है। मन की चंचलता भी अपने आप समाप्त हो जाती है।

ध्यान के पहले चरण के अतिरिक्त भी कायोत्सर्ग का अभ्यास स्वतंत्र रूप से दीर्घकाल तक तय किया जा सकता है। यदि कोई कायोत्सर्ग के प्रयोग की विधि को सीख कर प्रतिदिन इसका नियमित अभ्यास करता रहे तो वह किसी भी स्थिति में तनाव-मुक्त, शांत और अविचलित रह सकता है।

पूरा शिथिलीकरण सध जाने पर चेतना और शरीर की पृथक्-पृथक् अनुभूति की जाती है, जिससे अनुभूति के स्तर पर "भेद-विज्ञान" का अभ्यास होता है। शारीरिक और मानसिक तनाव से मुक्ति पाने के लिए कायोत्सर्ग का अभ्यास बहुत उपयोगी है। दो घंटे तक सोने से शरीर एवं मांसपेशियों को जो विश्राम मिलता, उतना विश्राम आधे घंटे तक विधिवत् कायोत्सर्ग करने से मिल जाता है; बल्कि उससे अधिक विश्राम मिल जाता है। यह तनाव-जनित अनेक प्रकार की मनःकायिक बीमारियों का निर्दोष एवं सक्षम उपाय है।

अन्तर्यात्रा

अन्तर्यात्रा हो यदा, चंचल चित्त प्रशांत।
अन्तर्यात्रा से सदा, बनता नर निर्भ्रान्त।।
भीतर हो जब चेतना, भासित सहज स्वभाव।
रहे निरन्तरता अगर, हट जाता परभाव।।

प्रेक्षाध्यान का दूसरा चरण है–अन्तर्यात्रा। ध्यान की साधना में

Scanned by CamScanner

नाड़ी-तंत्र की प्राण-शक्ति (Nervous energy) को विकसित करना आवश्यक है। हमारी केन्द्रीय नाड़ी-तंत्र का मुख्य स्थान है—सुषुम्ना (Spinal Cord)। सुषुम्ना के नीचे का छोर—शक्ति-केन्द्र ऊर्जा या प्राणशक्ति का मुख्य केन्द्र है। अन्तर्यात्रा में चित्त को शक्ति-केन्द्र से सुषुम्ना के मार्ग से ज्ञान-केन्द्र तक ले जाना होता है। चेतना की इस अन्तर्यात्रा से ऊर्जा का प्रवाह या प्राण की गति ऊर्ध्वगामी होती है। इस यात्रा की अनेक आवृत्तियों से नाड़ी-तंत्र की प्राण-शक्ति विकसित होती है जो ध्यानाभ्यास के लिए आवश्यक है।

हमारे चैतन्य का, ज्ञान का केन्द्र है—नाड़ी संस्थान। यह समूचे शरीर में व्याप्त है। किन्तु पृष्ठरज्जु के नीचले सिरे में मस्तिष्क तक का स्थान चैतन्य का मूल केन्द्र है। आत्मा की अभिव्यक्ति का यही स्थान है। यही चित्त का स्थान है। यही मन का और इन्द्रियों का स्थान है। संवेदन, प्रतिसंवेदन, ज्ञान—सारे यहीं से प्रसारित होते हैं। शक्ति का भी यही स्थान है। ज्ञानवाही और क्रियावाही तंतुओं का यही केन्द्र स्थान है। केवल मनुष्य ही ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी कर सकता है। केवल दिशा का ही परिवर्तन हुआ कि जो शक्ति नीचे की ओर जाती थी वह ऊपर की ओर जाने लगती है। इतना सा ही अन्तर पड़ता है। मस्तिष्क की ऊर्जा का ऊपर जाना अध्यात्म जगत् में प्रवेश करना है। कामकेन्द्र की ऊर्जा का ऊपर जाना अध्यात्म जगत् में प्रवेश करना है। ऊर्जा के नीचे जाने से भौतिक सुख की अनुभूति होती है। ऊर्जा के ऊपर जाने से अध्यात्म-सुख की अनुभूति होती है। यह केवल दिशा-परिवर्तन का परिणाम है।

पृष्ठरज्जु में बह रही, सदा सुषुम्ना शांत।
ज्ञान-केन्द्र ऊपर सुखद, नीचे शक्ति नितांत।।
शक्ति-केन्द्र के पास है, कुंडलिनी का स्थान।
तेजोलेश्या लब्धि या, तैजस-तन अभिधान।।
सुप्त और जागृत उभय, कुंडलिनी के रूप।
योगरसिक नर समझते, इसका सही स्वरूप।।
कुंडलिनी की साधना, बन जाती है अभिशाप।
उचित मार्ग-दर्शन बिना, मिलता है सन्ताप।।
इसको जो नर साधता, लगती दीर्घ समाधि।
वृद्धि रुके नख केश की, विगलित आदि-व्याधि।।
द्विविध लब्धि तेजोमयी, विपुल और संक्षिप्त।
सुप्त शक्ति संक्षिप्त है, विपुल तेज से दीप्त।।

Scanned by CamScanner

श्वास-प्रेक्षा

श्वास शरीर में चलने वाली चयापचय की क्रियाओं का अभिन्न अंग है।

श्वास और प्राण, श्वास और मन—अटूट कड़ी के रूप में काम करते हैं। मन को हम सीधा नहीं पकड़ सकते। प्राण की धारा को सीधा नहीं पकड़ा जा सकता। किन्तु मन को पकड़ने के लिए प्राण को पकड़ें और प्राण को पकड़ने के लिए श्वास को पकड़ें। श्वास-परिवर्तन के द्वारा हम मानसिक विकास कर सकते हैं। चित्त को एकाग्र करने का एक सरल और सूक्ष्म उपाय है—श्वास-प्रेक्षा।

मन की शांत स्थिति या एकाग्रता के लिए श्वास का शांत होना बहुत जरूरी है। शांत श्वास के दो रूप मिलते हैं—१. सूक्ष्म-श्वास-प्रश्वसा, २. मन्द दीर्घ श्वास-प्रश्वास।

कायोत्सर्ग में श्वास-प्रश्वास का निरोध नहीं किया जाता, किंतु उसे सूक्ष्म कर दिया जाता है। प्राणवायु को मंद-मंद लेना चाहिए और मंद-मंद छोड़ना चाहिए। इसे ही दीर्घ-श्वास या मन्द श्वास-प्रश्वास कहा जाता है।

श्वास-विजय या श्वास-नियंत्रण के बिना ध्यान नहीं हो सकता—यह एक सचाई है।

हम श्वास लेते समय 'श्वास ले रहे हैं'—इसी का अनुभव करें, यही स्मृति रहे; मन किसी अन्य प्रवृत्ति में न जाए, वह श्वासमय हो जाए, उसके लिए समर्पित हो जाए। श्वास की भाव-क्रिया ही श्वास-प्रेक्षा है। यह नथुनों के भीतर की जा सकती है, श्वास के पूरे गमनागमन पर भी की जा सकती है। श्वास के विभिन्न आयामों और विभिन्न रूपों को देखा जा सकता है।

श्वास-प्रेक्षा के अनेक प्रयोग हैं—दीर्घश्वास-प्रेक्षा, समवृत्तिश्वास-प्रेक्षा आदि।

दीर्घश्वास-प्रेक्षा—प्रेक्षा-ध्यान का अभ्यास करने वाला सबसे पहले श्वास की गति को नियंत्रित करता है। वह श्वास को लम्बा, गहरा और लयबद्ध बना देता है। सामान्यतः आदमी एक मिनट में १५-१७ श्वास लेता है; दीर्घश्वास-प्रेक्षा के अभ्यास से यह संख्या घटाई जाती है। साधारण अभ्यास के बाद यह संख्या एक मिनट में १० से कम तक की जा सकती है और विशेष अभ्यास के बाद उसे और अधिक कम किया जा सकता है। श्वास को मन्द या दीर्घ करने के लिए तनपुट (Diaphragm) की मांसपेशियों का समुचित उपयोग किया जाता है। श्वास छोड़ते समय पेट की मांसपेशियां सिकुड़ती हैं और लेते समय वे फूलती हैं।

Scanned by CamScanner

श्वास को मन्द, दीर्घ या सूक्ष्म करने से मन शांत होता है। इसके साथ-साथ आवेश शांत होते हैं, कषाय शांत होते हैं, उत्तेजनाएं शांत और वासनाएं शांत होती हैं। श्वास जब छोटा होता है, तब वासनाएं उभरती हैं, उत्तेजनाएं आती हैं, कषाय जागृत होते हैं। इन सबसे श्वास प्रभावित होता है। इन सब दोषों का वाहन है—श्वास। जब कभी मालूम पड़े कि उत्तेजना आने वाली है, तब तत्काल श्वास को लम्बा कर दें, दीर्घश्वास लेने लग जाएं, आने वाली उत्तेजना लौट जाएगी। इसका कारण है कि श्वास का वाहन उसे उपलब्ध नहीं हो पाता है। बिना आलम्बन के कोई उत्तेजना या वासना प्रकट हो नहीं सकती। ध्यान की साधना करने वाला साधक मन की सूक्ष्मता को पकड़ने में अभ्यस्त हो जाता है। वह जान लेता है कि मस्तिष्क के अमुक केन्द्र में कोई वृत्ति उभर रही है। इस तत्काल दीर्घश्वास का प्रयोग प्रारम्भ कर देता है। उभरने वाली वृत्ति तत्काल शांत हो जाती है। साधक उन वृत्तियों की उत्तेजनाओं का शिकार नहीं होता।

श्वास वर्तमान की वास्तविकता है। उसे देखने का अर्थ है—समभाव में जीना, वीतरागता के क्षण में जीना, राग-द्वेष-मुक्त क्षण में जीना। जो व्यक्ति श्वास को देखता है, उसका तनाव अपने आप विसर्जित हो जाता है। दीर्घश्वास प्रेक्षा का प्रयोग चित्त को वर्तमान में चल रही क्रिया पर ही एकाग्र (Concentrate) होने के लिये प्रशिक्षित करने की सरल विधि है। इससे व्यक्ति की कार्य-क्षमता बढ़ती है।

जैसे ऊपर बताया गया था 'प्रेक्षा-ध्यान' आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने की पद्धति है। आत्मा को देखने का पहला द्वार है—श्वास। भीतर की यात्रा का पहला द्वार है—श्वास। जब भीतर की यात्रा शुरू करनी होती है, तब प्रथम प्रवेश-द्वार श्वास से गुजरना होता है। जब श्वास के साथ मन भीतर जाने लगता है, तब अन्तर्यात्रा शुरू होती है। श्वास आत्मा है। अतः जहां तक हम पहुंचना चाहते हैं वहां तक इसके द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने का अर्थ है—चित्त के द्वारा श्वास के स्पन्दनों को देखना।

समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा

जैसे दीर्घ श्वास-प्रेक्षा प्रेक्षा-ध्यान का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, वैसे ही समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा भी उसका महत्त्वपूर्ण सूत्र है। बायें नथुने से श्वास

Scanned by CamScanner

लेकर दायें से निकालना और दायें से लेकर बायें से निकालना—यह है समवृत्ति-श्वास। इसे देखना, इसकी प्रेक्षा करना, इसके साथ चित्त का योग करना महत्त्वपूर्ण बात है। प्रारम्भ में अंगुली द्वारा और बाद में संकल्प-शक्ति द्वारा श्वास की दिशा में परिवर्तन किया जाता है। समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा के माध्यम से चेतना के विशिष्ट केन्द्रों को जागृत किया जा सकता है। इसका सतत अभ्यास अनेक उपलब्धियों में सहायक हो सकता है।

दीर्घश्वास की साधना, चिरकालिक अभ्यास।
साधक को पल-पल रहे, अपना ही आभास।।
जागृत साक्षीभाव में, श्वास स्वयं है मन्द।
गति-आगति को देखना, प्रेक्षा का निस्यन्द।।
चलते, सोते, बैठते, करते काम प्रकाम।
प्रेक्षा केवल श्वास की, याद रहे हर याम।।
मानस की एकाग्रता, तन विकार से दूर।
क्षीण अहं की चेतना, क्रोध लोभ भी चूर।।
एक मिनट में सहज है, सोलह-सतरह श्वास।
प्रेक्षा से गति-मन्दता, बिना किए अभ्यास।।
प्रारम्भिक अभ्यास में, पांच-सात उच्छ्वास।
दीर्घ-साधना से स्वयं संभव सतत विकास।।
एक मिनट में एक ही, जिस क्षण आए श्वास।
मनस्तोष मिलता प्रचुर, जग जाता विश्वास।।
पूरक-रेचक-प्रक्रिया, कुम्भक प्राणायाम।
श्वास-संयमन का नियम, निर्विवाद अभिराम।।
कैसे कर सकते कहो, वे नर प्रेक्षा-ध्यान ?
श्वास-क्रिया-अनभिज्ञ जो, होकर भी मतिमान्।।
संगीतात्मक श्वास हो, जब गहरा लयबद्ध।
विकसित अन्तश्चेतना, स्वयं-स्वयं से बद्ध।।
स्थूल साधना योग से, होता सूक्ष्म-प्रवेश।
प्रेक्षा सतत शरीर की, मिटे सभी संक्लेश।।
बाहर भीतर एकरस रहता है जो धीर।
उसे नहीं लगता कभी, ठंडा गरम समीर।।
बाह्यरमण से ही मनुज, बनता जो निष्णात।
तो आलोडन के बिना, मिल जाता दधिजात।।

Scanned by CamScanner

शरीर-प्रेक्षा

साधना की दृष्टि से शरीर का बहुत महत्त्व है। यह आत्मा का केन्द्र है। इसी के माध्यम से चैतन्य अभिव्यक्त होता है। चैतन्य पर आए हुए आवरण को दूर करने के लिए इसे सशक्त माध्यम बनाया जा सकता है। शरीर को समग्र दृष्टि से देखने की साधना-पद्धति बहुत महत्त्वपूर्ण है–

"साधक चक्षु को संयत कर शरीर की प्रेक्षा करे। उसकी प्रेक्षा करने वाला उसके तीन भागों–ऊर्ध्व, मध्य और अधः को जान लेता है।"

"जो साधक वर्तमान में शरीर में घटित होने वाली सुख-दुःख की वेदना को (द्रष्टा भाव से) देखता है, वर्तमान क्षण का अन्वेषण करता है, वह अप्रमत्त हो जाता है।"

शरीर के प्रत्येक अवयव पर क्रमशः चित्त को एकाग्र कर वहां होने वाले प्राणधारा के प्रकंपनों को तटस्थ भाव से देखने का अभ्यास शरीर-प्रेक्षा है।

शरीर-प्रेक्षा की यह प्रक्रिया अन्तर्मुख होने की प्रक्रिया है। सामान्यतः बाहर की ओर प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा को अन्तर की ओर प्रवाहित करने का प्रथम साधन स्थूल शरीर है। शरीर-प्रेक्षा में पहले शरीर के बाहरी भाग को देखते हैं। शरीर के भीतर मन को ले जाकर भीतरी भाग को देखते हैं। शरीर के स्थूल और सूक्ष्म स्पन्दनों को देखते हैं। शरीर के भीतर जो कुछ है, उसे देखने का प्रयत्न करते हैं। हमारी कोष-स्तरीय चेतना जो हर कोष के पास है, उसे हम प्रेक्षा के द्वारा जागृत करते हैं। चेतना के जो कोष सोए हुए हैं कुण्ठित हैं, उन्हें जागृत करते हैं। शरीर का प्रत्येक कण चित्त के निर्देश स्वीकार करने के लिए तत्पर है कि वह जाग जाए और मन के साथ उसका संबंध-सूत्र जुड़ जाए। किन्तु जब जगाने का प्रयत्न नहीं होता तब वे मूर्च्छा में रह जाते हैं और ऐसी स्थिति में चित्त का निर्देश उन तक पहुंच ही नहीं पाता। वे निष्क्रिय ही बने रह जाते हैं। स्थूल शरीर के भीतर तैजस और कार्मण–ये दो सूक्ष्म शरीर हैं। उनके भीतर आत्मा है। स्थूल शरीर की क्रियाओं और संवेदनों को देखने का अभ्यास करने वाला क्रमशः तैजस और कार्मण शरीर को देखने लग जाता है। शरीर-प्रेक्षा का दृढ़ अभ्यास और मन के सुशिक्षित होने पर शरीर में प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा का साक्षात्कार होने लग जाता है। जैसे-जैसे साधक स्थूल से सूक्ष्म दर्शन की ओर आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे उसका अप्रमाद बढ़ता जाता है।

Scanned by CamScanner

स्थूल शरीर के वर्तमान क्षण को देखने वाला जागरूक हो जाता है। कोई क्षण सुखरूप होता है और कोई क्षण दुःखरूप। क्षण को देखने वाला सुखात्मक क्षण के प्रति राग नहीं करता और दुःखात्मक क्षण के प्रति द्वेष नहीं करता। वह केवल देखता और जानता है।

देखने का प्रयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उनका महत्त्व तभी अनुभूत होता है जब मन की स्थिरता, समता, दृढ़ता और स्पष्टता से दृश्य को देखा जाए। शरीर के प्रकंपनों को देखना, उसके भीतर प्रवेश कर भीतरी प्रकंपनों को देखना मन को बाहर से भीतर ले जाने की प्रक्रिया है।

शरीर में आत्मा और चेतना व्याप्त है। इसीलिए शरीर में संवेदन होता है। उस संवेदन से मनुष्य अपने स्वरूप को देखता है, अपने अस्तित्व को जगाता है और अपने स्वभाव का अनुभव करता है। शरीर में होने वाले संवेदन को देखना चैतन्य को देखना है, उसके माध्यम से आत्मा को देखना है।

शरीर में चैतन्य व्याप्त है, प्राणधारा प्रवाहित है, ज्ञान-तंतु (Sensory Nerves) और कर्म-तंतु (Motor Nerves) फैले हुए हैं—यही शरीर-प्रेक्षा का मूल आधार है। शरीर-प्रेक्षा के द्वारा शरीर में व्याप्त चैतन्य को जागृत किया जा सकता है, प्राण-प्रवाह को संतुलित किया जा सकता है, ज्ञान-तंतुओं एवं कर्म-तंतुओं की क्षमता बढ़ाई जा सकती है। परिणाम-स्वरूप जहां चेतना पर आया हुआ आवरण दूर होता है, वहां साथ ही प्राणशक्ति, ज्ञान-तंतु एवं कर्म-तंतु के पर्याप्त उपयोग तथा मांसपेशियों व रक्त-संचार (Blood Circulation) की क्षमता में संतुलन के माध्यम से अभीष्ट मानसिक एवं शारीरिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। शारीरिक बीमारियों को नष्ट कर स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है और रोग-प्रतिरोधक शक्ति का विकास किया जा सकता है।

दोहन करना शक्ति का, साधन मात्र शरीर।
बिना नाव कब पा सके, नाविक भी पर-तीर ?
प्रेक्षा करो शरीर की, है सीधी-सी बात।
मन को भीतर मोड़ लो, करो न फिर निर्यात।।
हर अवयव पर जो जमे, विधिवत् पूरा ध्यान।
संवेदन होता रहे, आए क्यों व्यवधान ?
अन्तर् शोधन के बिना, साध्य सिद्धि है दूर।
नहीं बहिर्मुख-चेतना, हो सकती रसपूर।।

Scanned by CamScanner

बाहर जो अभिराम है, भीतर कैसा रूप।
राग-द्वेष-उपरत बनो, देखो आत्म-स्वरूप।।
कायिक प्रेक्षा-ध्यान है, सहज सरल सदुपाय।
केन्द्र-जागरण मार्ग में, इसकी अनुपम दाय।।
प्रेक्षा का उद्देश्य है, समता का अभ्यास।
पल-पल नियमितता सधे, आए नया प्रकाश।।

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा

प्रेक्षा ध्यान की साधना का ध्येय है—चित्त की निर्मलता। चित्त को निर्मल बनाने के लिए—हमारी वृत्तियों, भावों या आदतों को विशुद्ध करने के लिए—पहले यह समझना जरूरी है कि अशुद्धि कहां जन्म लेती है और कहां प्रकट होती है। यदि हम उस तंत्र को ठीक समझ लेते हैं, तो उसे शुद्ध करने की बात में बड़ी सुविधा हो जाती है। हम योगशास्त्र की दृष्टि और वर्तमान में शरीर-शास्त्र की दृष्टि—इन दोनों दृष्टिकोण से इस पर विचार करें।

वर्तमान विज्ञान की दृष्टि के अनुसार हमारे शरीर में दो प्रकार की ग्रन्थियां हैं—वाहिनी-युक्त एवं वाहिनी-रहित (Ductless)। ये वाहिनी-रहित ग्रंथियां अन्तःस्रावी होती हैं। इन्हें 'एण्डोक्राइन ग्लैण्ड्स' कहा जाता है। पीनियल, पिच्यूटरी, थाइरॉयड, पेराथाइरॉयड, थाइमस, एड्रीनल और गोनाड्स—ये सभी अन्तःस्रावी ग्रन्थियां हैं। इसके स्राव हार्मोन कहलाते हैं। हमारी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक प्रवृत्तियों का संचालन इस ग्रंथियों के द्वारा उत्पन्न स्रावों (हार्मोनों) के माध्यम से होता है। हमारी सभी चैतन्य क्रियाओं का संचालन इस ग्रंथि-तंत्र के द्वारा होता है। अतः उन ग्रंथियों को चैतन्य-केन्द्र की संज्ञा दी गई है।

मनुष्य की जितनी आदतें बनती हैं, उनका मूल उद्गम-स्थल है—ग्रन्थि-तंत्र। हमारे शरीर के दो नियामक तन्त्र हैं—एक है नाड़ीतंत्र (Nervous system) और दूसरा है ग्रंथि-तन्त्र। नाड़ी-तंत्र में हमारी सारी वृत्तियां अभिव्यक्त होती हैं, अनुभव में आती हैं और फिर व्यवहार में उतरती हैं। व्यवहार, अनुभव या अभिव्यक्तीकरण—ये सब नाड़ी-तंत्र के काम हैं, किंतु आदतों का जन्म, आदतों की उत्पत्ति ग्रंथि-तंत्र में होती है। जो हमारी अन्तःस्रावी ग्रंथियां हैं, उनमें आदतें जन्म लेती हैं। वे आदतें मस्तिष्क के पास पहुंचती हैं, अभिव्यक्त होती हैं और व्यवहार में उतरती हैं।

Scanned by CamScanner

इसीलिए विज्ञान में एक शब्द का प्रयोग हुआ है—न्यूरो-एण्डोक्राइन सिस्टम। इसका अर्थ है ग्रंथि-तंत्र और नाड़ी-तंत्र का संयुक्त कार्य-तंत्र। यह संयुक्त-तंत्र 'अर्धचेतन मन' का एक भाग है। यह मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है अर्थात् मस्तिष्क से भी अधिक मूल्यवान है। यदि इसे सही साधनों के द्वारा संतुलित करते हैं, तो सभी अनिष्ट भावनाओं से मुक्ति मिलती है।

अन्तःस्रावी ग्रंथियों में नीचे की ग्रंथियां—अधिवृक्क ग्रंथियां (एड्रीनल) और जनन-ग्रंथियां (गोनाड्स)—ये वृत्तियां उत्पन्न होने का स्थान है। काम-वासना का स्थान है—जनन-ग्रंथियां (गोनाड्स) और भय, आवेग तथा बुरे भाव उत्पन्न होने का स्थान है—एड्रीनल-ग्रंथियां। योगशास्त्र की भाषा में इन्हें मणिपूर चक्र (तैजस-केन्द्र) और स्वाधिष्ठान चक्र (स्वास्थ्य-केन्द्र) कहा जाता है। क्रूरता, वैर, मूर्च्छा आदि स्वास्थ्य-केन्द्र में उत्पन्न होते हैं, वहां तृष्णा, ईर्ष्या, भय, कषाय और विषाद तैजस-केन्द्र में जन्म लेते हैं।

जब हमारा मन—हमारे विचार—नाभि से नीचे के भाग में शक्ति-केन्द्र तक दौड़ते रहते हैं, तब बुरी वृत्तियां उभरती हैं। बाद में आदत बन जाती है।

क्रोध, कलह, ईर्ष्या, भय, द्वेष आदि के कारण ये ग्रंथियां विकृत बनती हैं। इन आवेगों से सबसे ज्यादा प्रभावित होती है—एड्रीनल ग्रंथि। जब ये अनिष्ट भावनाएं जागती हैं, तब एड्रीनल ग्रंथि को अतिरिक्त काम करना पड़ता है। और-और ग्रन्थियां भी अतिश्रम से थक कर शिथिल हो जाती हैं। ग्रंथियों की शक्ति क्षीण हो जाती है। परिणाम-स्वरूप शारीरिक और मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम इन आवेगों और भावनाओं पर नियंत्रण करें। आवेगों को समझदारी से समेटें तथा ग्रन्थियों पर अधिक भार न आने दें। इसका उपाय है—चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा।

श्वास-प्रेक्षा, शरीर-प्रेक्षा और चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा—ये सब ग्रंथियों को सक्रिय और संतुलित करने के साधन हैं। हम चैतन्य-केन्द्रों (ग्रंथियों) पर ध्यान करें, वे सक्रिय होंगे।

ज्यों-ज्यों हमारा ध्यान हृदय (आनन्द-केन्द्र) के ऊपर के चैतन्य-केन्द्रों पर अधिक केन्द्रित होगा, त्यों-त्यों वे अधिक सक्रिय होते जाएंगे। उनकी सक्रियता से भय समाप्त होगा, आवेग समाप्त होंगे और अनिष्ट भावनाएं समाप्त हो जाएंगी। एक नया आयाम खुलेगा। नया आनन्द, नई स्फूर्ति

Scanned by CamScanner

तथा नया उल्लास प्राप्त होगा। चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा महत्त्वपूर्ण ही नहीं, वास्तव में अध्यात्म-विकास का सर्वोत्तम साधन है।

केन्द्र चेतना के सभी, है तन में अविकार।
वैज्ञानिक की ग्रन्थियां, चक्रयोग के द्वार।।
ये प्रसुप्त जब तक रहें, प्रज्ञा होती सुप्त।
नश्वर तन में समझ लो, ये हैं निधियां गुप्त।।
उनकी जागृति हेतु है, यह सारा अभियान।
ऊर्ध्वारोहण के लिए, साधक करे प्रयाण।।
ज्ञानकेन्द्र मस्तिष्क में, सहस्रार अभिधान।
ज्ञानमयी जो चेतना, उसकी है पहचान।।
शांति-केन्द्र सुख-उत्स है, उसका तालु स्थान।
शांति-गवेषक नर करे, समुचित अनुसंधान।।
ज्योति-केन्द्र पर ध्यान से आत्मिक अभ्युत्थान।
ज्योतित कण-कण को करे, यह सुन्दर अनुपान।।
दर्शन-केन्द्र प्रसिद्ध है, हितकर आज्ञाचक्र।
भृकुटि-मध्य प्रेक्षा सफल, जो मन रहे अवक्र।।
चाक्षुष केन्द्र कनीनिका, शांति-सेतु अविवाद।
सधे सहज एकाग्रता, तन-मन में आह्लाद।।
छठा केन्द्र है कान में, अप्रमाद अभिधान।
जागरूकता-वृद्धि में, है इसका अवदान।।
प्राण-केन्द्र नासाग्र पर, लगता जिसका ध्यान।
उसके प्राणों में सदा, भर जाती मुस्कान।।
ब्रह्म-केन्द्र जिह्वाग्र पर, जमे ध्यान अविराम।
सहज शान्त हो वासना, आत्मरमण परिणाम।।
केन्द्र विशुद्धि विशुद्ध है, कण्ठकूप अवधार।
शुभ जालंधर-बंध से, सहज सुधार-संचार।।
केन्द्र परम आनन्द का, देता सुख एकान्त।
हृदय-चक्र हृच्चेतना से संबद्ध नितान्त।।
तमहर तैजस-केन्द्र यह, है मणिपूर ललाम।
नाभिकमल आस्थान से, खुलते नव आयाम।।
स्वास्थ्य-केन्द्र जो चक्र है, मूलाधार महान्।
इसको जागृत कर बढ़ें, करें सत्य संगान।।

Scanned by CamScanner

लेश्या-ध्यान

'लेश्या' जैन दर्शन का परिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है—विशिष्ट रंगवाले पुद्गल द्रव्य (Matter) के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला जीव का परिणाम या चेतना का स्तर। कषाय की तरंगें और कषाय की शुद्धि होने पर आने वाली चैतन्य की तरंगें—इन सब तरंगों को भाव के रूप में निर्माण करना और उन्हें विचार, कर्म और क्रिया तक पहुंचा देना—यह लेश्या का काम है। लेश्या ही सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच सम्पर्क-सूत्र है।

लेश्या एक ऐसा चैतन्य-स्तर है, जहां पहुंचने पर व्यक्तित्व का रूपान्तरण घटित होता है। लेश्याएं अच्छी होंगी, तो व्यक्तित्व बदल जाएगा। लेश्याएं बुरी होंगी, तो व्यक्तित्व बदल जाएगा। दोनों ओर बदलेगा, रूपान्तरण घटित होगा। प्रश्न होता है कि वहां तक हम कैसे पहुंचें। हमें रंग का सहारा लेना होगा। रंग हमारे व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करते हैं। रंग स्थूल व्यक्तित्व, सूक्ष्म व्यक्तित्व, तैजस शरीर और लेश्या-तंत्र को भी प्रभावित करते हैं। यदि हम रंगों की क्रियाओं और उनके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समझ लेते हैं, तो व्यक्तित्व के रूपान्तरण में हमें बड़ा सहयोग मिल सकता है।

लेश्या के दो भेद हैं—द्रव्य-लेश्या और भाव-लेश्या—पौद्गलिक (Physical) लेश्या और आत्मिक-लेश्या। वह निरन्तर बदलती रहती है। लेश्या प्राणी के आभामंडल (Aura) का नियामक तत्त्व है। ओरा में कभी काला, कभी लाल, कभी पीला, कभी नीला और कभी सफेद रंग उभर आता है। भावों के अनुरूप रंग बदलते रहते हैं।

लेश्या के छह प्रकार हैं—कृष्ण, नील, कापोत, तैजस्, पद्म और शुक्ल। इनमें प्रथम तीन अशुभ हैं और अन्तिम तीन शुभ हैं।

हमारी वृत्तियां, भाव या आदतें—इन सबको उत्पन्न करने वाला सशक्त तन्त्र है—लेश्या-तन्त्र। बुरी आदतों को उत्पन्न करने वाला सशक्त तन्त्र है—कृष्ण-लेश्या, नील-लेश्या और कापोत-लेश्या। क्रूरता, हिंसा, कपट, प्रवंचना, प्रमाद, आलस्य आदि जितने दोष हैं, ये सब इन तीन लेश्याओं से उत्पन्न होते हैं।

लेश्या-ध्यान के द्वारा ये तीनों लेश्याएं बदल जाती हैं। कृष्ण-लेश्या शुद्ध होते-होते नील-लेश्या, नील-लेश्या कापोत-लेश्या और कापोत-लेश्या तेजो-लेश्या बन जाती है। तेजो-लेश्या का रंग है—बाल सूर्य जैसा और रंग का मनोविज्ञान बताता है कि अध्यात्म की यात्रा लाल रंग से शुरू होती है।

Scanned by CamScanner

तेजोलेश्या में आते ही आदतों में अपने आप परिवर्तन होने लग जाता है। उनमें स्वभावतः रूपान्तरण शुरू हो जाता है। पद्म-लेश्या में और भी अधिक बदलता है। शुक्ल-लेश्या में पहुंचते ही व्यक्तित्व का पूरा रूपांतरण (Transformation) हो जाता है।

भावधारा (लेश्या) के आधार पर आभामंडल बदलता है और लेश्या-ध्यान के द्वारा आभामण्डल को बदलने से भावधारा भी बदल जाती है। इस दृष्टि से लेश्या-ध्यान या चमकते हुए रंगों का ध्यान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमारी भावधारा जैसी होती है, उसी के अनुरूप मानसिक चिंतन तथा शारीरिक मुद्राएं होती हैं। इस भूमिका में लेश्या-ध्यान की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है।

तेजो-लेश्या छोड़ती, मन पर दिव्य प्रभाव।
उजले आभावलय से, सुख का प्रादुर्भाव।।
आकर्षण आभा-जनित, आकृति पर मृदुहास।
पतझर में भी फूलता, कोई नव मधुमास।।
जागृत शक्ति निरोध की, सक्रिय पाचन-तन्त्र।
पापभीरुता, नम्रता, अचपलता का मन्त्र।।
वह लेश्या है तेजमय, अणुओं का समुदाय।
जो वैचारिक परिणति, वह भावात्मक आय।।
शुद्ध, शुद्धतर, शुद्धतम द्रव्यों का संयोग।
तेज, ओज बढ़ता विपुल, मिटते दुःसह रोग।।
ध्यान-साधना काल में, लेश्या का विज्ञान।
रंगों के आधार पर, हो पूरी पहचान।।

भावना और अनुप्रेक्षा

ध्यान का अर्थ है प्रेक्षा—देखना। उसकी समाप्ति होने के पश्चात् मन की मूर्च्छा को तोड़ने वाले विषयों का अनुचिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। जिस विषय का अनुचिन्तन बार-बार किया जाता है, उससे मन प्रभावित हो जाता है, इसलिए उस चिन्तन या अभ्यास को भावना कहा जाता है।

आत्मा का मौलिक स्वरूप चेतना है। उसके दो उपयोग हैं—देखना और जानना। हमारी चेतना शुद्ध स्वरूप में हमें उपलब्ध नहीं है, इसलिए हमारा दर्शन और ज्ञान निरुद्ध है, आवृत है। उस पर एक परदा पड़ा हुआ है। उसे दर्शनावरण और ज्ञानावरण कहा जाता है। वह आवरण अपने ही मोह के द्वारा डाला गया है। हम केवल जानते है और केवल देखते नहीं

Scanned by CamScanner

हैं। जानने-देखने के साथ-साथ प्रियता या अप्रियता का भाव बनता है। वह राग या द्वेष को उत्तेजित करता है। राग और द्वेष मोह को उत्पन्न करते हैं। मोह ज्ञान और दर्शन को निरुद्ध करता है। यह चक्र चलता रहता है। इस चक्र को तोड़ने का एक ही उपाय है और वह है ज्ञाताभाव या द्रष्टाभाव, केवल जानना और केवल देखना। जो केवल जानता-देखता है, वह अपने अस्तित्व का उपयोग करता है। जो जानने-देखने के साथ प्रियता-अप्रियता का भाव उत्पन्न करता है, वह अपने अस्तित्व से हटकर मूर्च्छा में चला जाता है। कुछ लोग मूर्च्छा को तोड़ने में स्वयं जागृत हो जाते हैं। जो स्वयं जागृत नहीं होते, उन्हें श्रद्धा के बल पर जागृत करने का प्रयत्न किया जाता है।

"हे अद्रष्टा! तुम्हारा दर्शन तुम्हारे ही मोह के द्वारा निरुद्ध है; इसलिए तुम सत्य को नहीं देख पा रहे हो। तुम सत्य को नहीं देख पा रहे हो, इसलिए तुम उस पर श्रद्धा करो, जो द्रष्टा द्वारा तुम्हें बताया जा रहा है।"

अनुप्रेक्षा का आधार द्रष्टा के द्वारा प्रदत्त बोध है। उसका कार्य है—अनुचिन्तन करते-करते उस बोध का प्रत्यक्षीकरण और चित्त का रूपान्तरण।

जिस व्यक्ति को भावना का अभ्यास हो जाता है, उसमें ध्यान की योग्यता आ जाती है। ध्यान की योग्यता के लिए चार भावनाओं का अभ्यास आवश्यक है—

१. **ज्ञान भावना**—राग-द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से जानने का अभ्यास।

२. **दर्शन भावना**—राग-द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से देखने का अभ्यास।

३. **चारित्र-भावना**—राग-द्वेष और मोह से शून्य होकर, समत्वपूर्ण आचरण का अभ्यास।

४. **वैराग्य-भावना**—अनाशक्ति, अनाकांक्षा और अभय का अभ्यास।

मनुष्य जिसके लिए भावना करता है, जिस अभ्यास को दोहराता है, उसी रूप में उसका संस्कार निर्मित हो जाता है। यह आत्म-सम्मोहन की प्रक्रिया है। इसे 'जप' भी कहा जा सकता है। आत्मा की भावना करने वाला आत्मा में स्थित हो जाता है। ***'सोऽहं'*** के जप का यही मर्म है। ***'अर्हम्'*** की भावना करने वाले में 'अर्हत्' होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती

Scanned by CamScanner

है। कोई व्यक्ति भक्ति से भावित होता है, कोई ब्रह्मचर्य से और कोई सत्संग से। अनेक व्यक्ति नाना भावनाओं से भावित होते हैं। जो किसी भी कुशल कर्म से अपने को भावित करता है, उसकी भावना उसे लक्ष्य की ओर ले जाती है।

भावना नौका के समान है, नौका यात्री को तीर तक ले जाती है। उसी प्रकार भावना भी साधक को दुःख के पार पहुंचा देती है।

प्रतिपक्ष की भावना से स्वभाव, व्यवहार और आचरण को बदला जा सकता है। मोह-कर्म के विपाक पर प्रतिपक्ष भावना का निश्चित परिणाम होता है। उपशम की भावना से क्रोध, मृदुता की भावना से अभिमान, ऋजुता की भावना से माया और संतोष की भावना से लोभ को बदला जा सकता है। राग और द्वेष का संस्कार चेतना की मूर्च्छा से होता है, और वह मूर्च्छा चेतना के प्रति जागरूकता लाकर तोड़ी जा सकती है। ***प्रतिपक्ष भावना*** चेतना की जागृति का उपक्रम है, इसलिए उसका निश्चित परिणाम होता है।

साधना-काल में ध्यान के बाद स्वाध्याय और स्वाध्याय के बाद फिर ध्यान करना चाहिए। स्वाध्याय की सीमा में जप, भावना और अनुप्रेक्षा—इन सबका समावेश होता है। यथासमय और यथाशक्ति इन सबका प्रयोग आवश्यक है। ध्यान को समाप्त कर अनित्य आदि अनुप्रेक्षा का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान में होने वाले विविध अनुभवों में चित्त का कहीं लगाव न हो—इस दृष्टि से अनुप्रेक्षा के अभ्यास का महत्त्व है।

विचार-प्रेक्षा और समता

आत्मा सूक्ष्म है, अतीन्द्रिय है, इसलिए वह परोक्ष है। चैतन्य उसका गुण है। उसका कार्य है—जानना और देखना। चित्त और शरीर के माध्यम से जानने और देखने की क्रिया होती है, इसलिए चैतन्य हमारे प्रत्यक्ष है। हम जानते हैं, देखते हैं, तब चैतन्य की क्रिया होती है। समग्र साधना का यही उद्देश्य है कि हम चैतन्य की स्वाभाविक क्रिया करें। केवल जानें और केवल देखें। इस स्थिति में अबाध आनन्द और अप्रतिहत शक्ति की धारा प्रवाहित रहती है, किंतु मोह के द्वारा हमारा दर्शन निरुद्ध और ज्ञान आवृत रहता है, इसलिए हम केवल जानने और केवल देखने की स्थिति में नहीं रहते। हम प्रायः संवेदना की स्थिति में होते हैं। केवल जानना ज्ञान है। प्रियता और अप्रियता के भाव से जानना संवेदना है। हम पदार्थ को या तो प्रियता की दृष्टि से देखते हैं या अप्रियता की दृष्टि से। पदार्थ को केवल

Scanned by CamScanner

पदार्थ की दृष्टि से नहीं देख पाते। पदार्थ को केवल पदार्थ की दृष्टि से देखना ही समता है। वह केवल जानने और देखने से सिद्ध होती है। यह भी कहा जा सकता है कि केवल जानना और देखना ही समता है। जिसे समता प्राप्त होती है, वही ज्ञानी होता है। जो ज्ञानी होता है, उसी को समता प्राप्त होती है। ज्ञानी और साम्ययोगी—दोनों एकार्थक होते हैं।

हम इन्द्रियों के द्वारा देखते हैं, सुनते हैं, सूंघते हैं, चखते हैं, स्पर्श का अनुभव करते हैं तथा मन के द्वारा संकल्प-विकल्प या विचार करते हैं। प्रिय लगने वाले इन्द्रिय-विषय और मनोभाव 'राग' उत्पन्न करते हैं और अप्रिय लगने वाले इन्द्रिय-विषय और मनोभाव 'द्वेष' उत्पन्न करते हैं। जो प्रिय और अप्रिय लगने वाले विषयों और मनोभावों के प्रति सम होता है, उसके अन्तःकरण में प्रियता और अप्रियता का भाव उत्पन्न नहीं करते। प्रिय और अप्रिय तथा राग और द्वेष से परे वही हो सकता है, जो केवल ज्ञाता और द्रष्टा होता है। जो केवल ज्ञाता और द्रष्टा होता है, वही वीतराग होता है।

जैसे-जैसे हमारा जानने और देखने का अभ्यास बढता जाता है, वैसे-वैसे इन्द्रिय-विषय और मनोभाव प्रियता और अप्रियता उत्पन्न करना बन्द कर देता है। फलतः राग और द्वेष शांत और क्षीण होने लगते हैं। हमारी जानने और देखने की शक्ति अधिक प्रस्फुटित हो जाती है। मन में कोई विकल्प उठे, उसे हम देखें, विचार का प्रवाह चल रहा हो, उसे हम देखें। इसे देखने का अर्थ होता है कि हम अपने अस्तित्व को विकल्प से भिन्न देख लेते हैं। 'विकल्प दृश्य है' और 'मैं द्रष्टा हूं'—इस भेद का स्पष्ट अनुभव हो जाता है। जब विचार के प्रवाह को देखते जाते हैं, तब धीमे-धीमे उसका प्रवाह रुक जाता है। विचार के प्रवाह को देखते-देखते हमारी दर्शन की शक्ति इतनी पटु हो जाती है कि हम दूसरों के विचार-प्रवाह को भी देखने लग जाते हैं।

संयम : संकल्प-शक्ति का विकास

हमारे भीतर शक्ति का अनंत कोष है। उस शक्ति का बहुत बड़ा भाग ढका हुआ है, प्रतिहत है। कुछ भाग केवल अस्तित्व में है और कुछ भाग उपयोग में आ रहा है। हम अपने शक्ति के प्रति यदि जागरूक हों, तो केवल अस्तित्व में रही हुई शक्ति और प्रतिहत शक्ति को उपयोग की भूमिका तक ला सकते हैं।

शक्ति का जागरण संयम के द्वारा किया जा सकता है। हमारे मन

Scanned by CamScanner

की अनेक मांगें होती हैं। हम उन मांगों को पूरा करते चले जाते हैं। फलतः हमारी शक्ति स्खलित होती जाती है। उसके जागरण का सूत्र है—मन की मांग का अस्वीकार। मन की मांग के अस्वीकार का अर्थ है—संकल्प-शक्ति का विकास। यही संयम है। जिसका निश्चय (संकल्प या संयम) दृढ़ होता है, उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं होता।

संयम से जीव आस्रव (बुरी वृत्तियों) का निरोध करता है। संयम का फल अनास्रव है। जिसमें संयम की शक्ति विकसित हो जाती है, उसमें विजातीय द्रव्य का प्रवेश नहीं हो सकता। संयमी मनुष्य बाहरी प्रभावों से प्रभावित नहीं होता। संयम का सूत्र है—सब काम ठीक समय पर करो। सब काम निश्चित समय पर करो। यदि आप दो बजे ध्यान करते हैं और प्रतिदिन उस समय ध्यान ही करते हैं, मन की किसी अन्य मांग को स्वीकार नहीं करते, तो आपकी संयम-शक्ति प्रबल हो जाएगी।

संयम एक प्रकार का कुंभक है। कुंभक में जैसे श्वास का निरोध होता है, वैसे ही संयम में इच्छा का निरोध होता है। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, बीमारी, गाली, मारपीट—इन सब घटनाओं को सहन करो। यह उपदेश नहीं है। यह संयम का प्रयोग है। सर्दी लगती है, तब मन की मांग होती है कि गर्म कपड़ों का उपयोग किया जाए या सिगड़ी आदि की शरण ली जाए। गर्मी लगती है, तब मन ठंडे द्रव्यों की मांग करता है। संयम का प्रयोग करने वाला उस मांग की उपेक्षा करता है। मन की मांग को जान लेता है, देख लेता है, पर उसे पूरा नहीं करता। ऐसा करते-करते मन मांग करना छोड़ देता है, फिर जो घटना घटती है, वह सहज भाव से सह ली जाती है।

संयम-शक्ति का विकास इस प्रक्रिया से किया जा सकता है—जो करना है या जो छोड़ना है, उसकी धारणा करो—उस पर मन को पूरी एकाग्रता के साथ केन्द्रित करो। निश्चय की भाषा में उसे बोलकर दोहराओ, फिर उच्चारण को मंद करते हुए उसे मानसिक स्तर पर ले आओ। उसके बाद ज्ञान-तंतुओं (Sensory Nerves) और कर्म-तंतुओं (Motor Nerves) को कार्य करने का निर्देश दो। फिर ध्यानस्थ और तन्मय हो जाओ। इस प्रक्रिया के द्वारा हम शक्ति के उस स्रोत को उद्‌घाटित करने में सफल हो जाते हैं, जहां सहने की क्षमता स्वाभाविक होती है।

संकल्प का तात्पर्य है—दृढ़ निश्चय। किसी एक विचार का निश्चय कर उसमें तन्मय होना संकल्प है। संकल्प चित्त की वह दृढ़ स्थिति है, जिसमें

Scanned by CamScanner

व्यक्ति अपने निर्णय को साकार करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है।

संकल्प के तीन रूप हैं—स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतम।

स्थूल—संकल्प की अभिव्यक्ति शब्द के रूप में होती है।

सूक्ष्म—संकल्प विचार अथवा चिंतन के रूप में अंकित होता है।

सूक्ष्मतम—संकल्प शब्द, विचार के पूर्व अन्तर-चित्त में उठने वाली उर्मि है। वह ऊर्मि अत्यंत शक्ति-संपन्न और चैतन्य के सर्वाधिक निकट होती है।

संकल्प हो या विकल्प, उससे एक प्रकार के चित्त का निर्माण होता है। भारतीय मनीषियों ने इसलिए ही ***'शिवसंकल्पमस्तु मे मनः'*** कहा है। संकल्प के पीछे विशेषण लगाया गया है। बिना शिवत्व के संकल्प साधना का विघ्न बन जाता है। इसलिए ही जैन परम्परा में श्रद्धा, ज्ञान एवं चरित्र के पूर्व 'सम्यग्' शब्द का नियमन किया है। 'सम्यग्' शब्द अपने आप में रहस्य छिपाए हुए है।

संकल्प : कब और कैसे

संकल्प को अभिव्यक्त और स्वीकृत करने के लिए विशेष स्थिति का निर्माण आवश्यक है। उसके बिना किया गया संकल्प मात्र उच्चारण रह जाता है। संकल्प को सजीव करने के लिए उसमें प्राण का संचार आवश्यक है। प्राण का संचार एक विशेष वातावरण में ही किया जा सकता है। उसके लिए शरीर, वाक् और मन की एकरूपता अनिवार्य है।

अभ्यास

१. प्रेक्षा-ध्यान का आशय समझाते हुए प्रेक्षा-ध्यान की उपसम्पदा को स्पष्ट कीजिए।
२. कायोत्सर्ग क्या है? इसकी विधि और इसकी उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।
३. श्वास-प्रेक्षा और शरीर प्रेक्षा का तात्पर्य समझाइये और इनकी साधना-विधि स्पष्ट कीजिए।
४. लेश्या के अभिप्राय, उसके विभिन्न प्रकारों और उसकी साधना के सुफलों को स्पष्टतया समझाइये।
५. भावना और अनुप्रेक्षा का अन्तर स्पष्ट कीजिए और ध्यान की योग्यता प्राप्त करने के लिए अपेक्षित भावना तथा अनुप्रेक्षाओं के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
६. संयम और संकल्प की व्याख्या करते हुए उसकी महत्ता समझाएं।

Scanned by CamScanner

: २ :

कायोत्सर्ग

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

दबाव की कार्य-पद्धति

कायोत्सर्ग तनाव-विसर्जन की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को सीखना स्वस्थ रहने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बोधपाठ है। कायोत्सर्ग का अभ्यास दबाव द्वारा उत्पन्न हानिकारक प्रभावों को निष्फल करने के लिए किया जाता है। कायोत्सर्ग क्या है ? इसे समझने के लिए पहले समझना आवश्यक है कि 'दबाव' क्या है ? 'दबाव' शब्द भौतिक शास्त्र का शब्द है, जो पदार्थ के किसी भाग पर पड़ने वाले चाप या दाब का द्योतक है। जब किसी भी पदार्थ पर पड़ने वाले दाब से पदार्थ के आकार में परिवर्तन हो जाता है, तो उसे तनाव या टान कहा जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत संदर्भ में तनाव का अर्थ होगा—व्यक्ति के सामान्य सुख-चैन पूर्ण जीवन में पैदा होने वाली गड़बड़ यानी बेचैनी। जो भी परिस्थिति हमारी सामान्य विचार-धारा को अस्त-व्यस्त कर दे, उसे 'तनाव पैदा करने वाली' परिस्थिति कहा जाता है। 'दबाव' विषयक अंतर्राष्ट्रीय अधिकृत विद्वान् डॉ॰ हान्स सेल्ये (Hans Selye) 'दबाव' की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—'शरीर की टूट-फूट की रफ्तार को दबाव कहते हैं।' उनके अनुसार—सर्दी-गर्मी, गुस्सा, मादक वस्तुओं का सेवन, उत्तेजना, दर्द, शोक और हर्ष भी—ये सारे हमारे 'दबाव-तंत्र' को समान रूप से सक्रिय बनाते हैं। आधुनिक मनुष्य के मानस में पैदा होने वाले ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, घृणा या भय के भाव, सत्ता और संपत्ति के लिए संघर्ष, लालसाएं और वहम भी 'दबाव-तंत्र' को प्रवर्तित कर देते हैं। जब कभी इस प्रकार की तनावोत्पादक परिस्थिति किसी व्यक्ति के सामने उपस्थित होती है, तुरन्त ही एक आन्तरिक तन्त्र स्वतः ही सक्रिय हो उठता है। इस तन्त्र में क्रमशः शरीर के निम्नलिखित हिस्से सक्रिय रूप से भाग लेते हैं—

Scanned by CamScanner

(क) **हाइपोथेलेमस (अवचेतक)**—यह नाड़ी तन्त्र और ग्रन्थि-तन्त्र का संधि-स्थल है। यह हमारे मस्तिष्क का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है, जो सामान्य रूप से चेतन मन के द्वारा जिन क्रियाओं का नियन्त्रण नहीं होता, उन सभी क्रियाओं का संयोजन करता है।

(ख) **पीयूष ग्रंथि (पिच्यूटरी ग्लैण्ड)**—यह अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र की प्रधान ग्रंथि है, क्योंकि यह ग्रंथि अन्य ग्रन्थियों का नियमन करती है।

(ग) **एड्रीनल (अधिवृक्क) ग्रन्थियां**—ये एड्रीनालीन (एपिनेफ्रीन) एवं अन्य हार्मोनों का स्राव करती हैं, जिनसे व्यक्ति तनाव-युक्त एवं सावधान होता है।

(घ) **स्वायत्त नाड़ी संस्थान का अनुकम्पी विभाग**—यह विपत्ति की स्थिति में व्यक्ति को आक्रमण के लिए या भागने के लिए अंतिम रूप से तैयार करता है।

शारीरिक स्थितियां

उपरोक्त तंत्र के संयुक्त क्रियाकलाप के द्वारा शरीर के भीतर घटित होने वाली शारीरिक स्थिति का क्रम इस प्रकार होगा—

१. पाचक-क्रिया मन्द या बिल्कुल स्थगित हो जाती है।

२. लार-ग्रन्थियों के कार्य-स्थान से मुंह सूख जाता है।

३. चयापचय की क्रिया में तेजी आ जाती है।

४. श्वास तेजी से चलने लगता है तथा हांफ चढ़ जाती है।

५. यकृत द्वारा संगृहीत शर्करा को अतिरिक्त रूप से रक्त-प्रवाह में छोड़ा जाता है, जिसके माध्यम से उसे हाथ-पैर की मांसपेशियों को पहुंचाया जाता है।

६. शरीर के जिन भागों को अधिक रक्त की अपेक्षा हो, वहां तक उसे पहुंचाने के लिए हृदय की धड़कन बढ़ जाती है।

७. रक्तचाप बढ़ जाता है।

इन सारे परिवर्तनों के अलावा और भी अनेक जटिल परिवर्तन आते हैं।

इन परिवर्तनों के द्वारा शरीर में विद्युत्-रासायनिक एवं स्रावों (हार्मोनों) की ऊर्जा अत्यधिक मात्रा में पैदा होती है, ताकि हम अपनी क्रियाओं को त्वरित बना सकें। पर यदि कुछ करने की आवश्यकता न हो, तो यह अतिरिक्त ऊर्जा मांसपेशियों में "तनाव" के रूप में प्रतिबद्ध हो जाती है।

Scanned by CamScanner

अनुकम्पनी और परानुकम्पी संस्थान

संकट की स्थिति समाप्त होने पर तनी हुई मांसपेशियों को शिथिल, सामान्य प्रवृत्तियों को पुनः चालू तथा शांतिपूर्ण स्थिति में पुनः स्थापित करने आदि का दायित्व स्वतः-चालित नाड़ी-तंत्र के दूसरे विभाग—परानुकम्पी संस्थान पर है।

यद्यपि अनुकंपी और परानुकंपी संस्थानों का कार्य एक-दूसरे से विपरीत जैसा दिखाई देता है, फिर भी वस्तुतः ये एक-दूसरे के साथ गहरा तालमेल बिठाकर कार्य करते हैं। परानुकंपी संस्थान का उद्देश्य है—अनुकंपी संस्थान के कार्य को संतुलित करना। तदनुसार संकट की स्थिति समाप्त होने पर परानुकंपी संस्थान का सक्रिय होना स्वाभाविक है। उसकी सक्रियता अनुकंपी संस्थान से निष्पादित उत्तेजना को समाप्त कर, मांसपेशियों की रासायनिक स्थिति को पुनः सामान्य बनाकर, उन्हें शिथिल करती है। जहां अनुकंपी संस्थान आक्रमणशील और उत्तेजनावर्धक है, वहां परानुकंपी संस्थान मरम्मत करने वाला और शांतिवर्धक है। जब दोनों संस्थानों का कार्य सामान्य स्थिति में होता है अर्थात् दोनों में संतुलन बना रहता है, तब शरीर में सक्रियता और विश्राम/शांति का आवर्तन लयबद्ध गति से ठीक उसी प्रकार चलता है जैसा झूमा-झूमी में होता है। किन्तु जब संतुलन बिगड़ता है, तब खतरनाक तनाव की स्थिति पैदा हो जाती है। चूंकि वर्तमान युगीन जीवन-शैली व्यक्ति को निरन्तर उत्तेजित और सक्रिय बनाए रखती है, मरम्मत करने वाले उपकरण अर्थात् परानुकंपी संस्थान को अपना कार्य करने का मौका ही नहीं मिलता। फलतः शरीर की मांसपेशियां और स्नायु अपनी सहज, शिथिल/शांत अवस्था क्वचित् ही प्राप्त कर सकते हैं।

तनाव से गड़बड़ी

मनुष्य-सहित सभी प्राणियों में यह आन्तरिक तंत्र विद्यमान होता है और इसकी प्रतिक्रिया, जो प्राणी को संकट-स्थिति का मुकाबला करने या उससे भागने के लिए तैयार करती है, अनैच्छिक रूप से (स्वतः) घटित होती है। जब संकट-स्थितियां बार-बार आती हैं, तब 'दबाव-तंत्र' बार-बार सक्रिय होता है। यदि ऊपर वर्णित शारीरिक स्थिति लम्बे समय तक बनी रहे या उसका बार-बार पुनरावर्तन होता रहे, तो गम्भीर गड़बड़ी पैदा हो सकती है। इस प्रकार यदि रक्तचाप लगातार ऊंचा बना रहे और रक्तवाहिनियों की संकुचित स्थिति लगातार बनी रहे, तो उसका परिणाम हो सकता है।

Scanned by CamScanner

दिल का दौरा या रक्ताघात (मस्तिष्क की रक्त-वाहिनी का फट जाना)। यदि आमाशय आदि पाचन-अवयवों को मिलने वाली रक्त की मात्रा लगातार लंबे समय तक क्षीण रहे, तो पाचन-क्रिया में गड़बड़ी हो सकती है। यदि श्वास की गति लम्बे समय तक लगातार तेज बनी रहे, तो उसका परिणाम दमा आदि श्वास की बीमारियों के रूप में हो सकता है। मांसपेशियां के लम्बे समय तक लगातार तनाव से सिर, पीठ, गर्दन और कंधे में दर्द और पीड़ा पैदा हो सकती है। इन गड़बड़ियों के अलावा, निरन्तर तनाव से मानसिक आतंक की भावना पैदा हो सकती है, जो अकारण भय के रूप में होगी। यह न केवल भयावह होगी, अपितु मनुष्य को बिलकुल हताश बनाने वाली सिद्ध हो सकती है। इसका कारण यह है कि लगातार दबाव की स्थिति रहने पर ग्रन्थि-तन्त्र पहले गड़बड़ा जाता है और बाद में समूचा कार्य करना ही बन्द कर देता है। एड्रीनालीन का स्राव बन्द हो जाए, तो हृदय की गति मन्द हो जाएगी, रक्तवाहिनियां शिथिल हो जाएंगी, तथा मस्तिष्क को पहुंचने वाला रक्त बन्द हो जाएगा, जिससे बेहोशी आ सकती है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए अब पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो गए हैं कि अनेक प्रकार के रोगों को पैदा करने में तनाव काफी बड़ा निमित्त बनता है। यदि हम तनाव के दुष्परिणामों से बचना चाहते हैं, तो हमें ऐसा उपाय ढूंढना होगा, जिससे परानुकम्पी संस्थान अपना कर्त्तव्य क्षमतापूर्वक निभा सके अर्थात् बिगड़े हुए संतुलन बनाकर सामंजस्य को पुनः प्रस्थापित कर सके।

तनाव के कारण

ऊपर की चर्चा से ऐसा निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं होगा कि तनाव एकान्ततः हानिकारक ही है। कुछ होने के लिए या उपलब्धि के लिए कुछ मात्रा में तनाव आवश्यक भी है। जो हानि होती है, कार्य में बाधा आती है और थकावट या बीमारियां पैदा होती हैं, वह तनाव की निरन्तरता के कारण तथा उनकी अत्यधिक मात्रा के कारण है। दीर्घकालीन तनाव या उसकी हानिकारक अतिमात्रा की उत्पत्ति के कारणों में एक कारण है—व्यक्ति की जीवन-शैली में अचानक घटित होने वाला परिवर्तन। डॉ॰ होम्स (Holmes) और डॉ॰ आर॰ राहे (Rahe) ने जीवन-शैली के परिवर्तनों का अंकीकरण किया है—

(जैसे—दम्पति में से एक की मृत्यु)। उनके द्वारा बनाई गई सूची में दिए गए कुछ एक परिवर्तन एवं उनके अंक इस प्रकार हैं—

Scanned by CamScanner

क्र. सं.	घटना	अंक
१.	दम्पत्ति में से किसी एक की मृत्यु	१००
२.	तलाक	७३
३.	चोट या बीमारी	५३
४.	विवाह	५०
५.	कार्य से निष्कासन	४७
६.	सेवा-निवृत्ति	४५
७.	लैंगिक समस्याएं	३६
८.	कार्य (व्यवसाय) में परिवर्तन	२६
६.	जीवन की स्थितियों में परिवर्तन	२५
१०.	सोने या आहार सम्बन्धी आदतों में परिवर्तन	१६

यह सूची अपने आप में पूर्ण नहीं है। इनमें दी गई घटनाएं और उनके अंक भी सभी पर समान रूप से लागू नहीं होते, फिर भी यदि किसी भी व्यक्ति के किन्हीं घटनाओं से ३०० अंक प्राप्त होते हैं, तो भयंकर बीमारी की संभावना हो जाती है। १०० से ऊपर अंक आ जाए, तब उपचार की उपायों का सेवन आवश्यक हो जाता है। यह स्पष्ट है कि एक ही परिवर्तन की घटना को झेलना अधिक सरल होगा, किन्तु जीवन इतना सरल नहीं है। व्यक्ति को अनेक परिवर्तनों का युगपत् (एक साथ) सामना करना पड़ता है, वैसी स्थिति में कायोत्सर्ग आदि उपचारात्मक उपायों का सेवन अपेक्षित है।

क्या बचने का उपाय है ?

आधुनिक औषध-विज्ञान द्वारा प्रदत्त प्रशामक (ट्रेन्क्वीलाइजर्स) गोलियां केवल अस्थायी आराम का आभास कराती हैं, पर लम्बे काल में गोलियां स्वयं बीमारी से भी अधिक खतरनाक बन जाती हैं। तब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या हमारी वर्तमान युगीन परिस्थितियां और वातावरण के कारण विनाश तक पहुंचना ही हमारे भाग्य में लिखा है या ऐसा कोई रास्ता भी है, जिसके माध्यम से हम अपने आपको कम से कम उस रूप में परिस्थिति के अनुकूल बना सकते हैं, जिससे कि इस दैनिक दबाव के हानिकारक प्रभावों से बच जायें ?

सौभाग्यतः हमारे भीतर एक ऐसी सुरक्षात्मक प्रणाली है, जिसे सक्रिय बनाने पर उस शारीरिक अवस्था का निर्माण किया जाता है, जो "लडो या भागो" वाली प्रतिक्रिया से नितांत उल्टी स्थिति का सृजन कर

Scanned by CamScanner

सकती है। नोबेल-पुरस्कार विजेता स्वीट्जरलैंड के सुप्रसिद्ध शरीर-वैज्ञानिक डॉ॰ वालटर ने इस प्रणाली को "ट्रोपोट्रोफिक प्रतिक्रिया" की प्रणाली कहा है और उसे एक सुरक्षात्मक प्रणाली के रूप में निरूपित करते हुए बताया है कि इससे अधिक दबाव के द्वारा उत्पादित प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया की प्रतिरोधी क्रिया की जा सकती है।

डॉ॰ हर्बर्ट बेन्शन, एम॰ डी॰ ने इसे "तनाव-मुक्ति-प्रक्रिया" कहा है। हम अपने आपको इस प्रक्रिया का प्रशिक्षण दे सकते हैं और स्वयं-सूचन (Auto-suggestion) की तकनीक द्वारा अपनी आंतरिक सुरक्षात्मक प्रणाली को सक्रिय कर सकते हैं तथा तनाव द्वारा निष्पन्न स्थिति को दूर करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं; एड्रीनल के अतिरिक्त स्रावों के उत्पादन में क़मी कर सकते हैं और अनुकंपी संस्थान के दुष्प्रभाव को परानुकम्पी की सक्रियता द्वारा समाप्त कर सकते हैं; अन्ततोगत्वा मांसपेशियां शिथिल और तनावमुक्त बनेगीं और उदरीय कड़ापन समाप्त हो जाएगा। शिथिलीकरण (कायोत्सर्ग) का नियमित अभ्यास वर्तमान युगीन अनेक कष्टदायक बीमारियों से बचने के लिए रामबाण उपाय है।

तनाव-मुक्ति क्या है ?

तनाव-मुक्ति की साधना (कायोत्सर्ग का प्रयोग) तनाव को समाप्त करने का एकदम सीधा और निर्दोष तरीका है। तनाव-मुक्ति के बिना व्यक्ति न तो शांति प्राप्त कर सकता है, न स्वास्थ्य और न भूख, फिर चाहे व्यक्ति के पास सुखी होने के लिए कितने ही साधन क्यों न हों ? यदि कोई भी व्यक्ति इस साधना को सीख लेता है और प्रतिदिन आधा या पौन घंटा नियमित उसका अभ्यास करता है तो किसी भी परिस्थिति में न केवल तनाव-मुक्त और अनुद्विग्न रह सकता है, अपितु अपनी कार्यक्षमता और गुणवत्ता को बढ़ा सकता है।

कायोत्सर्ग की साधना का सही मूल्यांकन करने के लिए हमें मांसपेशियों की कार्य-पद्धति की जानकारी होनी चाहिए। हमारी मांसपेशियां सम्बन्धित स्नायु को उत्तेजना मिलते ही विद्युत् वेग से संकुचित होती हैं। हमारी कंकाली मांसपेशियों के कारण से ही हम इच्छानुसार हलन-चलन कर सकते हैं। हलन-चलन की क्रिया को समझने के लिए मांसपेशियों को हम विद्युत्-चुम्बक (electro magnet) के साथ उपमित कर सकते हैं और जो स्नायु (या नाड़ी) उसे उत्तेजित करता है, वह उस विद्युत् के तार के समान है, जो उसको मस्तिष्क से जोड़ता है।

Scanned by CamScanner

नींद के दौरान स्नायुओं के सामान्य रूप से विद्युत् प्रवाह बन्द हो जाता है और विद्युत्-चुम्बक प्रायः चुम्बकत्व-रहित हो जाता है। केवल कुछ सुरक्षा ओर जीव टिकाने वाली क्रियाओं में प्रवृत्त मांसपेशियों को छोड़कर शेष सारी मांसपेशियां नींद में शिथिल हो जाती हैं।

जब कोई व्यक्ति विश्राम की मुद्रा में होता है, तब भी स्नायुओं में प्रवाहित होने वाला विद्युत्-प्रवाह बहुत मन्द-सा होता है। इससे मांसपेशियों का चुम्बीकरण भी मन्द होता है और इसलिए वे शांत-शिथिल पड़ी रहती है।

जब-जब व्यक्ति किसी भी शारीरिक (मानसिक या वाचिक) क्रिया में प्रवृत्त होता है, तब-तब मस्तिष्क के आदेशानुसार नाड़ियों में विद्युत्-प्रवाह को तीव्र कर दिया जाता है, जो विद्युत्-चुम्बकों (मांसपेशियों) को सक्रिय बना देता है, जिससे मांसपेशियां संकुचित की जा सकती हैं। कितने सूक्ष्म क्रियात्मक स्नायुओं (मोटर नर्ब्ज) को गति देना है, इसका आधार किए जाने वाले प्रयत्न की तीव्रता पर है।

नींद, विश्राम और क्रियात्मकता—इन तीनों स्थितियों में से व्यक्ति दिनभर में कितनी ही बार गुजरता रहता है। पर इन तीन के अतिरिक्त एक चौथी स्थिति और है, जो असामान्य होने पर भी कुछ व्यक्तियों के दैनिक जीवन में बार-बार घटित होती है और वह स्थिति है—अतितनाव की। निरन्तर कसे हुए जबड़े, तनी हुई भृकुटियां और आमाशय की मांसपेशियों का कड़ापन—ये इस प्रकार की स्थिति के कुछ प्रत्यक्ष चिन्ह हैं। इस स्थिति में हमारी शरीरस्थ विद्युत्-चुम्बकों का तीव्र विद्युत्-प्रवाह के कारण अति-चुम्बकीकरण (Over-magnesization) हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप हमारी मांसपेशियों के दल एक स्थायी संकुचन की स्थिति में बने रहते हैं, जो कि बहुत बार आवश्यक होता है। इसके कारण हमारी स्नायविक और मांसपेशिय ऊर्जा का एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यर्थ चला जाता है, क्योंकि इस स्थिति में विद्युत् का निरन्तर व्यय होता है। ऊर्जा का व्यय कितनी मात्रा में होगा, इस बात का आधार क्रियावाही मांसपेशियों की संख्या पर है, न कि उनकी लंबाई-चौड़ाई पर या उनकी शक्ति पर। जैसे—चेहरे की एक छोटी-सी मांसपेशी को संकुचित करने में उतनी ही स्नायविक ऊर्जा व्यय होती है, जितनी कि पैर की एक बड़ी मांसपेशी को सक्रिय करने में होती है। इस प्रकार ऊर्जा का होने वाला समग्र व्यय क्रियावाही तंतुओं की संख्या और विद्युत्-वाहकों के भीतर चलने वाले

Scanned by CamScanner

विद्युत-प्रवाह के सामर्थ्य—इन दोनों पर निर्भर है। दूसरी विशेष बात यह है कि जहां हमारे अन्य ऊतकों में प्रतिदिन लाखों और करोड़ों की संख्या में निकम्मी और मृत कोशिकाओं का स्थान नई और स्वस्थ कोशिकाएं ले लेती हैं, वहां स्नायविक कोशिकाओं को उनके पुरानी या मृत होने पर भी बदला नहीं जा सकता। ज्यों-ज्यों व्यक्ति की आयु बढ़ती है, स्नायविक कोशिकाओं की संख्या निरंतर घटती जाती है। यदि किसी भी कारण से हम उन्हें आहत कर देते हैं (उदाहरणार्थ—मानसिक दबाव के रूप में उनसे अधिक कार्य लेने पर ऐसा घटित होता है), तब हम सदा-सदा के लिए उन्हें गवां देते हैं, जो अपने पीछे अपूरणीय क्षति छोड़ जाती है।

संकल्पपूर्वक यदि संपूर्ण शिथिलीकरण को जागरूकता के साथ-साथ किया जाता है, जिसे कायोत्सर्ग कहा जाता है, तो हम उपरोक्त प्रकार की थकान, क्षति से बच सकते हैं। कायोत्सर्ग के द्वारा मांसपेशियों रूप विद्युत्-चुम्बकों को विद्युत् पहुंचाने वाले तारों (स्नायुओं) का सम्बन्ध नींद की अपेक्षा और अधिक क्षमतापूर्वक स्थगित किया जा सकता है। इसके विद्युत् के प्रवाह को करीब-करीब शून्य तक पहुंचा कर ऊर्जा के व्यय को न्यूनतम बनाया जा सकता है।

कायोत्सर्ग से तनाव-मुक्ति

अनेक घंटों की अव्यवस्थित निद्रा की अपेक्षा आधा घंटा के सधे हुए कायोत्सर्ग से व्यक्ति के तनाव और थकान को अधिक भली-भांति दूर किया जा सकता है। कायोत्सर्ग की साधना हमारी सचेतन इच्छा-शक्ति के शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को व्यक्त करने वाली एक साधना है। हमारी यह इच्छा शक्ति किसी आततायी तानाशाह की तरह हाथ में चाबुक लेकर अपनी शक्ति के बल पर दूसरों को चलाने वाली नहीं, अपितु उस स्नेहमयी माता की तरह है जो ममता और धैर्य के द्वारा अपने जिद्दी बच्चे को ठीक करती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कायोत्सर्ग कभी भी बल-प्रयोग, तनातनी या हिंसक भावों से नहीं, अपितु विनम्र निवेदन-मूलक स्वतः-सुझावों से ही सधता है।

स्वयं-सूचना की विलक्षण चिकित्सा-शक्ति

प्राचीन युग में मनुष्य और पशु दोनों की ऐसी आन्तरिक संज्ञाएं उपलब्ध थीं, जो अपने आपको स्वस्थ रखने के लिए उन्हें क्या करना है, उस दिशा में मार्ग-दर्शन करती रहती थीं। कालान्तर में पशुओं में संज्ञाएं

Scanned by CamScanner

बनी रहीं, पर मनुष्य ज्यों-ज्यों सभ्यता के क्षेत्र में आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों अपनी इन नैसर्गिक उपलब्धियों से वंचित होता गया। फिर भी किसी तरह लगभग प्रत्येक गांव या समाज में इक्के-दुक्के ऐसे व्यक्ति अवश्य मिलते हैं, जो अपनी ऊपरी उल्लिखित संज्ञाजन्य उपलब्धियों को पर्याप्त मात्रा में बचा कर रखते हैं। ऐसे व्यक्तियों को सामान्यतः "उपचारकर्ता" (हीलर) की संज्ञा दी जाती है। छोटे गांवों में "सयाना", "ओझा", "झाड़ा-झपटा करने वाला" आदि व्यक्तियों के रूप में हम आज भी ऐसे "उपचार-कर्ताओं" को देख सकते हैं। ऐसे 'महाशयों' को प्राकृतिक उपचार, पथ्य-परहेज, जड़ी-बूटी, हड्डी बैठाना (पहलवानों द्वारा हड्डी की मरम्मत), साधारण शल्य-क्रिया आदि उपचारों के अलावा आस्था-उपचार (फेंथ-हीलिंग) की पद्धति का ज्ञान भी था, जिसके द्वारा वे रोगी को शिथिलीकरण करवा कर या सम्मोहित कर सुझाव/निर्देश देते थे। इस प्रकार सुझाव-चिकित्सा अथवा स्वयं-सूचना-चिकित्सा मनोरोग-चिकित्सा प्रणालियों (साइकोथेरेपी) में सर्वाधिक प्राचीन पद्धति है, ऐसा कहा जा सकता है।

प्राचीन काल से अब तक प्रायः सभी संस्कृतियों ने चैतन्य की गहराई के स्तरों की छानबीन करने का प्रयत्न किया है। इस गवेषणा के दौरान जाने-अनजाने शिथिलीकरण/सुझाव-चिकित्सा की यह प्रक्रिया हस्तगत होती रही है। प्रत्येक संस्कृति ने अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार चैतन्य की इन शक्तियों की व्याख्या करने की कोशिश की है। इस विषय में शोधकर्ताओं ने बताया है कि सभी आदिम संस्कृतियां अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के रूप में उपर्युक्त प्रक्रिया को नाना रूपों में प्रयुक्त करती थीं। अब तक के समग्र इतिहास के दौरान यह बात पाई गई कि इन विविध रूपों में एक प्रबल एकरूपता विद्यमान थी तथा उसका बुनियादी तत्त्व था—शिथिलीकरण और सुझाव (या सूचन)। इसी तत्त्व को रोगी के उपचार के काम में लिया जाता था। मिश्र (देश) में तीन हजार वर्ष पूर्व ऐसी प्रक्रिया के प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जिसका अत्यन्त आधुनिक प्रक्रियाओं के साथ अद्भुत सा दृश्य सामने आता है।

सभ्यता के विकास के साथ 'आस्था-उपचार' में लोगों का विश्वास क्रमशः क्षीण होता गया और अन्त में लगभग नष्ट हो गया। 'आस्था-उपचार' की वह पद्धति भी जादू-टोना करने वालों या नीम हकीमों के हाथों में चली गई। मध्य-युग में 'आस्था-उपचार' की पद्धति पंडा पुरोहितों के हाथों में

Scanned by CamScanner

चली गई, जो हस्त-स्पर्श, प्रार्थना आदि के माध्यम से श्रद्धालुओं का उपचार करते थे।

आधुनिक युग में फ्रांज मेस्मर नामक आस्ट्रियन डॉक्टर प्रथम व्यक्ति था जिसने व्यवस्थित 'सूचन' के महत्त्व को मान्यता दी और सामूहिक उपचार के लिए उसका प्रयोग किया। इस पद्धति को 'मेस्मरिजम' की संज्ञा दी गई जो विश्व भर में व्याप्त हो गई और आज तक भी एक या दूसरे रूप में प्रचलित ही है। ग्रीक भाषा में नींद के लिए हिप्नोसिस शब्द का उपयोग होता है, जिसका अर्थ सम्मोहन भी होता है। सम्मोहन-विधि के अनेक उपयोग आधुनिक मनश्चिकित्सा के कुछ आधारभूत तत्त्व बन गए हैं। इसका एक महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक परिणाम यह है कि 'प्रस्ताव्यता' (सजेस्टिबिलिटी) हमारे प्रतिदिन के व्यवहार का एक प्राकृतिक, स्वस्थ और सामान्य अंग है, यह बात स्पष्ट हुई। आजकल अधिकाधिक संख्या में सामान्य डॉक्टर एवं मनश्चिकित्सक सुझाव को काम में लेते हैं।

स्वयं-सूचन

स्वयं-सूचन या स्व-सम्मोहन को हम एक विशेष प्रकार की सुझाव-चिकित्सा कह सकते हैं जिसमें व्यक्ति स्वयं अपने सुझावों के द्वारा अपनी चिकित्सा करता है। कुछ शोधकर्ताओं ने सिद्ध कर दिया है कि सभी प्रकार की 'सुझाव-चिकित्सा' वास्तव में मूलतः स्वयं-सूचन (या स्व-सम्मोहन) पर ही आधारित है। इसमें व्यक्ति अपनी क्षमता का विकास कर अपने आप गहरी शिथिलावस्था जैसी स्थिति में जा सकता है और उसके माध्यम से वह अपनी थकान, तनाव और सिरदर्द आदि को कम कर सकता है। स्वयं-सूचना के प्रयोगों को आम जनता तक पहुंचाने का कार्य बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में एमिल कोवे (Emile Coue) नामक फ्रेंच डॉक्टर ने किया। उसके द्वारा प्रदत्त नारे–"दिन दूना और रात चौगना बनता मेरा स्वास्थ्य सौ गुना" ने ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कर लिया।

शिथिलीकरण के प्रयोग के दौरान जो परिवर्तन शरीर में घटित होते हैं, उन्हें मापा जा सकता है। हाल में किए गए अनुशीलनों से यह पता चला है कि इन प्रयोगों के परिणाम-स्वरूप निम्नलिखित शारीरिक घटकों में हितकर परिवर्तन घटित होते हैं–

(१) रक्त का शर्करा-स्तर

(२) रक्त में श्वेत कणों की संख्या (जो प्रतिरोधात्मक शक्ति के उत्पादक हैं)।

Scanned by CamScanner

(३) विद्युत मस्तिष्कीय लेखांकन (ई. ई. जी.)

स्वयं-सूचन के प्रयोग कि सफलता का आधार है—शरीर की शिथिल या तनाव-मुक्त और स्थिर अवस्था। जितनी अधिक शिथिलता और स्थिरता, उतनी अधिक सफलता।

कायोत्सर्ग के प्रयोग का आधार है—स्वयं-सूचन। इस प्रयोग में शरीर के प्रत्येक अवयव को स्नेहमय स्वतः सुझावों द्वारा क्रमशः शिथिल और तनान-मुक्त बनाया जाता है।

कायोत्सर्ग के सहायक तत्त्व

स्वस्थ जीवन के लिए कायोत्सर्ग के अतिरिक्त शारीरिक प्रवृत्ति और व्यायाम भी नितांत आवश्यक है। इससे मांसपेशियों में रक्त-संचार सुचारु रूप से होने में सहायता मिलती है। हमारी लगभग सभी मांसपेशियों के समूह के अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वी होते हैं—एक समूह जब शिथिल होता है, तब दूसरा समूह तन जाता है। यदि एक प्रकार के मांसपेशी-समूह को लम्बे समय तक स्थिर-संकुचित (तनी हुई) अवस्था में रखें, तो रक्त-संचार अवरुद्ध होता है, जिससे थकान के कारण शरीर में पैदा होने वाले रसायन—मुख्यतः दुग्धाम्ल (लेक्टिक एसिड) जमा हो जाता है (जो सामान्य स्थिति में रक्त-संचार के सुचारु रूप से होने पर वहां से हटा दिया जाता है) और इसी जमा होने वाले रसायनों के कारण ही व्यक्ति को पीड़ा, कड़ापन या थकान की अनुभूति होती है। अतः मांसपेशियों में दुग्धाम्ल आदि रसायनों के जमाव को रोकने के लिए उनमें रक्त का सुचारु प्रवाह होना अत्यन्त आवश्यक है।

मांसपेशियों के क्रमिक संकोच-विकोच द्वारा किये गये लयबद्ध आसन आदि व्यायाम से रक्त का संचार सुचारु बनता है तथा पीड़ा, थकान आदि में कमी होती है।

बैठने, खड़े रहने आदि की सही मुद्रा और आसन को मांसपेशियों को तनाव-मुक्त रखने की कुंजी कहा जा सकता है। हमारे शरीर को प्रतिक्षण गुरुत्वाकर्षण का प्रतिकार करना पड़ता है। बैठने, खड़े रहने आदि में आदतन गलत मुद्रा या आसन से मांसपेशियों में सतत् खिंचाव पैदा हो सकता है या उनकी संरचना में बिगाड़ हो सकता है।

सही ढंग से खडे रहने की विधि है—गर्दन और रीढ़ की हड्डी दोनों सीधी रेखा में रहनी चाहिए तथा सिर को संतुलित अवस्था में गर्दन पर टिकाए रखना चाहिए। सिर न तो एक ओर झुका रहे और न आगे की ओर

Scanned by CamScanner

बाहर निकला हुआ हो। उदर का भाग थोड़ा-सा भीतर की ओर खींचा हुआ हो तथा छाती के भाग को पूरी तरह फूलने में कोई अवरोध न हो। कंधे आगे की ओर झुके नहीं तथा दोनों ओर मुक्त रूप से लटकते रहें। स्मरण रहे कि सही आसन (या मुद्रा) फौजी ढंग से अकड़कर सावधान की स्थिति में स्थित होना नहीं है, अपितु मांसपेशियों को शिथिल अवस्था में रखते हुए खड़े रहना है। इसी प्रकार सही ढंग से बैठने में भी गर्दन या रीढ़ की हड्डी सीधी रहेगी, बिना अकड़न के तनाव-रहित और शिथिल रहेगी। इससे भिन्न प्रकार से बैठने या खड़े रहने की आदत से पीठ में दर्द या शरीर के आकार में विरुपता आने की संभावना है।

बैठते समय कभी भी धंसकर नहीं बैठना चाहिए या पीठ को वक्रता युक्त न रखें। टेबल पर कार्य करते समय आगे अधिक झुकने या कूबड़ निकालकर बैठने की आदत न डालें।

स्वर-यन्त्र का कायोत्सर्ग-मौन

क्या आप यह मान सकते हैं कि एक सार्वजनिक भाषणकर्त्ता को अपनी मांसपेशियों से कड़ी मेहनत करने वाले एक श्रमिक की अपेक्षा अधिक नाड़ी-तन्त्र ऊर्जा का व्यय करना पड़ता है ? पर वस्तुतः ऐसा होता है। उसका कारण यह है कि नाड़ी-तंत्रीय ऊर्जा का व्यय कार्य करने के लिए प्रयुक्त मांसपेशियों के परिणाम पर आधारित न होकर क्रिया-ईकाई (मोटर-यूनिट) की संख्या के अनुपात में होता है। जितना स्नायविक बल एक बड़ी मांसपेशी वाले अवयव (जैसे पैर) को संचालित करने में लगता है, उतना या उससे भी अधिक बल एक छोटी मांसपेशी वाले अवयव (जैसे चेहरे) को संकुचित-विकुचित करने के लिए लग सकता है। इस प्रकार एक वक्ता जो अपने स्वर-यंत्र की अनेक छोटी-छोटी मांसपेशियों का उपयोग करता है, वह एक श्रमिक की तुलना में बहुत अधिक ऊर्जा व्यय करता है या एक स्टेनो-टाइपिस्ट लुहार की अपेक्षा अधिक ऊर्जा खर्च करता है। इस दृष्टि से ऊर्जा के अपव्यय को रोकने तथा उसे संगृहीत करने में मौन एक बहुत ही मूल्यवान् माध्यम है।

जब आप बोलते हैं तो क्या होता है ? आपके मस्तिष्क में जो चिंतन निर्मित होता है, उसे वाणी द्वारा व्यक्त करने के लिए पहले उसे व्याकरण और भाषा के नियमानुसार वाक्य में परिवर्तित किया जाता है। उसके बाद उसे स्वर-यंत्र की मांसपेशियों की सक्रियता द्वारा ध्वनि के रूप में परिणत

Scanned by CamScanner

किया जाता है। इस कार्य के लिए स्वर-यंत्र की मांसपेशियों की आवश्यकतानुसार संकुचन-विकुचन करने में सही-सही निर्देश दिये जाते हैं और ध्वनि-तरंगों को प्रसारित करने के लिए आवश्यक हवा की मात्रा का नियन्त्रण किया जाता है। इसके अतिरिक्त जिह्वा, पीठ और चेहरे की मांसपेशियों को भी समान निर्देश दिए जाते हैं। इन सब क्रियाओं के लिए अनेक छोटी-छोटी मांसपेशियों को काम में लिया जाता है और इन मांसपेशियों को सक्रिय करने के लिए हजारों की संख्या में क्रियावाही नाड़ियों के माध्यम से विद्युत् आवेग का उपयोग होता है, जिसके लिये एक निश्चित मात्रा में ऊर्जा का प्रयोग आवश्यक है। स्थिति तो यह है कि यदि एक व्यक्ति को कुछ घंटों तक भाषण देना पड़े, तो संभवतः उसे इतनी अधिक ऊर्जा व्यय करनी पड़ेगी की व्यक्ति अत्यधिक थक जायेगा। इस प्रकार मौन की साधना से व्यक्ति बहुत बड़े ऊर्जा-व्यय से बच सकता है।

केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि हम व्यक्त रूप में बोलना बन्द करें। वास्तविक मौन का अर्थ तो यह है कि हम मानसिक रूप से भी बोलने की प्रक्रिया को बन्द करें, क्योंकि जहां तक स्नायविक ऊर्जा-व्यय का संबंध है, इसमें और व्यक्त वाणी में समान व्यय ही होता है। ऐसा इसलिए होता है कि मानसिक रूप से बोने में केवल स्वर-यंत्र को छोड़कर उन सभी क्रियावाही मोटर-यूनिटों का उपयोग होता है, जिनका उपयोग व्यक्त वाणी में होता है। इसलिए व्यक्त वाणी के संयम के साथ मानसिक वाणी के संयम का प्रयोग भी आवश्यक है, जो स्वर-यंत्र के शिथिलीकरण (कायोत्सर्ग) से घटित होता है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण

तनाव के तीन प्रकार

तनाव तीन प्रकार के हैं—शारीरिक तनाव, मानसिक तनाव और भावनात्मक तनाव। जब आदमी शारीरिक श्रम करते-करते थक जाता है, तब वह विश्राम करता है, पर दो घंटे सोने में जितना विश्राम मांसपेशियों को नहीं मिलता, उतना विश्राम आधे घंटे तक विधिवत् कायोत्सर्ग करने से मिल जाता है। हम शरीर के श्रम को भी जानते हैं और उस श्रम को मिटाने का उपाय—विश्राम को भी जानते हैं।

हम मन का श्रम तो करते है किन्तु उसको विश्राम देना नहीं जानते। हम चिंतन करना जानते हैं किंतु अचिंतन की बात नहीं जानते, चिन्तन से

Scanned by CamScanner

मुक्त होना नहीं जानते। जब हम सोचना प्रारम्भ करते हैं, तो उसको तोड़ना कठिन हो जाता है। कठिन इसलिए है कि हम अचिंतन की बात नहीं जानते।

मानसिक तनाव का मुख्य कारण है—अधिक सोचना। सोचने की भी एक बीमारी है। कुछ लोग इस बीमारी से इतने ग्रस्त हैं कि प्रयोजन हो या न हो, वे निरन्तर कुछ-न-कुछ सोचते ही रहते हैं। इसी में अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं।

मन को विश्राम देना तभी संभव है, जब हम वर्तमान में रहना सीख जाएं। वर्तमान में जीने का अर्थ है—मन को विश्राम देना, भार से मुक्त होना, मानसिक तनाव से छुटकारा पाना।

तीसरा है—भावनात्मक तनाव। यह बहुत ही जटिल है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है। जो वस्तु प्राप्त नहीं है, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना, उसी प्रयत्न में लगे रहना आर्त्त ध्यान है। प्रिय वस्तु की प्राप्ति तथा मनोज्ञ और मनोनुकूल पदार्थ की उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील रहना और अमनोज्ञ, अप्रिय और मन के विपरीत वस्तु से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना—भावनात्मक तनाव पैदा करता है।

रौद्र ध्यान भी भावनात्मक तनाव का कारण बनता है। मन में संकल्प-विकल्प चलता रहता है। रौद्र ध्यान में कभी हिंसा का भाव पैदा होता है, कभी प्रतिशोध का भाव पैदा होता है। मूल घटना कुछ क्षणों में होती है, किंतु प्रतिशोध की भावना वर्षों तक चलती रहती है। मन में निरन्तर बदला लेने की भावना बनी रहती है। इसी में सारी शक्ति का व्यय होता है। यही तनाव का कारण है।

आज के युग में शारीरिक तनाव एक समस्या है। मानसिक तनाव उससे उग्र समस्या है और भावनात्मक तनाव सबसे विकट समस्या है, भयंकर समस्या है। मानसिक तनाव से भी इसके परिणाम बहुत भयंकर होते हैं। इस समस्या से निबटने के लिए प्रेक्षाध्यान का सहारा लिया जाता है, कायोत्सर्ग का द्वार खोला जाता है। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास से आर्त्त-रौद्र ध्यान छूट जाता है। उससे उत्पन्न होने वाला तनाव घट जाता है। प्रेक्षाध्यान और कायोत्सर्ग—ये अपने आप में जीने के साधन हैं, अपने भाव (स्वभाव) में रहने के उपाय हैं।

कायोत्सर्ग : कायिक ध्यान

हम मनुष्य हैं। हमारे पास चार गतिशील तत्त्व हैं—शरीर, श्वास,

Scanned by CamScanner

वाणी और मन। प्रतिक्षण ये प्रकम्पित हैं। ये नई ऊर्मियों को लेते हैं और पुरानी ऊर्मियों को छोड़ते हैं। हमारा आकाश-मंडल इन ऊर्मियों से ऊर्मिल है, इनके प्रकम्पनों से प्रकम्पित है। ये प्रकम्पन हमारे जीवन का संचालन करते हैं। हमारे द्वारा छोड़े हुए प्रकम्पन दूसरों को प्रभावित करते हैं। दूसरों द्वारा छोड़े हुए प्रकम्पन हमें प्रभावित करते हैं। हम संक्रमण का जीवन जीते हैं, जहां हम परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अप्रभावित कोई नहीं है, पूर्णतः स्वतंत्र कोई नहीं है। अप्रभावित स्थिति और स्वतंत्रता अप्रकम्पन की दशा में ही प्राप्त हो सकती है। ध्यान उसका मुख्य साधन है। प्रकंपन से अप्रकंपन की ओर जाना ही ध्यान है। शरीर का अप्रकम्पन कायिक ध्यान—कायोत्सर्ग है। श्वास का अप्रकंपन श्वास-संयम है। वाणी का अप्रकंपन वाचिक ध्यान है। मन का अप्रकंपन मानसिक ध्यान है।

क्या प्रकम्पनों को रोका जा सकता है?

कोई भी शरीरधारी प्राणी प्रकम्पनों को सर्वथा नहीं रोक सकता है। हमारी शारीरिक चेष्टाओं का आधार पेशी-मंडल है। दो प्रकार की पेशियां होती हैं—ऐच्छिक और अनैच्छिक। ऐच्छिक पेशियों को हम अपनी इच्छा के अनुसार गति दे सकते हैं। अनैच्छिक पेशियों पर हमारी इच्छा का अधिकार नहीं होता। वे अपनी चेष्टा करने में स्वायत होती हैं। हम सब शरीर को स्थिर करने का प्रयत्न करते हैं, शरीर के प्रकंपनों को रोकने का प्रयत्न करते हैं, तब हमारा प्रयत्न ऐच्छिक पेशियों की चेष्टाओं को रोकने का ही होता है। हाथ, पैर आदि को गति देना हमारी इच्छा के अधीन है, इसलिए जब हम ध्यान करना चाहते हैं, तब सबसे पहले हाथ, पैर आदि को किसी विशेष मुद्रा में स्थापित कर उनकी गति को स्थगित कर देते हैं। यह कायिक ध्यान मानसिक ध्यान की मुद्रा हो जाती है। हृदय, फुफ्फुस, आमाशय, यकृत और आंतें—इन अवयवों की चेष्ठा हमारी इच्छा के अधीन नहीं है। इसलिए हम ध्यान की स्थिर मुद्रा में बैठे होते हैं, तब भी इनका प्रकंपन चालू रहता है। मस्तिष्क और स्व-संचालित स्नायु-मंडल की क्रिया भी चालू रहती है, इसलिए शरीर को स्थिर और मन को एक ध्येय पर केन्द्रित करने पर भी इन्द्रियों के अनुभव, सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी आदि की संवेदना होती रहती है। यह ध्यान की पहली भूमिका है।

शिथिलीकरण : मृत्यु की प्रक्रिया

कायोत्सर्ग मृत्यु की प्रक्रिया है। इसमें दो बातें घटित होती हैं—शरीर

Scanned by CamScanner

इतना शिथिल कि उसमें कोई ऐच्छिक (Voluntary) प्रवृत्ति नहीं होती। श्वास इतना मंद कि उसके स्पंदन अत्यन्त हल्के हो जाते हैं। लगता है श्वास बन्द हो गया। जब किसी व्यक्ति को जीवित होते हुए भी मृत होने की अनुभूति होती है, तब कायोत्सर्ग घटित होता है।

भेदविज्ञान की साधना

कायोत्सर्ग भेद-विज्ञान की साधना है—शरीर और चैतन्य का भेद, आकांक्षा और चैतन्य का भेद, प्रमाद और चैतन्य का भेद, उत्तेजना और चैतन्य का भेद। शरीर, इच्छा, नींद, प्रमाद और आवेग से भिन्न जो है, वह चैतन्य है।

कायोत्सर्ग में सबसे पहले होगा—ऐच्छिक संचलनों (Voluntary Movements) का संयम—हाथों का संयम, पैरों का संयम, वाणी का संयम और इन्द्रियों का संयम।

जब तक ऐच्छिक संचलनों को संपूर्ण रूप में सुसंयमित नहीं किया जाएगा, तब तक कायोत्सर्ग प्रारम्भ नहीं हो सकता। शरीर की स्थूल (ऐच्छिक संचलनों) की चंचलता को समाप्त करने के बाद सूक्ष्म क्रियाओं की चंचलता को मिटानी होगी। शरीर की सारी चंचलता प्राण-ऊर्जा और मन की चंचलता है। यदि प्राण की धारा और मन की धारा चैतन्य की ओर प्रवाहित होने लग जाती है, तो शरीर शांत हो जाता है, क्योंकि चंचलता पैदा करने वाली प्राण की ऊर्जा और मन की गति उसे प्राप्त नहीं हो रही है। जब शरीर शांत और स्थिर हो जाता है, तब उसका उत्सर्ग हो जाता है और पूरा कायोत्सर्ग सधता है।

विसर्जन : आत्म-दर्शन की प्रक्रिया

शरीर का शिथिलीकरण ही विसर्जन नहीं है। विसर्जन का अर्थ है—शरीर और चैतन्य के पृथक्त्व का स्पष्ट अनुभव। यह लगने लगे कि शरीर भिन्न है और चैतन्य भिन्न है—पिंजड़ा भिन्न है और पंछी पिंजड़े से भिन्न है—मुक्त है।

जब कायोत्सर्ग की स्थिति प्राप्त होती है, तब जानने की स्थिति प्राप्त होती है। कायोत्सर्ग आत्मा तक पहुंचने का द्वार है। आत्मा की झलक मिलती है, तो कायोत्सर्ग अपने आप सध जाता है। अध्यात्म का अर्थ है—अपने अस्तित्व की उपलब्धि—ज्ञाता-द्रष्टाभाव की उपलब्धि।

Scanned by CamScanner

अपराध किसी का, दण्ड किसी को

कायोत्सर्ग से हम दुःख के उपादान तक पहुंच जाते हैं। यह स्थूल शरीर दुःख को प्रकट करने का हेतु है, किन्तु दुःख का उपादान नहीं है। उपादान (मूल कारण) है—कार्मण शरीर। कायोत्सर्ग की स्थिति में हमें दुःख के उपादान का दर्शन होता है।

हमारा विरोध है उस कार्मण शरीर से जो हमें सता रहा है। एक सत्य स्थिर होता है कि कार्मण शरीर को क्षीण करना है, इस स्थूल शरीर का सहयोग लेना है। स्थूल शरीर से सहयोग का मतलब है उसे स्थिर करना।

चंचलता का चक्रव्यूह

कार्मण शरीर ने अपने अस्तित्व की सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है। हमारा अतिसूक्ष्म शरीर—कार्मण शरीर हमारे समूचे तंत्र को संचालित कर रहा है। उसकी व्यवस्था का सबसे बड़ा सूत्र—सबसे बड़ा रहस्य है—चंचलता।

चंचलता इसलिए कि अज्ञान बना रहे, जिससे चेतना को अपने अस्तित्व का पता न चले। यह एक ऐसा जाल है, जिसमें सब कुछ छिप जाता है। इतनी चंचलता, इतनी तरंगें, इतनी ऊर्मियां आ जाती हैं कि कुछ पता ही नहीं चलता। चंचलता नहीं होती, तो आत्मा कभी अपने स्वरूप में चला जाता, कोई संदेह नहीं। किन्तु एक चंचलता के कारण वह अपने स्वरूप से भाग रहा है।

इस प्रकार चंचलता कर्म-शरीर की सुरक्षा-व्यवस्था का ही नहीं अपितु उसकी आक्रामक नीति का भी मुख्य आधार है। सर्वप्रथम चंचलता को समाप्त करना होगा। चंचलता को समाप्त करने की दिशा में सबसे पहला चरण है—कायोत्सर्ग।

जब शरीर की प्रवृत्ति का निरोध होता है, तब सूक्ष्म शरीर—कार्मण शरीर को एक धक्का-सा लगता है। उसके चक्रव्यूह में एक गहरी दरार पड़ जाती है। कायोत्सर्ग में हम तो निश्चल होकर बैठ जाते हैं। स्थूल शरीर का स्थिर होना सूक्ष्म शरीर के लिए विस्फोट होना है। बेचारा इतना कांप उठता है कि उसे अनंत-अनंत परमाणुओं को उसी समय छोड़ देना पड़ता है। अनंत-अनंत परमाणु बिखरने लग जाते हैं। अपने अवयवों को तोड़कर गिरा देना होता है। वे टूटकर गिरने लग जाते हैं। कार्मण शरीर की पराजय का प्रारम्भ हो जाता है।

Scanned by CamScanner

आत्मा के बारे में संदेह, स्वतंत्र चैतन्य के बारे में सन्देह, त्रैकालिक अस्तित्व के बारे में सन्देह इसलिए है कि चंचलता विद्यमान है। चंचलता है, इसीलिए इतने विकल्प पैदा होते हैं, इतने तर्क पैदा होते हैं। उन विकल्पों के अन्धकार में, उन तर्कों के आवरण में, अस्तित्व का प्रश्न धुंधला हो जाता है और व्यक्ति के मन में संदेह पैदा हो जाता है। यदि यह बुद्धि का व्यायाम नहीं होता, यदि यह तर्क नहीं होता और इन सबको संचालित करने वाली यह चंचलता नहीं होती, तो अस्तित्व के बारे में कभी सन्देह पैदा नहीं होता। तर्क वास्तविकता पर पर्दा डाल देता है, सचाई को आवृत कर देता है। मनुष्य के मन में ऐसा विकल्प उठता है कि सत्य तिरोहित हो जाता है, पर्दे के पीछे चला जाता है। इस चंचलता के कारण यह घटना घटित होती है, अपने अस्तित्व का व्यक्ति को पता नहीं चलता। चंचलता का एक काम यह है कि आदमी को अपने अस्तित्व का पता न चले, अज्ञान बना रहे।

चंचलता का दूसरा काम है—अपने दुःख का पता न चले। दुःख है, पर पता नहीं चलता। व्यक्ति मानता नहीं कि दुःख है। 'दुःख है' यह कहता है, दुःख भोगता है, पाता है, अनुभव करता है, फिर भी इतनी जल्दी भूल जाता है कि मानो दुःख हुआ ही न हो। यह चंचलता नहीं होती, तो ऐसा नहीं होता। चंचलता के कारण व्यक्ति को अपने दुःख का, कमजोरी का, शक्तिहीनता का, अज्ञान का पता नहीं चलता।

चंचलता का चक्रव्यूह कैसे तोड़ें ?

साधना का सबसे पहला चरण है—कायोत्सर्ग—शरीर को स्थिर करना। इसका अर्थ है—शरीर की चंचलता को समाप्त करना। साधना का प्रारम्भ कायोत्सर्ग से होता है। कायोत्सर्ग का एक चरण है—शरीर को बिलकुल स्थिर, निश्चल और शांत कर बैठ जाना और कुछ भी नहीं करना।

लोगों ने कायोत्सर्ग को बहुत ही सीमित अर्थ में समझा है—कायोत्सर्ग अर्थात् शरीर का शिथिलीकरण। शरीर को पूरा शिथिल कर दो, कायोत्सर्ग हो गया। यह अर्थ पूरा नहीं है। यह केवल पचीस प्रतिशत अर्थ है कायोत्सर्ग का। पचीस प्रतिशत अर्थ है—सहिष्णुता का और पचास प्रतिशत अर्थ है—अभय। कायोत्सर्ग त्रिमूर्ति है। यह तीन मूर्तियों से बना है।

सहिष्णुता

कायोत्सर्ग का एक तत्त्व है—सहिष्णुता—क्षान्ति। साधक कायोत्सर्ग

Scanned by CamScanner

की मुद्रा में खड़ा है। जो कुछ हो रहा है, होने दे। पैर दर्द कर रहे हैं, करें। शरीर दुःख रहा है, दुःखे। पानी बरस रहा है, बरसे। आंधी और तूफान आ रहे हैं, आएं। सहिष्णुता—सहन करना और सहन करते रहना। जो होता है, होने दें, कोई चिन्ता नहीं। इस चिन्ता से मुक्त हो जाना ही कायोत्सर्ग है।

जिसमें सहिष्णुता का भाव विकसित नहीं है, कह कभी कायोत्सर्ग नहीं कर सकता। शरीर में दर्द होते ही स्थिरता टूट जाती है, आसन बदल दिया जाता है। मक्खी या मच्छर का स्पर्श होते ही हाथ उठ जाता है। सारा शरीर अस्थिर हो जाता है, चंचल हो जाता है। कायोत्सर्ग नहीं सधता।

सहिष्णुता या क्षांति के बिना कायोत्सर्ग नहीं हो सकता। सहिष्णुता के बिना काया का त्याग नहीं किया जा सकता।

अभय, अभय और अभय

जब सहिष्णुता सधती है, तब अभय घटित होता है। समूचे धर्म का रहस्य है—अभय। धर्म की यात्रा का आदि-बिन्दु है—अभय और अन्तिम बिन्दु है—अभय। धर्म का इति अभय है, धर्म अभय से प्रारम्भ होता है और अभय को निष्पन्न कर, कृतकृत्य हो जाता है। वीतरागता का आरम्भ अभय से होता है और वीतरागता की पूर्णता भी अभय में होती है।

जो व्यक्ति भय-मुक्त नहीं होता, वह कभी धार्मिक नहीं बन सकता, कायोत्सर्ग नहीं कर सकता।

कायोत्सर्ग का अर्थ है—अभय।

कायोत्सर्ग का अर्थ है—शरीर की चिंता से मुक्त हो जाना।

शरीर की चिंता से मुक्त हो जाना, सरल-सी बात लगती है। परन्तु यह इतनी सरल बात नहीं है। शरीर के प्रति बने हुए भय से छुटकारा पा लेना सरल बात नहीं है। **'ममेद शरीरम्'**—यह शरीर मेरा है—जिस क्षण में यह स्वीकृति होती है, उसी क्षण में भय पैदा हो जाता है। यह भय की उत्पत्ति का मूल कारण है। शरीर का ममत्व भय उत्पन्न करता है। ममत्व और भय दो नहीं है। जहां ममत्व है, वहां भय है और जहां भय है, वहां ममत्व है। ममत्व को छोड़ना भय-मुक्त होना है और भय-मुक्त होने का अर्थ है—ममत्वहीन होना।

शरीर के ममत्व को छोड़ना चैतन्य के प्रति जागना है। शरीर के प्रति जो ममत्व है, उससे छुटकारा पाना बहुत बड़ी उपलब्धि है।

Scanned by CamScanner

प्रयोजन

मनःकायिक (Psychosomatic) प्रयोजन

उच्च रक्तचाप की बीमारी होने पर भी बहुत वर्षों तक उसके रोग-लक्षण सामान्यतः सामने नहीं आते हैं, क्योंकि इस बीमारी का मायावी स्वभाव अपना खतरनाक प्रभाव छिपाकर अपने आपको निर्दोष प्रतीत कराता है। किन्तु अन्ततोगत्वा यह बीमारी हृदय या मस्तिष्क को क्षतिग्रस्त कर देती है अथवा व्यक्ति को एकाएक मृत्यु के मुंह में ढकेल देती है। यह बीमारी प्रत्यक्ष रूप में अथवा धमनियों के कड़ेपन के बढ़ जाने से परोक्ष रूप में हृदय और मस्तिष्क के ऊतकों के विनाश का कारण बन जाती है। जब धमनी का कड़ापन बढ़ जाता है, तब सामान्य रूप से उसका निशाना हमारी तीन प्राणाधार (Vital) अवयवों में से किसी एक को बनाया जाता है—हृदय, मस्तिष्क या गुर्दे।

उच्च रक्तचाप या हाइपरटेंशन हृदय को ऊंचे दबाव पर रक्त पम्प करने के लिए बाध्य कर देता है। इससे हृदय को अधिक कठोर श्रम करना पड़ता है तथा उस पर क्षतिकारक दबाव पड़ता है। उच्च रक्तचाप की यह बीमारी इसीलिए ज्यादा खतरनाक है कि इससे धमनियों के कड़े बनने की गति तेज हो जाती है। धमनियों के कड़ेपन का मुख्य कारण है धमनियों के अन्दर की दिवालों पर रक्त के थक्के, वसा (या चर्बी) और कैल्शियम आदि की परत जमना। सामान्य रूप से नरम और लचीली रहने वाली धमनियां कठोर बन जाती है, उनका लचीलापन नष्ट हो जाता है तथा वे आंशिक रूप से अथवा पूर्ण रूप से अवरुद्ध हो जाती हैं। इस अवरोध या रुकावट के घोर परिणाम आ सकते हैं।

धमनियों के कड़ेपन की बीमारी (Etherosclerosis) होने का खतरा रक्तचाप बढ़ने के साथ बढ़ जाता है। अर्थात् जितना-जितना रक्तचाप बढ़ता है, उतना-उतना खतरा बढ़ता है। यदि हृद्-धमनियां (Coronaries), जो बहुत पतली होती हैं अवरुद्ध हो जाएं, तो हृदय की कोशिकाओं की मृत्यु हो जाती है तथा दिल का दौरा पड़ जाता है। यदि मस्तिष्क की धमनियों में अवरोध पैदा हो जाए तो मूर्च्छा, मस्तिष्क की नस का फटना (Brain Haemorrhage) या पक्षाघात के दौरे पड़ना आदि घटित हो सकता है। इस प्रकार सतत बने रहने वाला उच्च रक्तचाप या हाइपरटेंशन

Scanned by CamScanner

हार्ट-अटैक का कारण या मूर्च्छा (हेमरेज, पक्षाघात आदि) जैसे मृत्यु के प्रमुख निमित्तों का एक अप्रत्यक्ष कारण है।

हाइपरटेंशन का एक प्रमुख कारण है अव्याख्येय (Essential) हाइपरटेंशन, जिनका अनुपात है—८० से ६५ प्रतिशत। इसके कारणों का अब तक पता नहीं चला है। सामान्य रूप से मानसिक दबाव (या तनाव) को इसका कारण माना जाता है। क्रोध, भय, चिंता जैसे भावात्मक आवेश, आवेग इसके होने के मुख्य रूप से कारणभूत होते हैं। यद्यपि यह बात सामान्य रूप से मानी जाती है, फिर भी चिकित्सा-शास्त्रियों ने इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। दबावपूर्ण स्थितियां और इनसे उत्पन्न होने वाले तनाव बहुधा इस प्रकार के अव्याख्येय हाइपरटेंशन के प्रत्यक्ष या परोक्ष निमित्त बन सकते हैं।

यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि क्या हम हाइपरटेंशन के अपरिहार्य खतरनाक परिणामों से बच सकते हैं? क्या हमारे शरीर के भीतर ऐसी कोई प्रणाली है, जो दबाव की प्रणाली से नितांत विलोम रूप में कार्य कर सके?

इसका उत्तर है—'हां, है।' सौभाग्य से हमारे शरीर में दबाव-पूर्ण स्थितियों का प्रतिकार करने के लिए एक आंतरिक प्रणाली है जिसे सक्रिय करने से निश्चित रूप से रक्तचाप को घटाया जा सकता है। हाइपरटेंशन के मरीजों को इस प्रतिरक्षात्मक प्रणाली को प्रवर्तित करना सिखाया जा सकता है, जिससे वह अपने रक्तचाप को कम कर सकता है। अगले प्रकरण में वर्णित कायोत्सर्ग का प्रयोग रक्तचाप को कम करने का एक उपचार है। युगों-युगों से यह प्रयोग मानवीय परम्पराओं में प्रचलित रहा है। चूंकि निरन्तर बने रहने वाला उच्च रक्तचाप धमनी-काठिन्य जैसी खतरनाक बीमारी पैदा करने में निमित्तभूत होता है, आनुषंगिक दुष्परिणाम न हो ऐसे किसी भी उपाय से रक्तचाप को कम करना श्रेयस्कर होगा। हाइपरटेंशन का प्रतिकार करने वाली औषधियां हमारे अनुकंपी नाड़ी-संस्थान की प्रवृत्ति को निरुद्ध कर रक्तचाप को कम कर देती है, किन्तु ऐसी औषधियां खतरनाक आनुषंगिक दुष्परिणाम लाती हैं और उससे अधिक गम्भीर समस्याएं पैदा हो सकती हैं। उपर्युक्त औषधियों की तरह कायोत्सर्ग के प्रयोग से उच्च रक्तचाप को कम किया जा सकता है, पर यह एक निरापद मार्ग है। कायोत्सर्ग के नियमित अभ्यास का मूल्य इसलिए बढ़ जाता है कि औषधियों के साथ उत्पन्न होने वाले आनुषंगिक दुष्परिणामों

Scanned by CamScanner

का कायोत्सर्ग के प्रयोग में सर्वथा अभाव होता है। इस बात से पूर्व उल्लिखित प्राक्कल्पना प्रमाणित होती है कि अधिकांश घटानाओं में हाइपरटेंशन की बीमारी का मूल कारण दबावपूर्ण स्थितियां हैं।

कायोत्सर्ग करने का एक अन्य मुख्य कारण है उसकी रोग-निरोधक शक्ति। अनुकंपी नाड़ी-संस्थान की अत्यधिक सक्रियता के दुष्परिणामों से बचने का यह एक सहज और निरापद मार्ग है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह प्रयोग उन भावात्मक बीमारियों को भी शांत करने का बहुत उपयोगी उपाय है, जिनकी उत्पत्ति बढ़ी हुई अनुकंपी नाड़ी-संस्थान की सक्रियता पर आधारित है।

कायोत्सर्ग का एक उपचारात्मक प्रयोग के रूप में दूसरा महत्त्वपूर्ण उपयोग है–धूम्रपान, मद्यपान जैसे मादक पदार्थों के व्यसन से पीड़ित व्यक्ति को व्यसन-मुक्त करना। भांग, चरस, गांजा, अफीम एवं उससे निकाले गए हेरोइन, कोकीन तथा एल.एस.डी. आदि खतरनाक नशीले या स्वापक पदार्थ हैं, जो सेवन करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य को बुरी तरह से बिगाड़ देते हैं तथा बहुधा उसे अकाल मृत्यु के मुंह में धकेल देते हैं।

प्रेक्षाध्यान-पद्धति के विभिन्न ध्यान-प्रयोगों के साथ कायोत्सर्ग के नियमित अभ्यास द्वारा कोई भी व्यक्ति सर्वथा व्यसन-मुक्त हो सकता है। इतना ही नहीं, वस्तुतः कायोत्सर्ग का प्रभाव व्यक्ति की उन मौलिक प्रवृत्तियों पर पड़ता है, जो उसे नशे के सेवन के लिए बाध्य कर देती है। इस प्रकार कायोत्सर्ग नशीले पदार्थों का एक अरासायनिक विकल्प है, जो सर्वथा निर्दोष या निरापद ही नहीं अपितु स्वास्थ्यवर्धक है। नशीले पदार्थों के सेवन से जो मस्ती आती है, उसकी अपेक्षा ध्यान द्वारा होने वाली आनन्दानुभूति अधिक गहरी और निर्दोष होती है।

आध्यात्मिक प्रयोजन

यदि हमें अपनी स्थूल चेतना की बात को भीतर में–सूक्ष्म तक पहुंचाना है तो कायोत्सर्ग करना आवश्यक है। यदि शरीर की प्रवृत्तियों का और स्नायविक प्रवृत्तियों का शिथिलीकरण नहीं है, तो बात भीतर तक नहीं पहुंच सकती। कायोत्सर्ग दोनों ओर से किया जा सकता है–बाहर से भीतर की ओर अथवा भीतर से बाहर की ओर चलने से। बाहर से चलेंगे, तब सबसे पहले हाथों, पैरों, वाणी और इन्द्रियों का संयम करना होगा। जब हम भीतर से चलेंगे, तब उस मुद्रा में बैठना होगा जिससे मन की

Scanned by CamScanner

दिशा और प्राण की धारा बदल जाए—मन और प्राण की सारी ऊर्जा, भीतर की ओर बहने लग जाए। यदि मन भीतर की ओर थम गया, यदि अस्तित्व और (चैतन्य) की कोई झलक मिल गई, तो शरीर के समस्त अवयव अपने आप शांत हो जाएंगे। प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता या अपेक्षा न होगी। जब हाथ, पैर और वाणी का संयम—शिथिलीकरण घटित होता है, तब इन्द्रियों के तनाव कम हो जाते हैं। उनमें उठने वाली आकांक्षाओं की तरंग कम हो जाती है। तब अध्यात्म की यात्रा शुरू होती है। अध्यात्म की यात्रा शुरू करने के लिए सबसे पहली शर्त है—कायोत्सर्ग।

साधना में कायोत्सर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कायोत्सर्ग करने का उद्देश्य क्या है ? इसका एक उद्देश्य है कि शक्ति का जो व्यर्थ ही व्यय हो रहा है, उसे रोका जाए। शरीर के द्वारा जो शक्ति खर्च हो रही है, वाणी के द्वारा जो शक्ति खर्च हो रही है, मस्तिष्क की जो शक्ति व्यर्थ ही खर्च हो रही है, उसे बचाया जा सके।

दूसरे शब्दों में कायोत्सर्ग की सारी प्रक्रिया इसीलिए है कि शक्ति को बचाया जा सके और शक्ति का सही अर्थ में उपयोग किया जा सके। इसका एकमात्र उपाय है—कायोत्सर्ग। हम कायोत्सर्ग करें, शिथिलता का अनुभव करें, जिससे कि हमारे शरीर की कोशिकाएं, हमारे शरीर का कण-कण विश्राम ले सके और उसकी शक्ति खर्च न हो, संचित रहे। श्वास को शांत करें। श्वास लम्बा लें। श्वास को मंद करें। जब श्वास मन्द होता है, तब शरीर शिथिल होता है, कायगुप्ति और कायोत्सर्ग सधता है, ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है, प्राणशक्ति का व्यय कम होता है।

अध्यात्म ने मनुष्य को बदलने की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया दी। उस प्रक्रिया के अनेक चरण हैं। उसका पहला चरण है—कायोत्सर्ग। इससे पुरानी आदतों में परिवर्तन आता है—मन का शोधन होता है। कायोत्सर्ग बुरे स्वभावों को बदलने वाला है। जो कायोत्सर्ग की प्रक्रिया को नहीं जानता, वह स्वभाव-परिवर्तन नहीं कर सकता। 'सेल्फ-हिप्नोटिज्म' के विशेषज्ञों ने इसके लिए सबसे पहला जो सूत्र दिया है वह है—'ओटो-रिलेक्सेशन'—'स्व-शिथिलीकरण'। यह कायोत्सर्ग की प्रक्रिया है। चाहे स्वभाव को बदलना हो, चाहे किसी बीमारी की चिकित्सा करनी हो, तो सबसे पहले कायोत्सर्ग करना होगा।

मानसिक शांति का सबसे बड़ा उपाय है—चित्त-समाधि। चित्त-समाधि के लिए आवश्यक है—चित्त की शुद्धि। चित्त की शुद्धि का सबसे बड़ा सूत्र

Scanned by CamScanner

है—शरीर की स्थिरता। शरीर जितना स्थिर होता है, उतना ही चित्त शुद्ध होता है। चित्त की अशुद्धि का सबसे बड़ा कारण है—चित्त की चंचलता। शरीर की स्थिरता हुए बिना चित्त की स्थिरता नहीं होती, शरीर की स्थिरता हुए बिना श्वास शांत नहीं होता, मौन नहीं होता, मौन शांत नहीं होता, स्मृतियां शांत नहीं होतीं, कल्पनाएं समाप्त नहीं होतीं, विचार का चक्र रुकता नहीं। इसलिए सबसे पहले आवश्यक है—कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग होता है, तो अनायास सारी बातें हो जाती हैं। साधना के लिए अगले चरण अपने आप आगे बढ़ जाते हैं।

हमारा यह शरीर जिस दिन हिमालय की भांति निष्प्रकम्प, अडोल और अचंचल बन जाएगा, तो फिर साधना के लिए और कुछ जानने की, और कुछ समझने की, और कुछ करने की जरूरत नहीं होगी। साधना की सारी घटनाएं अपने आप घटित होने लग जाएंगीं और साधना स्वयं साकार होकर हमारे सामने मूर्तिमती बन जाएगी।

कोई समस्या सामने आती है, आप सोचते हैं कि समस्या का समाधान कैसे मिले? एकांत में जाकर बैठते हैं, शांत होकर बैठते हैं, समस्या का समाधान मिल जाता है। जीवन की यात्रा चलाने वाला, व्यवहार की भूमिका पर जीने वाला हर व्यक्ति समय-समय पर कायोत्सर्ग करता है। अध्यात्म की यात्रा करने वाले व्यक्ति के लिए तो इसके सिवाय और कोई विकल्प ही नहीं है। जो कायोत्सर्ग की सम्यग् आराधना नहीं करता, कायोत्सर्ग को ठीक नहीं साधता, वह अध्यात्म के क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं कर सकता।

निष्पत्तियां

अब हम शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि दृष्टियों से होने वाली निष्पत्तियों की चर्चा करेंगे, जिसमें तनाव-मुक्ति, चित्त की एकाग्रता, ज्ञाता-द्रष्टा-भाव का विकास, चैतन्य का साक्षात्कार, प्रज्ञा का जागरण आदि उल्लेखनीय हैं।

चार अवस्थाएं

कायोत्सर्ग की प्रथम अवस्था में स्थिरता प्राप्त होती है। शारीरिक स्तर पर तनाव-मुक्ति का अनुभव होने लगता है तथा कुछ मनःकायिक रोगों में प्रत्यक्ष सुधार का अनुभव भी होने लगता है।

कायोत्सर्ग की दूसरी अवस्था में कुछ विशिष्ट परिवर्तन घटित होते हैं—

Scanned by CamScanner

- स्नायु-तंत्र प्रभावित होता है
- मस्तिष्क की तरंगों और मस्तिष्कीय विद्युत में परिवर्तन आ जाता है।
- ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है।
- अनैच्छिक मांसपेशियों पर नियन्त्रण स्थापित होने लगता है और स्वायत्त स्नायुतंत्र का उत्तेजना-स्तर गिर जाता है। उनमें स्थिरता आती है।
- शारीरिक कार्य-क्षमता बढ़ जाती है।
- श्लेष्म आदि रोगों के क्षीण होने से देह की जड़ता नष्ट होती है।
- जागरूकता के कारण बुद्धि की जड़ता नष्ट होती है।
- सर्दी-गर्मी आदि द्वंद्वों को सहने की क्षमता बढ़ती है।
- चित्त की एकाग्रता सुलभ हो जाती है।

इसकी तीसरी अवस्था में स्थूल शरीर का बोध क्षीण हो जाता है। सूक्ष्म शरीर की सक्रियता बढ़ जाती है और वह कभी-कभी स्थूल शरीर को छोड़कर बाहर चला जाता है। इस स्थिति में सूक्ष्म पदार्थ दृष्टिगत होने लग जाते हैं।

इसकी चतुर्थ अवस्था में आत्मा के चैतन्यमय स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है।

तनाव-मुक्ति

कायोत्सर्ग की पहली और प्रत्यक्ष निष्पत्ति है—तनाव-मुक्ति। जो भी साधक यह साधना करेगा, उसके तनाव धीरे-धीरे विसर्जित हो जाएंगे। कोई कायोत्सर्ग करे और तनाव न मिटे, यह कभी नहीं हो सकता। कायोत्सर्ग तनाव-मुक्ति का अचूक उपाय है। जिन्होंने कायोत्सर्ग का अभ्यास किया है, शरीर के शिथिलीकरण का प्रयत्न किया है, ममत्व के विसर्जन का अभ्यास किया है, उन्होंने यह अनुभव किया है कि शरीर सर्वथा तनाव-मुक्त हो गया है, हल्का हो गया है। कायोत्सर्ग करने वाला मन के बोझ से ऊपर उठ जाता है। यह कायोत्सर्ग का प्रत्यक्ष लाभ है।

चंचलता की निवृत्ति

शिथिलीकरण का अर्थ है—चंचलता की निवृत्ति—शरीर पूरा स्थिर हो

Scanned by CamScanner

जाए, कोई भी अंग न हिले। शरीर की सारी प्रवृत्ति का विसर्जन करना ही शिथिलीकरण है।

कायोत्सर्ग में पहले हम इच्छाचालित नाड़ी-संस्थान को स्थिर करते हैं। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता है, स्थिरता फलित होती जाती है। जब इच्छाचालित नाड़ी-संस्थान पर नियन्त्रण स्थापित हो जाता है, तब स्वतःचालित नाड़ी-संस्थान भी अपने आप स्थिर होने लग जाता है, हृदय की धड़कन भी कम होने लग जाती है, श्वास मन्द हो जाता है, उसकी संख्या घट जाती है, प्राणवायु या ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है, सारी अपेक्षाएं कम हो जाती हैं और अकल्पित शांति का वातावरण भीतर में निर्मित हो जाता है।

शरीर पर प्रभाव

शरीर पर कायोत्सर्ग के प्रभाव की चर्चा करें, तो कहा जा सकता है कि कायोत्सर्ग के द्वारा लगभग सभी नाड़ी-तंत्रीय कोशिकाएं प्राण-शक्ति से अनुप्राणित हो जाती हैं। एक प्रकार से उन्हें ऐसा अवकाश का समय प्राप्त होता है, जिसके दौरान वे निरन्तर उन पर पड़ने वाले बोझ से मुक्त रहती हैं—रात-दिन मस्तिष्क तक संवेदन को पहुंचाने तथा प्रवृत्ति-बहुल गतिविधियों को चलाने के थका देने वाले कार्य से विश्रान्ति का अनुभव कर सकती हैं। इसलिए यह आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि दीर्घकालीन अशांत निद्रा की अपेक्षा स्वल्पकालीन कायोत्सर्ग व्यक्ति को अधिक स्फूर्ति और शक्ति प्रदान करता है।

ऊपर जो बताया गया, उससे तो स्पष्ट हो चुका होगा कि कायोत्सर्ग का प्रयोग करते समय नींद लेना प्रयोग के लक्ष्य के विपरीत होगा। पर नींद में जाने से पूर्व कायोत्सर्ग का प्रयोग करने का परिणाम होगा—स्वस्थ शांतिपूर्ण नींद।

शारीरिक लाभ

जिन व्यक्तियों को उच्च रक्तचाप आदि के कारण हृदय-रोग होने की संभावना रहती है, वे कायोत्सर्ग के नियमित अभ्यास से अपनी प्रतिकार-शक्ति को बढ़ाकर इस खतरे से बच सकते हैं। एक इलेक्ट्रोनिक सामग्री-निर्माण करने वाले कारखाने के १०० श्रमिकों पर एक प्रयोग किया गया।[1] इन

1. लन्दन में १६८३ में ब्रिटिश हालिस्टिक मेडिकल एसोशिएसन के उद्‌घाटन समारोह के अवसर पर बताए गए सत्य वृत्तान्त के आधार पर।

Scanned by CamScanner

श्रमिकों को उच्च रक्तचाप, रक्त में कोलेस्टेरोल की अति मात्रा तथा धूम्रपान आदि व्यसन के कारण हृदय रोग का खतरा हो गया था। उन्हें आठ सप्ताह तक प्रति सप्ताह एक घंटे तक शिथिलीकरण का अभ्यास करवाया गया। उनके रक्तचाप में उल्लेखनीय कमी पायी गई। इस कारखाने के ऐसे अन्य श्रमिकों का दल, जिसे उपर्युक्त अभ्यास से वंचित रखा गया था (जिसे 'कण्ट्रोल ग्रुप' कहा जाता है), सदस्यों की तुलना में प्रयोग के अन्तर्गत अभ्यास करने वाले दल के सदस्यों में तीन वर्ष पश्चात् भी रक्तचाप नीचा रहा तथा उनमें हृदय-रोग की घटनाएं भी कम हुईं।

सूक्ष्म शरीर की घटनाओं का ज्ञान

अध्यात्म की साधना करने वाले व्यक्ति को अध्यात्म के नियमों से परिचित होना जरूरी है। कायोत्सर्ग होता है, श्वास-दर्शन होता है। कायोत्सर्ग होता है, शरीर-प्रेक्षा अपने आप हो जाती है। शरीर में होने वाले कंपन अपने आप प्रकट होने लगते हैं। कायोत्सर्ग होता है, विचार-दर्शन होता है। शरीर के हर अवयव की स्थिरता जब सधती है, प्रत्येक कोशिका की स्थिरता का अभ्यास होता है, तो फिर किस कोशिका में कहां, क्या हो रहा है, इस घटना का पता लगने लग जाता है। नाड़ी-संस्थान में, ग्रंथि-संस्थान में जो कुछ हो रहा है, विद्युत-प्रवाह की जो गति हो रही है, रसायन किस प्रकार अपने दिविध परिणमन कर रहे हैं और किस प्रकार के रसायन बन रहे हैं, उन सब घटनाओं का कायोत्सर्ग में पता लग जाता है। कायोत्सर्ग जैसे-जैसे विकसित होता है, जैसे-जैसे शरीर की स्थिरता सधती जाती है, वैसे-वैसे जागरूकता बढ़ती जाती है। चेतना निर्मल हो जाती है और इस स्थूल शरीर का अतिक्रमण कर सूक्ष्म शरीर की घटनाओं का भी पता लगने लग जाता है।

ज्ञाता-द्रष्टा भाव का जागरण

जब कायोत्सर्ग घटित होगा तब शरीर की सारी चंचलता समाप्त हो जाएगी, इतना ही नहीं अपितु साधक 'सुसमाहितात्मा' बन जाएगा। आत्मा का वह स्वरूप प्रकट होगा जो पहले कभी नहीं हुआ था। इस स्वरूप को आज तक या तो इन्कार करते रहे थे, या केवल मानते रहे थे। किंतु अब जानने लग जाएंगे। जानने की बात तब आती है जब कायोत्सर्ग की स्थिति प्राप्त होती है। कायोत्सर्ग आत्मा तक पहुंचने का द्वार है। इनकी

Scanned by CamScanner

निष्पत्ति है—अध्यात्म की उपलब्धि, अपने अस्तित्व की उपलब्धि, अपने स्वरूप की उपलब्धि, ज्ञाता-द्रष्टा-भाव की उपलब्धि।

आभामंडल का दर्शन

कायोत्सर्ग की प्रगाढ़ अवस्था में आभामंडल का दर्शन भी होने लगता है। जब कायोत्सर्ग सघन होता है तब परमाणुओं का भीतर आना बन्द हो जाता है। उस स्थिति में स्थूल शरीर को पार करने के पश्चात् अतिसूक्ष्म शरीर के स्पन्दन दिखाई देने लग जाते हैं। उसका साक्षात्कार होते ही हमारी सारी दृष्टि बदल जाती है।

विवेक-चेतना का जागरण

जब कायोत्सर्ग सधता है तो विवेक-चेतना जाग जाती है, चेतना और शरीर की भिन्नता स्पष्ट हो जाती है, साक्षात्कार हो जाता है—यह रहा शरीर और यह रहा चैतन्य; यह रहा शरीर और यह रही आत्मा। बिलौना किया। एक बिन्दु आता है–यह रही छाछ और वह रहा मक्खन। तिल घानी में पैला जाता है, एक बिन्दु आता है–यह रही खली और यह रहा तेल। सोना तपाया जाता है। एक बिंदु आता है–यह रही मिट्टी और यह रहा शुद्ध सोना। विवेक हो जाता है, पृथक्करण हो जाता है।

यह शरीर है और यह आत्मा। यह अचेतन है और यह चेतन। यह अशाश्वत है और यह शाश्वत। आत्मा और पुद्गल का स्पष्ट भेद उसे साक्षात् हो जाता है। यह विवेक-चेतना बहुत बड़ी उपलब्धि है। वास्तव में शरीर का मूल्यांकन वही व्यक्ति कर सकता है, जिसने कायोत्सर्ग का अभ्यास किया है। वास्तव में शरीर का सार वही निकाल सकता है, जिसने कायोत्सर्ग को साधा है।

कायोत्सर्ग की अनुभूति के पीछे शरीर-विज्ञान की दृष्टि से कौन-सी क्रिया कार्य करती है ? जैसे हम पहले बता चुके हैं, जिस समय मांसपेशियों को शिथिल किया जा रहा था, उस समय उनसे सम्बद्ध क्रियावाही नाड़ियों में धीरे-धीरे विद्युत् का प्रवाह मन्द होता जा रहा था तथा इस प्रकार उन्हें विश्राम का अवसर दिया जा रहा था। अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण क्रियावाही प्रणाली को निष्क्रिय बनाकर उसे विश्राम की अवस्था में स्थापित किया गया और फिर उसी का अनुकरण उसकी ही पूरक प्रणाली–संवेदी (ज्ञानवाही) प्रणाली द्वारा किया गया है जो मस्तिष्क (या केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान) तक संवेदनों को पहुंचाने का कार्य करती है। इस

Scanned by CamScanner

प्रकार, सारी प्रक्रिया के दौरान जहां एक ओर चेतन मन पूर्णतः जागृत और सजग था, वहां दूसरी ओर शरीर—हमारा भौतिक हिस्सा—धीरे-धीरे चेतनारहित-सा होता जा रहा था। इससे अभौतिक चैतन्य को उसके प्रतिपक्षी भौतिक हिस्से से मुक्त अनुभव करने का अवसर मिला। इस प्रकार के कायोत्सर्ग में स्वयं के शरीर से बाहर अपने आप को तैयार हुए अनुभव किया जा सकता है, जो निश्चित रूप से न तो स्वतः-सूचन का रूप है और न ही सम्मोहन है, अपितु एक वास्तविक तथ्य की सही-सही अनुभूति है।

व्युत्सर्ग चेतना

विवेक-चेतना पुष्ट होती है, तब व्युत्सर्ग (त्याग) की क्षमता बढ़ती है, त्याग और विसर्जन की शक्ति का विकास होता है। फिर छोड़ने में संकोच नहीं होता, चाहे शरीर को छोड़ना पड़े, इन्द्रिय-विषयों को छोड़ना पड़े, परिवार या धन को छोड़ना पड़े। उसमें छोड़ने की इतनी क्षमता बढ़ जाती है कि वह जब चाहे, तब किसी को भी छोड़ सकता है, कोई मोह नहीं रहता।

व्युत्सर्ग की चेतना जागने पर साधक को स्पष्ट अनुभव हो जाता है कि मैं चैतन्यमय हूं, यही मेरा अस्तित्व है। चैतन्य के अतिरिक्त जितना भी जुड़ाव हुआ है, वह विजातीय है, मेरा नहीं।

प्रज्ञा का जागरण : समता का विकास

कायोत्सर्ग की एक और महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है—प्रज्ञा का जागरण। जब कायोत्सर्ग के द्वारा प्रज्ञा जागती है, तब जीवन में समता स्वतः अवतरित होती है। लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, निन्दा-प्रशंसा, जीवन-मरण—इन द्वन्द्वों में सम रहने की क्षमता उसी व्यक्ति में विकसित होती है, जो कायोत्सर्ग को साध लेता है। फिर उसके लिए प्रिय और अप्रिय में कोई भेद नहीं होता। दोनों आयाम समाप्त हो जाते हैं। तीसरा आयाम उद्घाटित होता है। वह आयाम है—समता का।

बुद्धि और प्रज्ञा में इतना ही अंतर होता है कि बुद्धि चुनाव करती है—यह प्रिय है, यह अप्रिय है। प्रज्ञा में चुनाव समाप्त हो जाता है। उसके सामने प्रियता और अप्रियता का प्रश्न ही नहीं उठता। उसके समक्ष समता ही प्रतिष्ठित होती है। कायोत्सर्ग के अभ्यास से बुद्धि का पलड़ा हल्का होता जाएगा और प्रज्ञा का पलड़ा भारी होता चला जाएगा। जीवन में

Scanned by CamScanner

जिस दिन प्रज्ञा की पहली किरण फूटेगी, उस दिन अपने आप समता का दर्शन होगा।

अभ्यास

१. कायोत्सर्ग का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए और आधुनिक युग में 'तनाव-मुक्ति' के लिए प्रयुक्त किये जा रहे विभिन्न उपायों के उल्लेख-सहित कायोत्सर्ग की विशिष्ट उपयोगिता समझाइये।

२. 'तनाव' और 'तनाव-मुक्ति' का तात्पर्य प्रकट करते हुए स्पष्ट कीजिए कि तनाव के कारण आंतरिक तंत्रों की बार-बार की सक्रियता से शरीर-स्वास्थ्य को कैसे हानि पहुंचती है।

३. कायोत्सर्ग की वैज्ञानिक दृष्टि से महत्ता स्पष्ट कीजिए।

४. कायोत्सर्ग की आध्यात्मिक दृष्टि से उपयोगिता प्रकट कीजिए।

५. कायोत्सर्ग का मनःकायिक प्रयोजन और आध्यात्मिक प्रयोजन स्पष्ट कीजिए।

६. कायोत्सर्ग-साधना की विभिन्न निष्पत्तियों की विवेचना कीजिए।

Scanned by CamScanner

श्वास-प्रेक्षा

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

भोजन पानी की तुलना में श्वास भोजन के लिए अधिक मूल्यवान ऊर्जा-स्रोत है। वस्तुतः तो श्वास ही जीवन है। हमारी जीवन की प्रत्येक क्रिया श्वसन के साथ गाढ़ रूप से जुड़ी हुई है।

श्वसन क्रिया का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है—शरीर की कोशिकाओं से निःसृत कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को शरीर से बाहर निकाल देना। कोशिकाओं में ऊर्जा के लिए ऑक्सीजन की निरन्तर आवश्यकता होती है तथा ऊर्जा-उत्पादन की क्रिया के साथ-साथ कार्बन-आइ-ऑक्साइड पैदा हो जाता है, जिसको यदि शरीर के भीतर एकत्रित होने दिया जाए, तो उससे कोशिकाएं विषाक्त हो जाएंगी।

सम्यक् श्वास के सर्वोपरि महत्त्व को किसी भी प्रकार अपेक्षित नहीं किया जा सकता। पर दुर्भाग्य से बहुत थोड़े ही लोग सही और पूरा श्वास लेते हैं। दुर्बल स्वास्थ्य के अनेक लक्षण रक्त की अपर्याप्त ऑक्सीजन-आपूर्ति तथा मन्द परिसंचार के परिणाम हैं। हम न केवल गलत ढंग से श्वास लेते हैं, अपितु बहुत बार श्वास लिया जाता है, वह भी अशुद्ध एवं दूषित होता है। परिणाम-स्वरूप हमारी स्नायविक दुर्बलता और उत्तेजना बढ़ती है और रोगों का प्रतिकार करने की हमारी शक्ति में भारी कमी हो जाती है।

श्वसन-प्रक्रिया

फुफ्फुस अपने आप में मांसपेशी-रहित होते हैं। अतः श्वसन-प्रक्रिया की आवश्यक यांत्रिक क्रिया में उनका सीधा योगदान नहीं मिलता। यह यांत्रिक बल तीन प्रकार से उपलब्ध हो सकता है—

(१) तनुपट (डायाफ्राम) को ऊपर नीचे खिसका कर

(२) अन्तर्पर्शुकीय मांसपेशियों के संकुचन-विस्तरण के द्वारा

(३) हंसली के हिस्से को ऊपर-नीचे खिसका कर।

Scanned by CamScanner

कोशिकाओं तक ऑक्सीजन को पहुंचाने का दायित्व हृदय का होता है, जो पम्पिंग के द्वारा ऑक्सीजन युक्त हेमोग्लोबीन वाले रक्त को शरीर के समस्त भागों तक पहुंचा देता है। आंतरिक श्वसन-क्रिया शरीर के विभिन्न भागों में क्रियाशील ऊतकों के भीतर घटित होती है। इस क्रिया के दौरान हेमोग्लोबिन से मुक्त होकर ऑक्सीजन-स्कंध ऊतकों को उपलब्ध किए जाते हैं तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड–स्कंध रक्त में मिलाकर वापस फुफ्फुस की ओर भेज दिए जाते हैं.।

जहां शरीर की अधिकांश महत्त्वपूर्ण प्रणालियों का नियमन स्वतः (अनैच्छिक) नियंत्रण से किया जाता है, वहां श्वसन-क्रिया का नियमन ऐच्छिक और अनैच्छिक दोनों प्रकारों से होता है। सामान्य रूप से चलने वाली लयबद्ध श्वसन-प्रक्रिया को श्वसन-मांसपेशियों एवं फुफ्फुस-तंत्रिकाओं के माध्यम से श्वास-केन्द्र को फीडबैक-पद्धति द्वारा सूचना भेजकर चालू रखा जाता है। इसके अतिरिक्त ऐच्छिक क्रिया के द्वारा भी इसे (श्वसन-केन्द्र को) प्रभावित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति अपने श्वास को कुछ देर के लिए ऐच्छिक रूप से रोक भी सकता है।

श्वसन-क्रिया में श्वास नाक से आता है और मुंह बंद रखा जाता है। ऐसा करने से हवा में रहे कीटाणु, धूलि-कण तथा अन्य प्रदूषण नासिकाओं के भीतर रही हुई श्लेष्मा-झिल्ली की स्निग्धता के कारण तथा नाक में स्थित बालों के कारण वहां रोक दिए जाते हैं।

श्वास में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्वास को भीतर लेते समय पेट को भीतर डालने की बजाय बाहर फुलाना चाहिए। सामान्य रूप से लोग श्वास लेते समय पेट को सिकोड़ते हैं, जो ठीक नहीं है। उसी प्रकार श्वास छोड़ते समय पेट को सिकोड़ना चाहिए।

सामान्य रूप से व्यक्ति एक श्वास के दौरान १/२ से १ लीटर हवा लेता है किंतु सही अभ्यास के द्वारा इस मात्रा को चार-पांच लीटर तक बढ़ाया जा सकता है। हममें से अधिकांश व्यक्ति छोटे-छोटे टुकड़ों में छिछला श्वास लेते हैं, जिसकी संख्या १५ से १६ प्रति मिनट होती हैं। प्रशिक्षण के द्वारा हम मंद एवं लम्बा गहरा श्वास लेने का अभ्यास बढ़ा सकते हैं। श्वास की गति को मंद करने से एक मिनट में चार या पांच श्वास तक आसानी से पहुंचा जा सकता है। मंद श्वास के द्वारा हमें अनेक लाभ होते हैं, जैसे–

Scanned by CamScanner

(१) सारे शरीर में होने वाली टूट-फूट की गति में मंदता,
(२) हृदय के कार्य-भार में कमी,
(३) रक्त-चाप में अनावश्यक वृद्धि को रोकना,
(४) स्नायविक शांति में वृद्धि।

वैज्ञानिकपूर्ण श्वास

वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण श्वसन का प्रारंभ मंद, शांत एवं पूरे उच्छ्वसन के साथ होता है। अन्तःश्वसन समाप्त होने पर जब उसके लिए प्रयुक्त मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं, तब विकसित छाती का हिस्सा अपने भार से ही सिकुड़ जाता है और भीतर की हवा बाहर निकलनी शुरू हो जाती है। उसके बाद पेट की मांसपेशियों को संकुचित करने से तनुपट ऊपर की ओर खिसकता है, जिससे फुफ्फुस में से और अधिक हवा निष्कासन करने में सहायता होती है। फुफ्फुसीय ऊतकों की स्पंजी रचना के कारण प्रयुक्त हवा का अंश भीतर रह जाता है। यह अवशिष्ट हवा अन्तःश्वसन के द्वारा ताजी प्रविष्ट हवा के साथ मिलकर आगे की प्रक्रिया के लिए प्राप्य हवा के रूप में काम आती है। फुफ्फुसों को जितना अधिक खाली किया जाएगा, उतना ही उनमें ताजी हवा का प्रवेश अधिक मात्रा में हो सकेगा और श्वास-प्रकोष्ठों में उपयोगार्थ हवा उतनी ही अधिक विशुद्ध या अमिश्रित रह सकेगी। अतः जब तक पूरी तरह उच्छ्वसन नहीं करते, तब तक अन्तश्र्वसन पूरा और सम्यग् नहीं हो सकता।

फुफ्फुसों को खाली करने के बाद दूसरा कदम उन्हें अधिक से अधिक भरने का है। फुफ्फुसों में समाने वाली हवा की मात्रा को फुफ्फुसीय क्षमता अथवा प्राण-क्षमता कहते हैं। औसतन रूप में यह लगभग ६ लीटर है। इस क्षमता को बढ़ाने की बात करने से पहले प्राप्य क्षमता का पूरा उपयोग कैसे हो सकता है, यह चिंतन आवश्यक है।

फुफ्फुस के इर्द-गिर्द श्वसन-क्रिया में उपयोगी तीन प्रकार की मांसपेशियों का उल्लेख किया जा चुका है। ये तीन प्रकार की मांसपेशियां हैं–

१. अन्तरापर्शुक मांसपेशियां–ये पसलियों के ऊपर के और नीचे के छोर से संलग्न होती हैं। इन मांसपेशियों के संकुचित होने पर पसलियों का समूचा ढांचा ऊपर की ओर तथा बाहर की ओर फैलता है और इनके शिथिल होने पर वह उससे विपरीत दिशा में गति करता है अर्थात् संकुचित होता है।

Scanned by CamScanner

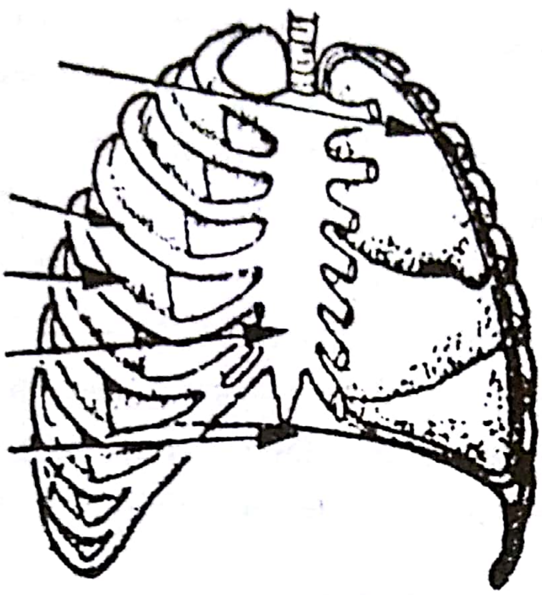

श्वसन क्रिया में प्रयुक्त मांसपेशियां

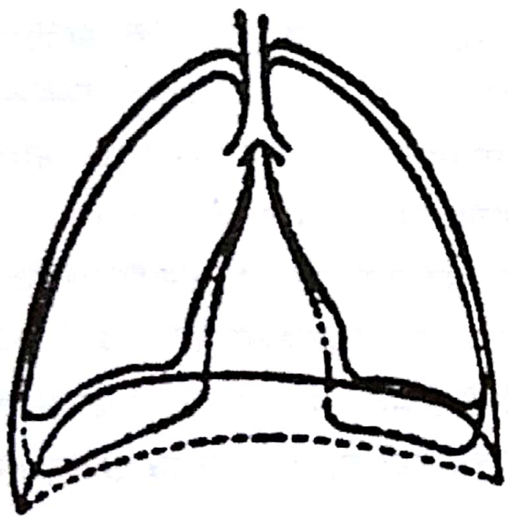

जब तनुपट नीचे की ओर सिकुड़ता है तब वक्ष की गहराई बढ़ती है।

अन्तर्पर्शुकीय मांसपेशियां पसली को ऊपर उठाती हैं तथा वक्ष के आगे–पीछे का व्यास बढ़ाती हैं। इस प्रकार पसली–पिञ्जर की चौड़ाई बढ़ जाती है।

२. तनुपट (डायाफ्राम)—श्वसन-क्रिया में उपयोगी-मांसपेशियों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका आकार गुम्बज जैसा होता है। यह मांसपेशी वक्षीय गुहा के फर्श या तल के रूप में तथा उदरीय गुहा की छत के रूप

Scanned by CamScanner

में होती है। जब इसे संकुचित किया जाता है, यह उदरीय अंगों को नीचे की ओर दबाती है तथा वक्षीय गुहा के परिमाण को बढ़ाती है।

३. **हंसली की मांसपेशियां**—हंसली को ऊपर की ओर उठा कर इन मांसपेशियों का संचालन किया जा सकता है। इस क्रिया के द्वारा फुफ्फुस के ऊपर के हिस्से में हवा का प्रवेश होता है।

पूरे लम्बे-गहरे अन्तर्श्वसन के लिए उक्त तीनों प्रकार की मांसपेशी-समूहों का संयुक्त उपयोग किया जाता है। यह क्रिया एक ही बार में एवं लयबद्ध रूप से की जानी चाहिए। हवा का भीतर प्रवेश निरन्तर होना चाहिए, बीच-बीच में हांफना (श्वास तोड़ना) नहीं चाहिए।

पूरे श्वसन के लाभ

कोशिकाओं के सुचारु रूप से संचालन तथा क्षमता-वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन उपलब्ध हो। इसलिए सही रूप में श्वास लेना बहुत जरूरी और महत्त्वपूर्ण है; जिससे कि शरीर की प्रत्येक कोशिका को पर्याप्त ऑक्सीजन मिल सके। फुफ्फुसों में वायुओं का आदान-प्रदान भली-भांति तभी हो सकता है, जब कि श्वसन-क्रिया गहरी, पूरी और मंद हो। शरीर-वैज्ञानिकों के अनुसार यह आवश्यक है कि संगृहीत हवा श्वासकोषों में १०-१२ सेकिण्ड तक रहे जिससे कि ऑक्सीजन और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का अधिकतम विनिमय हो सके।

इस प्राथमिक आवश्यकता के अतिरिक्त यह भी जरूरी है कि सम्यक् श्वसन के द्वारा हवा के आवागमन से संपूर्ण फुफ्फुसों की सफाई पूरी तरह हो। अन्धकार, उष्मा एवं आर्द्रता-युक्त फेफड़ों की सफाई ठीक न होने पर वे सूक्ष्म किन्तु खतरनाक कीटाणुओं के प्रजनन के उपयुक्त स्थान बन जाते हैं।

यदि श्वसन-क्रिया पूर्णतः वैज्ञानिक रूप से की जाए, जो उसके परिणामस्वरूप फुफ्फुसों में अत्यधिक शक्तिशाली चूषण-क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। गहरे और मंद श्वास के द्वारा फुफ्फुसों में यकृत जैसे अवयवों में एकत्रित रक्त को खींचने के लिए एक प्रकार की चूषण-शक्ति पैदा होती है। तनुपट और पसली-पिञ्जर के सम्यक् लयबद्ध स्पंदन पूरे शरीर में होने वाले शिरीय रक्त-संचार को बेहतर और सक्रिय बनाने में योगदान देते हैं। इस प्रकार हृदय और फेफड़ों—इन दोनों संचालन-बलों का सम्यक् संयोजन रक्त के परिसंचरण को श्रेष्ठ बना सकता है। ऐच्छिक और सुनियोजित दीर्घश्वास के द्वारा प्राणधारा को प्रभावित किया जा

Scanned by CamScanner

सकता है, जिससे शरीर के किसी भी प्रकार के अवयव-सम्बन्धी या क्रिया-सम्बन्धी विकार या गड़बड़ी को पूर्णतः ठीक नहीं तो कम-से-कम अंशतः प्रभावित तो किया ही जा सकता है। यद्यपि यह प्राणधारा तीव्र आगन्तुक औपसर्गिक विकारों को पूर्णतः ठीक करने में समर्थ न भी हो, तो भी शरीर की प्रतिकार-शक्ति को बलवती बनाने में एवं शरीर को विकारों से मुक्त रखने में निश्चित ही महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान करती है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण

श्वास और जीवन दोनों एकार्थक जैसे हैं। जब तक जीवन तब तक श्वास; जब तक श्वास, तब तक जीवन। श्वास का शरीर और मन के साथ गहरा सम्बन्ध है। यह एक ऐसा सेतु है, जिसके द्वारा नाड़ी-संस्थान, मन और प्राणशक्ति तक पहुंचा जा सकता है। श्वास, शरीर और मन—ये सब प्राण-शक्ति द्वारा संचालित होते हैं। प्राण-शक्ति सूक्ष्म शरीर (तैजस शरीर) द्वारा और सूक्ष्म शरीर अति सूक्ष्म शरीर (कार्मण शरीर) द्वारा संचालित होता है। अति सूक्ष्म शरीर आत्मा द्वारा संचालित होता है। इसलिए श्वास, शरीर, प्राण और कर्म के स्पन्दनों को देखना आत्मा को देखना है—उस चैतन्य-शक्ति को देखना है, जिसके द्वारा प्राण-शक्ति स्पन्दित होती है।

प्राण का आहरण

श्वास का सम्बन्ध है प्राण से, प्राण का सम्बन्ध पर्याप्ति से अर्थात् सूक्ष्म प्राण से। यह जीवन के पहले ही क्षण में निर्मित हो जाता है। प्राण को भी प्राण चाहिए। वह प्राण आकाश-मण्डल से प्राप्त होता है। सारे आकाश-मण्डल में प्राण-चक्र फैला हुआ है। आहार-पर्याप्ति के योग्य वर्गणाएं सारे आकाश में फैली हुई हैं। ऊर्जा की या प्राण-शक्ति की वर्गणाएं फैली हुई हैं। वे प्राप्त होती हैं—श्वास के माध्यम से। हम केवल श्वास ही नहीं लेते, उसके साथ प्राण भी लेते हैं। शरीर-शास्त्र के अनुसार भी जब हम श्वास लेते हैं, बाहर की हवा भीतर जाती है, जिसमें ऑक्सीजन होता है। कर्म-शास्त्र की भाषा में हम प्राण लेते हैं। श्वास के साथ जाने वाला प्राण उस प्राण को संवर्द्धित करता है, पोषण देता है।

जैन आगम भगवती और प्रज्ञापना में यह प्रश्न उपस्थित किया गया है कि जीव कब आहार लेता है और कितनी दिशाओं से आहार लेता है।

Scanned by CamScanner

प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि जीव पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा–छहों दिशाओं से आहार लेता है। वहां केवल-आहार (मुंह से ग्रहण किया जाने वाला भोजन आदि) का प्रसंग ही नहीं है, रोम-आहार (रूओं से ग्रहण किए जाने वाले सूक्ष्म पोषक तत्त्व) भी अल्प मात्रा में होता है। वहां आहार का अर्थ है–प्राण-तत्त्व का आहार। जीव जीवित रहने के लिए निरन्तर बाहर से आहरण करता है, वह निरन्तर प्राण-ऊर्जा लेता है। यह आहरण कभी नहीं रुकता।

ऊर्जा या प्राण के आहरण का सशक्त माध्यम है श्वास। वह निरन्तर चलता है, तो आहरण भी निरन्तर चलता है। श्वास का सम्बन्ध है प्राण से, प्राण का सम्बन्ध है सूक्ष्म प्राण से और सूक्ष्म प्राण का संबंध है सूक्ष्म शरीर से–कार्मण शरीर से।

श्वास और प्राण

श्वास भीतर जाता है, उसके साथ प्राणवायु भीतर जाता है। प्राण-तत्त्व भी भीतर जाता है और प्राण-तत्त्व का ऊर्जा के रूप में परिणमन होता है। हमारे जीवन का समूचा क्रम–हमारी सारी प्रवृत्तियां प्राण-शक्ति या प्राण-ऊर्जा के द्वारा संचालित होती हैं। यदि प्राण की ऊर्जा नहीं है, तो चेतना टिक नहीं सकेगी। बोलना-चालना, देखना, इन्द्रियों, मन और बुद्धि का क्रियाशील होना–ये सब प्राण-ऊर्जा के कार्य हैं। इनकी सक्रियता की पृष्ठभूमि में प्राण का प्रवाह कार्य करता है। शरीर, मन और इन्द्रियां अचेतन है; प्राण-ऊर्जा का योग पाकर वे सभी सचेतन हो जाते हैं।

हम जितना गहरा श्वास लेते हैं, उतनी ही अधिक प्राण-शक्ति प्राप्त होती है। जब हम श्वास-प्रेक्षा द्वारा श्वास-दर्शन करते हैं, तब प्राण-शक्ति और बढ़ जाती है। जो यौगिक प्रदर्शन आज देखने में आते हैं, वे सारे श्वास के स्तर पर घटित होने वाले प्राण-शक्ति के प्रदर्शन हैं। इसके आधार पर मोटर या ट्रक को छाती पर से निकाला जा सकता है। आत्मा में अनन्त शक्ति है, अनन्त वीर्य है। श्वास उस अनन्त शक्ति का एक अंश है। इसलिए श्वास के प्रयोग से चमत्कार किए जा सकते हैं।

प्राण, प्राणवायु और प्राणायाम

प्राण-शक्ति को ज्ञान-केन्द्र में ले जाना–यही हमारी प्राण की साधना का अर्थ होता है। लुहार धौंकनी धौंकता है। उससे हवा निकलती है, अग्नि प्रज्वलित होती है। एक तो धौंकनी से हवा निकलती है और एक

Scanned by CamScanner

अग्नि जलती है। हवा और आग एक नहीं है, किंतु जितनी तेज हवा होगी, उतनी ही तेज अग्नि भी हो जाएगी। इस प्रकार प्राणवायु प्राण को उत्तेजित करती है। हम जितनी मात्रा में प्राणवायु (ऑक्सीजन) लेंगे, उतना ही प्राण विशुद्ध होगा, सक्रिय होगा। यदि प्राणवायु नहीं मिलेगी, तो प्राण में उत्तेजना नहीं आएगी, सक्रियता नहीं आएगी। इसका शरीर-शास्त्रीय कारण यह है—हमारे शरीर में रक्त-संचार के दो मुख्य साधन हैं—हृदय और फेफड़ा, रक्त का शोधन फेफड़ों में होता है। अशुद्ध रक्त को शुद्ध कर कार्बन-डाई-ऑक्साइड को शरीर से बाहर कर दिया जाएगा और प्राणवायु वाला शुद्ध रक्त शरीर के अन्दर प्रवाहित होगा। अगर प्राणवायु नहीं मिली, तो रक्त विकृत रहेगा और वह सारे शरीर को विकृत कर देगा। प्राणवायु रक्त-शुद्धि का साधन है और शुद्ध रक्त सारे शरीर को गति देने वाला है। प्राण के साथ उसका गहरा संबंध है। प्राणवायु रक्त के माध्यम से प्राण को भी उत्तेजित करती है, सक्रिय करती है।

प्राणवायु का पर्याप्त सिंचन मिलने पर प्राण का पौधा लहलहा उठता है। पूरा सिंचन न मिलने पर वह पौधा कुम्हला जाता है, आदमी निष्प्राण और निष्क्रिय हो जाता है।

प्राणवायु को ठीक से लेने का साधन है—प्राणायाम। प्राणायाम प्राण का आयाम--विस्तार तथा अनुशासन है। सामान्यतः यह रेचक, पूरक और कुम्भक की क्रिया है, किन्तु वस्तुतः यह श्वसन-क्रियाओं का सम्यक् नियमन और नियोजन है अर्थात् श्वास-प्रश्वास को व्यवस्थित रूप में नियंत्रित करने से प्राणायाम फलित होता है। सामान्यतः श्वास का पूरक और रेचन-क्रिया में फेफड़ों का बहुत कम हिस्सा उपयोग में आता है। प्राणायाम द्वारा पूर्ण पूरक और रेचन कर हम फेफड़ों का पूर्ण उपयोग कर सकते हैं।

प्राणायाम वह संजीवनी शक्ति है, जिससे शारीरिक स्वास्थ्य बनता है, रक्त एवं स्नायुमण्डल का शोधन होता है। जब पर्याप्त मात्रा में प्राणवायु पहुंच नहीं पाएगी, तो रक्त का शोधन नहीं होगा और शोधन के अभाव में गंदगी जमती जाएगी। शुद्ध रक्त स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है।

तीनों बातें जुड़ी हुई हैं—प्राण, प्राणवायु और प्राणायाम। प्राणायाम के बिना प्राणवायु का सम्यक् ग्रहण नहीं होता और प्राणवायु के बिना प्राण का सम्यक् उद्दीपन नहीं होता। आखिर हम प्राणायाम पर आ जाते हैं। प्राणायाम एक इतना महत्त्वपूर्ण साधन है कि इसको सम्यक् जाने बिना

Scanned by CamScanner

प्राणवायु को नहीं जान सकते। योग के आचार्यों ने जो कुछ इस विषय में लिखा था, आज का विज्ञान उससे सहमत होता जा रहा है।

हम प्राण से चले, प्राणवायु पर आए और प्राणायाम तक पहुंचे। अब हमारी यात्रा उलटी शुरू होती है। हम प्राणायाम से चलते हैं। हमारा प्राणायाम का अभ्यास अच्छा होना चाहिए। प्राणवायु स्वयं सध जाएगी। प्राणवायु कितनी मात्रा में लेनी चाहिए, प्राणवायु कहां तक पहुंच रही है, इसका भी ज्ञान होना चाहिए। प्राणवायु को ठीक ले लेते हैं, तो प्राण को सक्रिय करने की क्षमता जागृत हो जाती है। प्राणशक्ति के आधार पर योगी जन विचित्र प्रकार के काम कर दिखाते हैं। तैजस शरीर के अनुग्रह और विग्रह करने की शक्ति होती है। तेजोलब्धि-सम्पन्न व्यक्ति जला सकता है, नष्ट कर सकता है, मार सकता है, वह अनुग्रह भी कर सकता है, दे भी सकता है उनमें देने की भी क्षमता होती है। ये सारी प्राणशक्ति की क्रियाएं हैं। प्राण का सम्बन्ध है—तैजस से। यह होता है, तब प्राणायाम से ली गयी प्राणवायु की अग्नि के द्वारा प्राण को इतना उद्दीप्त कर दिया जाता है, प्राण इतना ज्वलित हो जाता है कि उसमें अद्भुत क्षमताएं प्रकट हो जाती हैं। इस दृष्टि से प्राणायाम का बहुत बड़ा महत्त्व है।

प्राण के सारे केन्द्र मस्तिष्क में हैं, किंतु प्राण की धारा के दो मार्ग हो सकते हैं। उसका एक बाहरी रास्ता है और एक भीतरी रास्ता है। बाहरी रास्ते से प्राणशक्ति जाती है, तो वह हमारी शरीर-तंत्रों को सक्रिय बनाती है। जो नॉर्मल शक्ति है, वह उसी से उत्पन्न होती है, वह अतिरिक्तता नहीं लाती। यह हमारे दस प्राणकेन्द्रों को सक्रिय करती है और जीवन-यात्रा को सही ढंग से चलाती है। जब हम प्राण-शक्ति के प्रवाहित होने वाले इस मार्ग को बदल देते हैं, तो वहां भिन्न प्रकार की शक्ति पैदा होती है।

ध्यान का आलम्बन

हम अपनी सुप्त चेतना को जागृत करना चाहते हैं—अपनी-शांति के स्रोतों को उद्घाटित करना चाहते हैं। सूक्ष्म से परिचित होना चाहते हैं। यदि हमें सूक्ष्म से परिचित होना है, तो सबसे पहले हम स्थूल को सम्यक् प्रकार से जानें। बाहर का दरवाजा खोले बिना भीतर के दरवाजे तक नहीं पहुंचा जा सकता। हमें स्थूल की ओर गति करनी होगी। ध्यान से श्वास का आलंबन लेते हैं। इससे स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति प्रारंभ हो जाती है। श्वास ही एक ऐसा तत्त्व है, जो बाहर भी आता है और भीतर भी जाता

Scanned by CamScanner

है। दूसरा ऐसा कोई भी साधन नहीं है, जो बाहर भी रहे और भीतर भी रहे। मन है, पर मन बेढंगा है। वह स्वयं इतना चंचल है कि उसे आलंबन नहीं बनाया जा सकता। उसको तो आलंबन देना पड़ेगा।

योग के आचार्यों ने मन को वश में करने का एक उपाय बताया है। वह उपाय है–श्वास। श्वास को पकड़ते ही मन पकड़ में आ जाता है। तब मन इतना सरल, सीधा हो जाता है कि उसकी चंचलता मिट जाती है।

इसलिए हमने ध्यान की प्रक्रिया में श्वास को आलंबन बनाया है। यह श्वास वह यात्री है, जो बाहर की यात्रा भी करता है और भीतर की यात्रा भी करता है। यह वह दोष है, जो भीतर को भी प्रकाशित करता है और बाहर को भी प्रकाशित करता है। यदि हम भीतर की यात्रा करना चाहें, तो हमारे पास एकमात्र उपाय है कि हम मन को श्वास के रथ पर चढ़ा दें और उसके साथ-साथ भीतर चले जाएं। हमारी अन्तर्यात्रा प्रारम्भ हो जाएगी, हम अन्तर्मुखी हो जाएंगे, हम आध्यात्मिक बन जाएंगे। आध्यात्मिक बनने का सरल उपाय है–श्वास के साथ मन को जोड़ देना, दोनों का योग कर देना।

श्वास का आलम्बन क्यों ?

प्रश्न हो सकता है कि श्वास को ही आलम्बन क्यों बनाया जाए ? श्वास-क्रिया के विशिष्ट स्वरूप को हम वैज्ञानिक धारणाओं के आधार पर समझ सकते हैं। हमारे शरीर के भीतर चलने वाले तंत्रों और क्रियाओं का नियंत्रण दो प्रकार से होता है–

१. ऐच्छिक रूप से (Voluntarily)

२. स्वतः संचालित रूप से (Autonomically)

हाथ-पैर आदि का संचालन, मांसपेशियां का आकुंचन-विकुंचन आदि क्रियाएं स्वतः संचालित न होकर ऐच्छिक रूप से नियंत्रित की जाती हैं। दूसरी ओर पाचन (Digestion), रक्त-संचार (Blood-Circulation) हृदय की धड़कन (Heart-rate) आदि क्रियाएं ऐच्छिक न होकर स्वतः संचालित होती हैं। श्वसन (Respiration) एक ऐसी क्रिया है, जिनका नियन्त्रण स्वतः संचालित रूप से भी होता है और ऐच्छिक रूप से भी। दूसरे शब्दों में कहें तो एक श्वास ही ऐसी क्रिया है, जो जाने-अनजाने हमें संभालती है।

शुद्ध, सहज और आंतरिक आलम्बन

जब हम ऐच्छिक नियंत्रण की बात करते हैं, तो उसका तात्पर्य होता

Scanned by CamScanner

है—चित्त को श्वसन-क्रिया के साथ जोड़ना। जब चित्त श्वसन-क्रिया के साथ जुड़ जाता है, तब वह श्वास को पकड़ने में यानी उसके अनुभूति करने में सक्षम बनता है। यही प्रक्रिया है—मन को एकाग्र या स्थिर करने की—उसकी चंचलता को मिटाने की। इस क्रम से प्रशिक्षित किए जाने पर मन स्थूल को पकड़ने में भी सक्षम होता जाता है।

हम इस बात को न सोचें कि हम मन को मिटा दें। मन को मिटाना असंभव तो नहीं, पर बहुत मुश्किल है। किन्तु नाना प्रकार के आलम्बनों में भटकने वाले मन के उस भटकाव को मिटा दें, एक ही आलम्बन में लम्बे समय तक वह स्थिर रह सके ऐसा प्रयत्न करें। इसीलिए श्वास को हमने चुना है। वह एक ऐसा आलंबन है, जो सहज है—बाहर से लाना नहीं पड़ता। जब चाहें, तब उसे आलम्बन बना सकते हैं। वह न भूतकाल की स्मृति है, न भविष्य की कल्पना है, अपितु वर्तमान की वास्तविकता है। जब चित्त श्वास पर केन्द्रित होता है, तो हमें वर्तमान में जीने का अवसर प्राप्त होता है। वह एक शुद्ध और पवित्र आलम्बन है। उसके प्रति हमारा कोई राग-द्वेष हो ही नहीं सकता।

दीर्घ श्वास

श्वास दो प्रकार का होता है—सहज और प्रयत्न-जनित। प्रयत्न के द्वारा श्वास में परिवर्तन किया जा सकता है—छोटे श्वास को दीर्घ बनाया जा सकता है। साधना को विकसित करने के लिए प्राण-शक्ति की प्रचुरता अपेक्षित होती है। प्राण-शक्ति के लिए श्वास का ईंधन चाहिए। श्वास का ईंधन जितना सशक्त होगा, प्राण-शक्ति उतनी ही सशक्त होगी और प्राण-शक्ति जितनी सशक्त होगी, हमारी साधना उतनी ही सफल होगी। श्वास को सशक्त बनाने के लिए ही हम उसे 'दीर्घ' बनाते हैं।

सामान्यतः आदमी एक मिनट में १५-१७ श्वास लेता है। इसके आस-पास दो स्थितियां बनती हैं। एक स्थिति है—श्वास की संख्या को बढ़ाने की और दूसरी स्थिति है श्वास की संख्या को घटाने की। दूसरे शब्दों में एक स्थिति है श्वास को छोटा करने की और दूसरी स्थिति है श्वास को लम्बाने की। ये दो स्थितियां बनती हैं। जो व्यक्ति साधना-रत नहीं है, जो बहुत आवेगशील हैं, वे व्यक्ति उस दिशा में प्रस्थान करते हैं कि श्वास छोटा हो जाता है और उसकी संख्या बढ़ जाती है।

Scanned by CamScanner

क्र. सं.	क्रिया	एक मिनट में औसतन श्वासों की संख्या
१.	वासना के आवेग में या सम्भोग में	६०-७०
२.	क्रोध, भय आदि उत्तेजना में	४०-६०
३.	नींद में	२५-३०
४.	बोलते समय	२०-२५
५.	चलते समय	१८-२०
६.	बैठे-बैठे	१५-१७
७.	सामान्य दीर्घश्वास	८-१०
८.	दीर्घश्वास—पर्याप्त अभ्यास के बाद	४-६
९.	लम्बे नियमित अभ्यास से	१-३

१५-१७ की संख्या ३०-४०, ५०-६० तक बढ़ जाती है। आवेश में, कषाय में, वासना-प्रवृत्ति में श्वास की संख्या बढ़ जाती है। श्वास की संख्या बढ़ती है, श्वास छोटा होता है और साथ-साथ प्राण-शक्ति पर उसका प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर भी उसका असर होता है। किन्तु प्रेक्षा-ध्यान की साधना करने वाला व्यक्ति श्वास की गति व्यवस्थित करता है। वह श्वास की लम्बाई को बढ़ाता है। श्वास मंद हो, श्वास दीर्घ हो, श्वास लम्बा हो—यह साधक का प्रथम प्रयास होता है। फलस्वरूप श्वास की संख्या घटती है, लंबाई बढ़ती है, मन शांत होता है। इसके साथ-साथ आवेश शांत होते हैं तथा उत्तेजनाएं और वासनाएं शांत होती हैं। श्वास जब छोटा होता है, तब वासनाएं उभरती हैं।, उत्तेजनाएं आती हैं, कषाय जागृत होते हैं। जब श्वास छोटा होता है, तब ये सब उभरते हैं या दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जब ये उभरते हैं, तब श्वास छोटा हो जाता है। इन सबसे श्वास प्रभावित होता है। इन सब दोषों का वाहन है—श्वास। ये श्वास पर आरोहण करके आते हैं। जब कभी मालूम पड़े कि उत्तेजना आने वाली है, तब तत्काल श्वास को लम्बा कर दें, दीर्घ श्वास लेने लग जाएं, आने वाली उत्तेजना लौट जाएगी। इसका कारण है कि श्वास का वाहन उसे उपलब्ध नहीं हो पाया है। बिना आलंबन के उत्तेजना या वासना प्रगट नहीं हो सकती। ध्यान की साधना करने वाला साधक मन की सूक्ष्मता को पकड़ने में अभ्यस्त हो जाता है। वह जान लेता है कि मस्तिष्क के अमुक

Scanned by CamScanner

केन्द्र में कोई वृत्ति उभर रही है। वह तत्काल दीर्घ श्वास का प्रयोग प्रारंभ कर देता है। उभरने वाली वृत्ति तत्काल शांत हो जाती है। साधक उन वृत्तियों का, उत्तेजनाओं का शिकार नहीं होता।

साधक को सबसे पहला परिवर्तन जो करना होता है, वह है, श्वास की गति का परिवर्तन। जो इसके मूल्य को नहीं जानता, वह सचाई को नहीं पकड सकता। जो साधक दीर्घ-श्वास को केवल प्राणायाम के रूप में ही स्वीकार करता है, वह अपने स्वास्थ्य तक सीमित लाभ तो उठा सकता है, किन्तु वह दीर्घश्वास-प्रेक्षा से होने वाले आंतरिक परिवर्तनों के लाभ से वंचित रह जाता है। हम यह स्पष्ट मानें की दीर्घ-श्वास केवल प्राणायाम ही नहीं है, वह उससे आगे भी है। हम दीर्घश्वास को प्राणायाम की दृष्टि से नहीं ले रहे हैं। उसका मूल उपयोग है—वृत्तियों का शमन, उत्तेजनाओं का शमन और वासनाओं का शमन। इसके साथ-साथ शारीरिक और मानसिक लाभ भी होते हैं।

जब गति में मंदता लाने का अभ्यास और आगे बढ़ता है, तो साधक को अनुभव होता है कि बहुत लंबे समय तक श्वास लिए बिना रहा जा सकता है, श्वास की तरंग का निरोध किया जा सकता है। 'महाप्राण-ध्यान' की साधना आदि अनेक प्रकार की समाधियों में साधक श्वास का निरोध कर श्वासहीन स्थिति में चला जा सकता है।

श्वास बहुत ही मूल्यवान् है, इसे छोटा न समझा जाए। यदि यह छोटी-सी बात भी समझ में आ जाती है, तो साधना की बड़ी-बड़ी बातें स्वतः समझ में आ जाएंगीं। मनुष्य की कठिनाई यह है कि वह सदा ध्वजा को देखता है, नींव को नहीं देखता। अध्यात्म की साधना में श्वास को देखना नींव को देखना है। श्वास-प्रेक्षा नींव का पत्थर है, क्योंकि इसी पर साधना का महल खड़ा किया जा सकता है। श्वास के द्वार को खोले बिना अगले द्वारों का उद्घाटन हो नहीं सकता।

निष्पत्तियां

चित्त की प्रसन्नता

प्रेक्षा ध्यान-साधना की अनेक प्रकार की निष्पत्तियां हैं, वे निष्पत्तियां मानसिक भी हैं और शारीरिक भी। ध्यान-सिद्धि होने का सबसे पहला प्रमाण है—चित्त की प्रसन्नता। जैसे-जैसे ध्यान सिद्ध होने लगता है, प्रसन्नता बढ़ती जाती है। हर्ष और शोक एक द्वंद्व है। ध्यान की आराधना के द्वारा जो प्राप्त होता है, वह है—चित्त की प्रसन्नता—न हर्ष, न शोक।

Scanned by CamScanner

मानसिक एकाग्रता

श्वास-प्रेक्षा मानसिक एकाग्रता का बहुत महत्त्वपूर्ण आलंबन है। उससे रक्त को बल मिलता है, शक्ति के केन्द्र जागृत होते हैं, तैजस शक्ति जागृत होती है, सुषुम्ना और नाड़ी-संस्थान प्रभावित होते हैं।

हमारे क्रियात्मक और व्यवसायिक क्षेत्र में मानसिक एकाग्रता बहुत मूल्यवान है। किसी भी कार्य-क्षमता का आधार मानसिक एकाग्रता है। डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, कर्मचारी हो या किसी बड़े संस्थान का प्रबंध-निदेशक (मैनेजिंग डाइरेक्टर) हो या सामान्य गृह-कार्य में रत गृहिणी हो—सबको अपने-अपने कार्य करने में मानसिक एकाग्रता अत्यन्त अपेक्षित है। किसी भी कार्य में जब तक चित्त एकाग्र या तन्मय नहीं होगा, तब तक उत्पादन-क्षमता (Operation efficiency) का स्तर अत्यन्त निम्न होगा—क्षमता २० प्रतिशत और शक्ति का अनावश्यक व्यय ८० प्रतिशत होगा। किन्तु जब किसी भी कार्य में चित्त की तन्मयता होगी तब क्षमता ८० प्रतिशत व अनावश्यक व्यय २० प्रतिशत हो जाएगा अर्थात् ठीक पहले के विपरीत।

श्वास-प्रेक्षा का प्रयोग चित्त की एकाग्रता को—तन्मयता को बढ़ाने का सरल किन्तु सक्षम उपाय है। जैसे प्रत्येक श्वास केवल वर्तमान की क्रिया है—न अतीत की स्मृति, न भविष्य की कल्पना है और साधक उसी को देखने में तन्मय हो जाता है, वैसे ही व्यवसायिक क्षेत्र में भी दूसरे अनेक कार्यों को छोड़कर केवल वर्तमान के काम पर पूरा ध्यान देना और वैसा करने की आदत डालना, यह मानसिक एकाग्रता का प्रशिक्षण है।

औद्योगिक, वाणिज्यिक और व्यापारिक क्षेत्र के बड़े संस्थान अपने वरिष्ठ प्रबन्धकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए उनके प्रशिक्षण में प्रतिवर्ष लाखों रुपए खर्च करते हैं। प्रशिक्षण देने वाले संस्थान बहुधा सेमीनार के रूप में यह कार्यक्रम चलाते हैं। किन्तु वस्तुतः कार्यक्षमता का विकास करने का मूल है मानसिक एकाग्रता का प्रयोग और उसे प्राप्त करने का साधन है श्वास-प्रेक्षा।

जागरूकता

श्वास-प्रेक्षा जागरूकता का अचूक उपाय है। इसमें हम भीतर जाने वाले और बाहर निकलने वाले श्वास को देखते हैं। दरवाजे पर खड़ा प्रहरी (चित्त) यदि जागरूक न हो, तो कोई भी भीतर जा सकता है, कोई

Scanned by CamScanner

भी बाहर आ सकता है। फिर प्रहरी होने का कोई अर्थ ही नहीं है। आते-जाते श्वास को देखते-देखते चित्त जागरूक हो जाता है, फिर एक भी श्वास उससे बचकर निकल नहीं पाता, प्रत्येक श्वास को वह देख ही लेता है। श्वास और चित्त साथ-साथ चलें, सहयात्री रहें। दो साथी साथ में चलें और एक नींद लेता रहे, यह नहीं हो सकता। नींद आते ही साथ छूट जायेगा। श्वास का क्षेत्र सीमित है, चित्त का क्षेत्र असीम। चित्त का काम यह नहीं कि वह श्वास की सीमा में चले, श्वास के साथ ही रहे। श्वास की यात्रा छोटी है, उसका यात्रापथ नथूने से फेफड़े तक बहुत संकीर्ण और छोटा है, किन्तु चित्त का मार्ग बहुत लम्बा-चौड़ा है, बहुत दीर्घ है। वह एक क्षण में सारी दुनिया का चक्कर लगा सकता है। इतनी विशाल यात्रा करने वाले और इतनी तीव्र गति से चलने वाले चित्त को श्वास जैसे छोटे यात्री के साथ जोड़े रखना कठिन काम है, किन्तु यह किया जा सकता है। ऐसा करने पर ही चित्त जागरूक हो जाता है, फिर वह कभी नहीं सोता; वह श्वास का साथी बन जाता है।

समभाव

श्वास वास्तविक है, इसलिए वह सत्य है—वर्तमान की घटना है। श्वास-प्रेक्षा करने का अर्थ है—सत्य को देखना, वर्तमान में जीने का अभ्यास करना। श्वास एक घटना है। यह वर्तमान की घटना है, अतीत या भविष्य की नहीं। जिस क्षण में हम श्वास लेते हैं, उसी क्षण में हम उसे देख रहे हैं। यह वर्तमान का क्षण है। यह है—वर्तमान में जीने का अभ्यास; वर्तमान में रहने का अभ्यास। जब हम वर्तमान में हैं, उसे देख रहे हैं, उस समय न कोई राग है, न कोई द्वेष है, क्योंकि जब स्मृति या कल्पना नहीं है, तो राग भी नहीं है और द्वेष भी नहीं है। हम स्मृति और कल्पना से मुक्त तथा राग-द्वेष से मुक्त क्षण में जी रहे हैं। यह है शुद्ध चेतना का क्षण—यहां न प्रियता है और न अप्रियता; न कोई अतीत का अनुभव है और न कोई भविष्य की चिंता।

श्वास को देखने का अर्थ है—समभाव में जीना। वर्तमान में जीना। वर्तमान में जीने का अर्थ है—मन को विश्राम देना, भार का मुक्त होना, मानसिक तनाव से छुटकारा पाना—वीतरागता के क्षण में जीना, राग-द्वेष-मुक्त क्षण में जीना। जो व्यक्ति श्वास को देखता है, उसका तनाव अपने आप विसर्जित हो जाता है।

Scanned by CamScanner

ज्ञाता-द्रष्टा भाव

श्वास-प्रेक्षा ज्ञाता-द्रष्टा भाव को विकसित करने का भी सक्षम उपाय है। हमारी चेतना का मूल धर्म है—जानना और देखना, ज्ञाता भाव और द्रष्टा भाव। हम जब अपने अस्तित्व में होते हैं—आत्मा की सन्निधि में होते हैं, तब केवल जानना और देखना—दो ही बातें घटित होती हैं, किन्तु जब बाहर आते हैं—अपने केन्द्र से हटकर परिधि में आते हैं, तब साथ में और कुछ जुड़ जाता है, मिश्रण हो जाता है। मिश्रण होते ही जानना-देखना छूट जाता है और सोचना, विचारना, चिन्तन करना, मनन करना रह जाता है। चिन्तन-मनन सत्य की खोज के साधन नहीं हैं। सत्य की खोज के लिए अध्यात्म की चेतना को जगाना होगा। यह द्रष्टाभाव से ही संभव होता है। श्वास को देखना चेतना-जागरण की दिशा में पहला कदम है। सही दिशा में उठाया गया पहला कदम मंजिल तक पहुंचाने वाले अगले कदमों की श्रृंखला का आदि बिन्दु होता है। श्वास को देखना आत्म-साक्षात्कार की मंजिल तक पहुंचने का पहला कदम है।

श्वास को देखने का अर्थ है—दर्शन की बात पर आ जाना। यहां सोचना छूट जाता है, केवल देखना रह जाता है। देखना शुरू करते ही विचारों और विकल्पों पर प्रहार होने लग जाता है। विकल्पों से हटकर अविकल्प और चिंतन से हटकर अचिंतन पर कदम बढ़ने लगते हैं।

श्वास-प्रेक्षा के द्वारा हम जानने और देखने की मूल प्रवृत्ति का प्रारंभ करते हैं, ज्ञाता भाव, द्रष्टा भाव को विकसित करते हैं। जब हम श्वास-प्रेक्षा का अभ्यास करते हैं, तब श्वास के साथ चित्त को जोड़ते हैं या चित्त से श्वास को देखते हैं। श्वास को देखते हैं किन्तु सोचते नहीं। मूलतः 'केवल देखने' का यह प्रयत्न है। साथ-साथ एकाग्रता भी सधती है। किन्तु हम श्वास-प्रेक्षा केवल एकाग्रता के लिए नहीं करते, ज्ञाता-द्रष्टा भाव को विकसित करने के लिए करते हैं।

शक्ति-जागरण

हम दीर्घ-श्वास लेते हैं, दीर्घ-श्वास की प्रेक्षा करते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि हम शक्ति के मूल स्रोतों को जागृत करने का प्रयत्न करते हैं। दीर्घश्वास को देखने की बात बहुत छोटी-सी लगती है, किन्तु यह बहुत गहरी बात है। एक अंगुली को पकड़ कर समूचे घर का मालिक बन जाने की बात है। हम इस प्रक्रिया से केवल प्राण को ही नहीं पकड़ रहे हैं, वरन्

Scanned by CamScanner

समूची प्राण-शक्ति को जागृत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। जैसे-जैसे हम श्वास को दीर्घ करते हैं, हम पूरी ऊर्जा को खींचते हैं और उसे देखते हैं, तो शक्ति के मूलस्रोत को जागृत कर लेते हैं, जिसके विस्फोट के द्वारा हमें नई-नई शक्तियां उपलब्ध होती हैं। नई दिशाओं के उद्‌घाटन के लिए श्वास-प्रेक्षा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा

जैसे दीर्घ श्वास में श्वास की गति को परिवर्तित किया जाता है, वैसे ही समवृत्ति श्वास में उसकी दिशा को बदला जाता है। एक नथुने से श्वास भीतर लेकर दूसरे नथुने से बाहर निकाला जाता है तथा फिर उसी से भीतर लेकर पहले नथुने से बाहर निकाला जाता है। यह परिवर्तन संकल्प-शक्ति के द्वारा निष्पन्न हो सकता है। इस दौरान लगातार चित्त श्वास के साथ-साथ चलता है, उसकी प्रेक्षा करता है। यही 'समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा' है।

समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा में नाड़ी-संस्थान का शोधन होता है। ज्ञान-शक्ति विकसित होती है और अतीन्द्रिय-ज्ञान की संभावनाओं का द्वार खुलता है।

जैसे दीर्घश्वास-प्रेक्षा शक्ति-जागरण का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, वैसे ही समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा भी शक्ति-जागरण का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। मनःकायिक चिकित्सक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि समवृत्ति श्वास के माध्यम से चेतना के विशिष्ट केन्द्रों को जागृत किया जा सकता है। दूर-बोध (Clairvoyance) की उपलब्धि इससे संभव हो सकती है। समवृत्ति श्वास का सतत अभ्यास अनेक उपलब्धियों में सहायक हो सकता है।

अभ्यास

१. श्वास की प्रक्रिया को वैज्ञानिक दृष्टि से स्पष्ट कीजिए।

२. प्राण, प्राणवायु और प्राणायाम को स्पष्ट कीजिए।

३. श्वास-प्रक्रिया का आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्व समझाइये।

४. श्वास-प्रेक्षा की निष्पत्तियों पर प्रकाश डालिए।

Scanned by CamScanner

: ४ :

शरीर-प्रेक्षा

वैज्ञानिक आधार

हम जीवन में प्रतिक्षण अपने शरीर के साथ रहते हैं, किन्तु उसके प्रमुख अवयवों के विषयों में हमारी जानकारी अल्प एवं इन अवयवों के क्रियाकलापों के विषयों में अल्पतर होती है। सर्वप्रथम हमें शरीर के विभिन्न तंत्रों की प्रक्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करना होगा तभी हम अपने हृदय, फेफड़े और यकृत जैसे महत्त्वपूर्ण अंगों का सम्यक् परिचय कर सकेंगे, उनका गलत ढंग से उपयोग करना छोड़ सकेंगे और उनकी भली-भांति देख-रेख कर सकेंगे।

मानव-शरीर और अंगोपांग खरबों की संख्या में सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणिकाओं, जिन्हें कोशिका कहते हैं, कोशिकाओं के द्वारा उत्पादित द्रव्य एवं शरीर के तरल पदार्थों से निर्मित है। यदि शरीर को हम इमारत कहें, तो कोशिका उसकी ईंट है। यानी कोशिकाएं हमारे शरीर की इकाइयां हैं। इन्हें 'जीव-अणु' की संज्ञा भी दी जा सकती है।

हमारे शरीर में लगभग ६०० खरब (६,००,००,००,००,००,०००) कोशिकाएं होती हैं। प्रायः सभी कोशिकाएं इतनी सूक्ष्म होती हैं कि उन्हें देखने के लिए शक्तिशाली सूक्ष्म—वीक्षण यंत्र की अपेक्षा होगी तथा उनके भीतर झांकने के लिए सूक्ष्मतम-वीक्षण यंत्र की अपेक्षा होगी। छोटी-से-छोटी कोशिका की लम्बाई चौड़ाई लगभग १/२०० मिलीमीटर होती है और बड़ी से बड़ी कोशिक १/४ मि॰ मीटर लम्बी-चौड़ी होती है।

कोशिकाओं को अपना कार्य करने के लिए शक्ति या ऊर्जा (एनर्जी) की आवश्यकता होती है। उसका उत्पादन कोशिकाओं के भीतर रहे हुए सूक्ष्मातिसूक्ष्म ऊर्जा-उत्पादन-केन्द्रों (Power-house) में किया जाता है। लगभग सभी ऊतकों में कोशिकाएं जीर्ण होती रहती हैं और उनके स्थान पर नई कोशिकाएं बनती रहती हैं। नई कोशिकाओं का निर्माण जीर्ण कोशिकाओं के विभाजन के द्वारा होता है।

Scanned by CamScanner

प्रत्येक जीवित कोशिका में सहस्रों की संख्या में विभिन्न प्रकार के रसायन विद्यमान होते हैं। ये रसायन केवल निष्क्रिय पदार्थों का मिश्रण न होकर निरन्तर सक्रिय रूप में एक दूसरे के साथ क्रिया में प्रवृत्त रहते हैं। आनुवंशिकता की सम्पूर्ण जानकारी का संकेत भी उनमें रासायनिक रूप में होता है। शरीर के विभिन्न अंगों की संरचना भी विभिन्न रासायनिक उपादानों से की जाती है। भिन्न-भिन्न अंशों में विद्यमान विभिन्नता का कारण भी रासायनिक पदार्थों की रचना की विभिन्नता ही है।

समान संरचना वाली कोशिकाओं के समूह एवं उनके बीच रहे हुए निर्जीव पदार्थ मिलकर ऊतक की रचना करते हैं। जैसे–

१. त्वचा या आच्छादन करने वाले ऊतक
२. अस्थि और उपास्थि (Cartilage)
३. मांसपेशियों के ऊतक
४. तन्त्रिकाओं के ऊतक आदि।

एक ही प्रकार के कार्यों में संलग्न अनेक ऊतकों के समूहों से अवयव बनते हैं। उदाहरणार्थ–हृदय, जो कि शरीर का एक प्राण-आधार (Vital) अवयव है, जीवित शरीर को टिकाए रखने के लिए 'संघ-कार्य' एक आवश्यक स्थिति है। अर्थात् सभी अवयवों द्वारा एक दूसरे को परस्पर सहयोग करना अत्यन्त अपेक्षित है। एक ही प्रकार के कार्यों की शृंखला को निष्पादित करने वाले अनेक अवयवों के समूह को "तन्त्र" कहा जाता है। जैसे–श्वसन-तंत्र।

शरीर के जिन तंत्रों के विषय में अधिक विस्तृत जानकारी अपेक्षित हैं, वे हैं–

१. नाड़ी-तंत्र
२. रक्त-परिसंचरण-तंत्र
३. श्वास-तंत्र
४. पाचन-तंत्र तथा विसर्जन-तंत्र
५. अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र

नाड़ी-तंत्र (तंत्रिका-तंत्र)

नाड़ी-संस्थान (Nervous System) मानव शरीर का जटिलतम तन्त्र है। यह शरीर के अन्य सभी तन्त्रों का नियंत्रण एवं संयोजन करता है तथा उनके माध्यम से समग्र शरीर के क्रियाकलापों को संचालित करता है। इसलिए इसे शरीर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तंत्र माना जाता है। यदि

Scanned by CamScanner

नाड़ी-तंत्र किसी भी कारण से विफल हो जाए, तो सारे शरीर की प्रवृत्तियां ठप्प हो जाएंगी, सारे अवयव स्तम्भित हो जायेंगे और अन्ततोगत्वा सूक्ष्म प्राणाधार क्रियाएं बन्द हो जाएंगी। ऐसी स्थिति में न हाथ-पैर हिल सकेंगे, न बैठना-उठना, न मांसपेशियों का संचालन हो सकेगा, न आंखों का उन्मेष-निमेष होगा और यहां तक कि श्वासोच्छ्वास भी बन्द हो जायेगा।

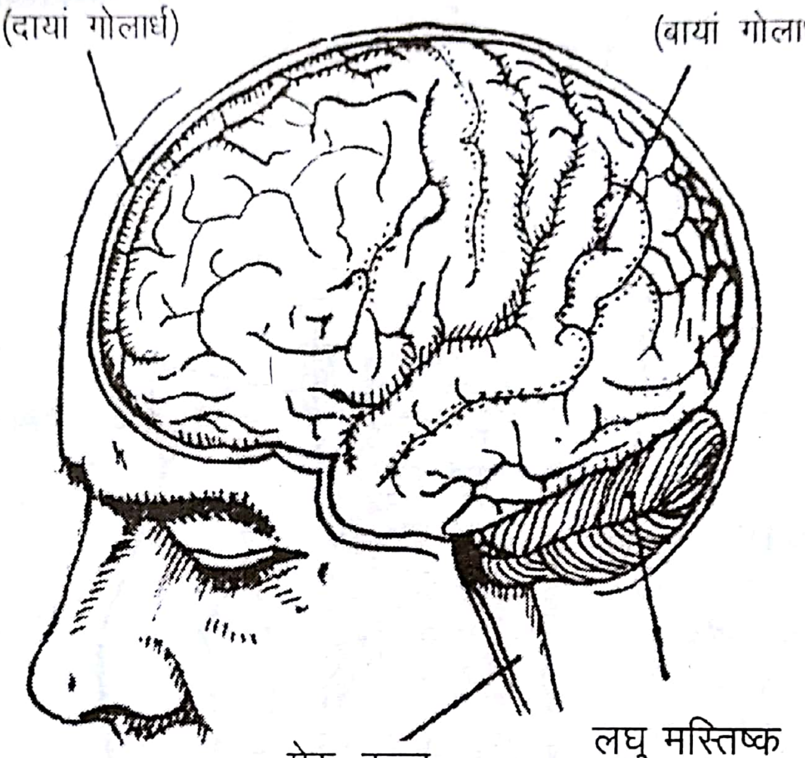

हमारे केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान के मुख्य दो अंग हैं—

१. मस्तिष्क (Brain)

२. सुषुम्ना या मेरु-रज्जु (Spinal Cord)

शरीर के भीतर और बाहर से प्राप्त होने वाली सूचनाओं की जांच-पड़ताल कर उन्हें संशोधित करना।

२. पेशी-तंत्र की सक्रियता के द्वारा शारीरिक संचलन का उपादन एवं नियमन करना। मस्तिष्क के कुछ हिस्से संवेगों के नियंत्रण और सूचनाओं के संग्रह के लिए जिम्मेदार होते हैं तथा व्यक्ति एवं बौद्धिकता के साथ भी उनका सम्बन्ध होता है।

अनुकंपी-परानुकंपी तंत्रिकाएं

नाड़ी-संस्थान में तंत्रिका-तंत्र की कुछ प्रवृत्तियां ऐसी हैं जो स्वतः

Scanned by CamScanner

संचालित होती है और कुछ प्रवृत्तियां मेरुदण्ड और मस्तिष्क के द्वारा संचालित होती हैं। जैसे हाथ उठाना है, आदमी की इच्छा होगी, तो हाथ उठेगा, आन्तरिक अवयवों के कार्य, ग्रन्थियों का स्राव आदि सारे कार्य स्वायत्त तंत्रिका-तंत्र से निष्पादित होते हैं। मेरुदण्ड के दोनों ओर सिम्पेथेटिक

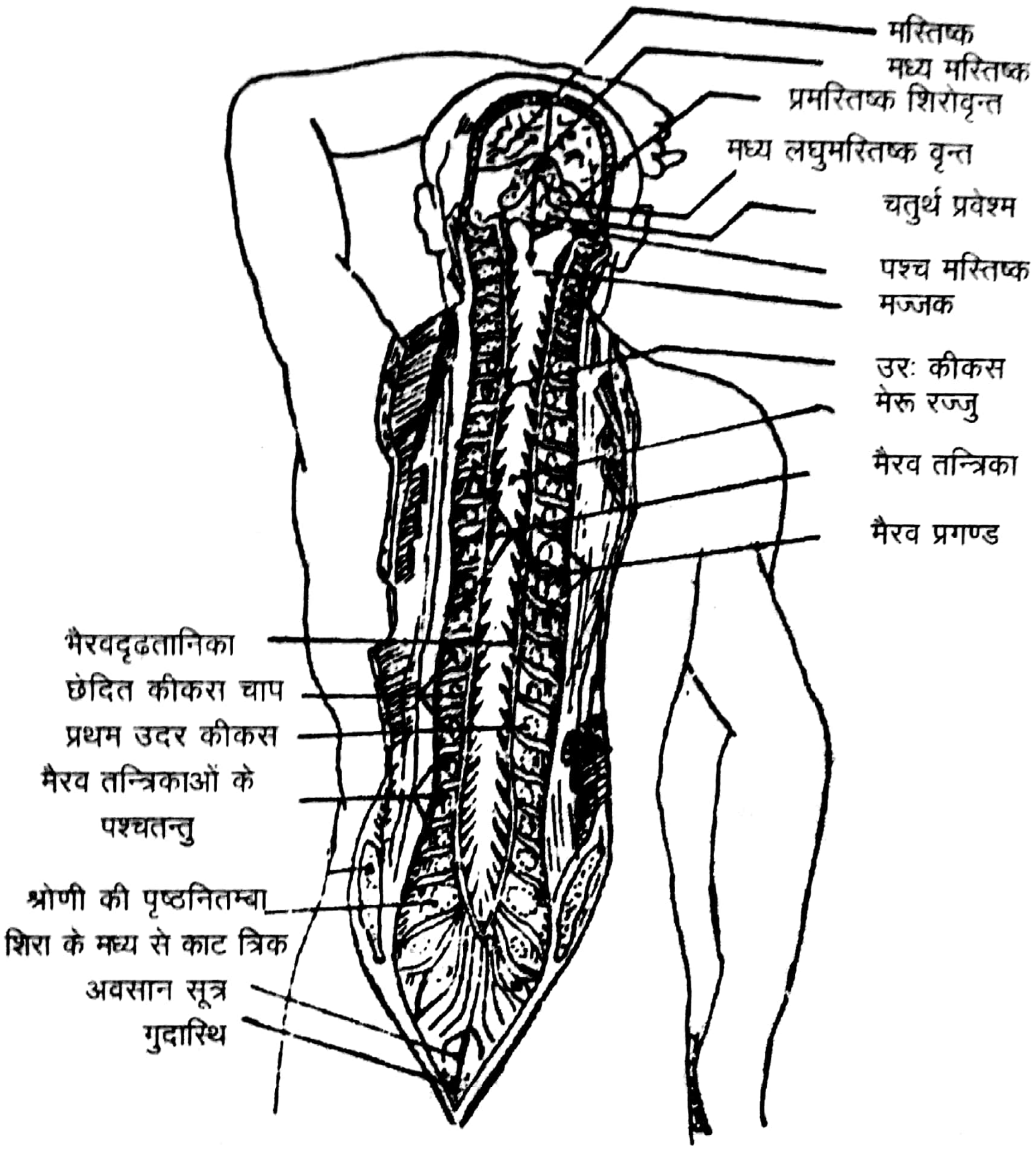

केन्द्रीय तन्त्रिका-संस्थान के मुख्य अंग—मस्तिष्क और सुषम्ना (मेरु रज्जु) (Spinal Cord)

और पेरासिम्पेथेटिक—अनुकम्पी और परानुकंपी—ये दो प्रकार की तंत्रिकाओं के गुच्छे होते हैं। वहां से स्वायत्त-तंत्रिका-तंत्र संचालित होता है। उसमें मस्तिष्क और मेरुदण्ड का विशेष उपयोग नहीं होता, किन्तु सम्बन्ध अवश्य जुड़ा रहता है।

Scanned by CamScanner

स्वायत्त नाड़ी-तंत्र के दो पृथक् विभाग होते हैं, जिनमें प्रत्येक विभाग एक विशेष प्रकार के कार्य संपादित करता है—

१. परानुकंपी (Parasympathetic)

२. अनुकम्पी (Sympathetic)

इन दोनों की क्रिया परस्पर विपरीत है। जहां एक विभाग अंग या अवयव की क्रिया को उत्तेजित करता है, वहां दूसरा उसे शांत करता है। उदाहरणार्थ—अनुकम्पी विभाग हृदय की गति एवं उसकी संकुचन-शक्ति तथा रक्त-चाप को बढ़ाता है तो परानुकम्पी-व्यवस्था इन्हें कम करती है।

रक्त-संचार तंत्र

मानव—शरीर की प्रत्येक कोशिका को ग्लूकोज आदि पोषक तत्त्वों

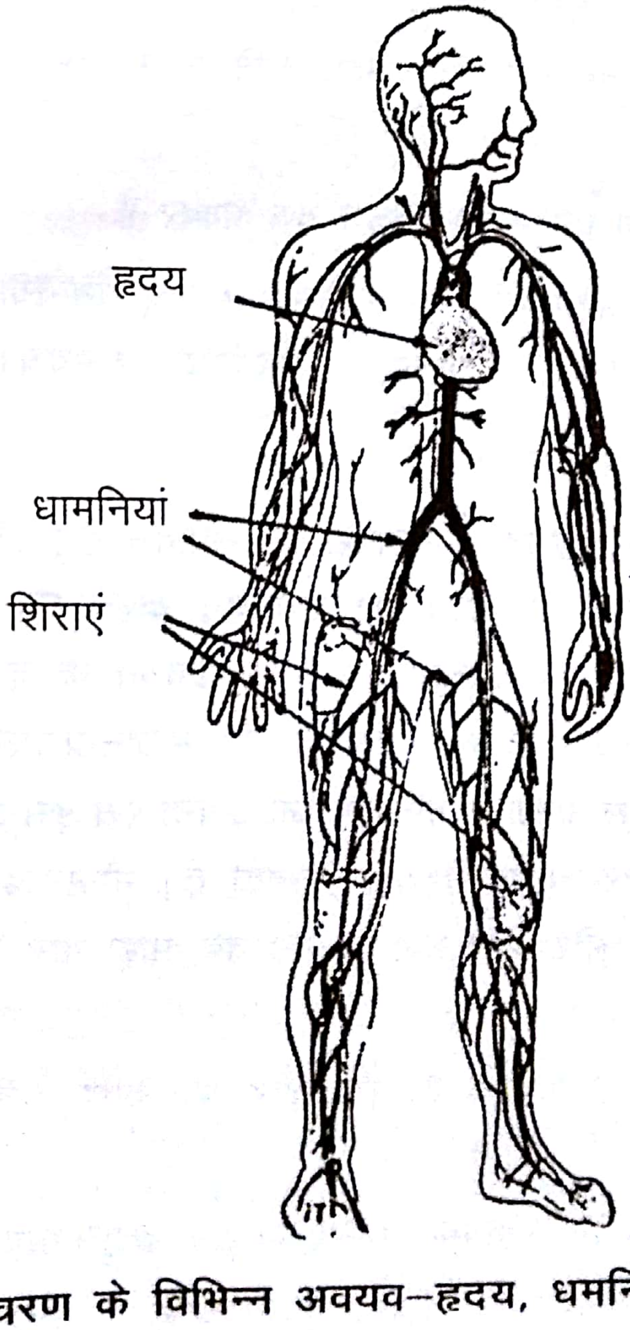

रक्त परिसंचरण के विभिन्न अवयव—हृदय, धमनियां, शिराएं

Scanned by CamScanner

एवं प्राणवायु (ऑक्सीजन) की आपूर्ति की निरंतर आवश्यकता रहती है। इसके अतिरिक्त कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, यूरिया आदि अनावश्यक तत्त्वों को कोशिकाओं से हटाकर फेफड़ों, गुर्दों या यकृत में पहुंचाने की आवश्यकता रहती है जहां से इनको विसर्जन या आवश्यक शोधन किया जा सके।

रक्त-परिसंचरण-तंत्र अपनी फैली हुई शाखा-प्रशाखाओं की जटिल संरचना एवं अंतः-संबंध-युक्त नलिकाओं के माध्यम से रक्त को सारे शरीर में पहुंचा कर शरीर को यह सेवा प्रदान करता है।

इस तंत्र के प्रमुख अवयव हैं—हृदय, फेफड़े, महाधमनी, धमनियां, महाशिरा, शिराएं और कोशिकाएं।

रक्त को सतत प्रवहमान रखने के लिए जिस प्रेरक बल की आवश्यकता है, वह है हृदय नामक शक्तिशाली पम्प की नियमित होने वाली धड़कन।

परिसंचरण का सामान्य क्रम इस प्रकार है—

हृदय → महाधमनी → धमनियां → लघु धमनियां → केशिकाएं → लघु शिराएं → शिराएं → महाशिरा → हृदय।

पाचन-तन्त्र

जीवन की अनिवार्य क्रियाओं के संपादन हेतु निरन्तर ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा का उत्पादन करने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। पाचन-क्रिया जिस अवयव के द्वारा होती है उसे भोजन-प्रणाली अथवा अन्नमार्ग कहते हैं। भोजन-प्रणाली (Alimentary Canal) तथा कुछ अन्यान्य ग्रन्थियां, जो अपना रस इस प्रणाली को प्रेषित करती हैं मिलकर 'पाचन-संस्थान' बनाती हैं। भोजन-प्रणाली का प्रारम्भ मुख से होता है और अन्त मलद्वार में। यह सारा मार्ग लगभग नौ मीटर होता है।

इस तंत्र के अवयव हैं—मुख और लार-ग्रंथि, अन्ननली, आमाशय, पक्वाशय, बड़ी आंत आदि।

पाचन-तंत्र के सहायक अवयव—यकृत; क्लोम-ग्रन्थि (अग्न्याशय या चुस्ता) **(Pancreas)**।

Scanned by CamScanner

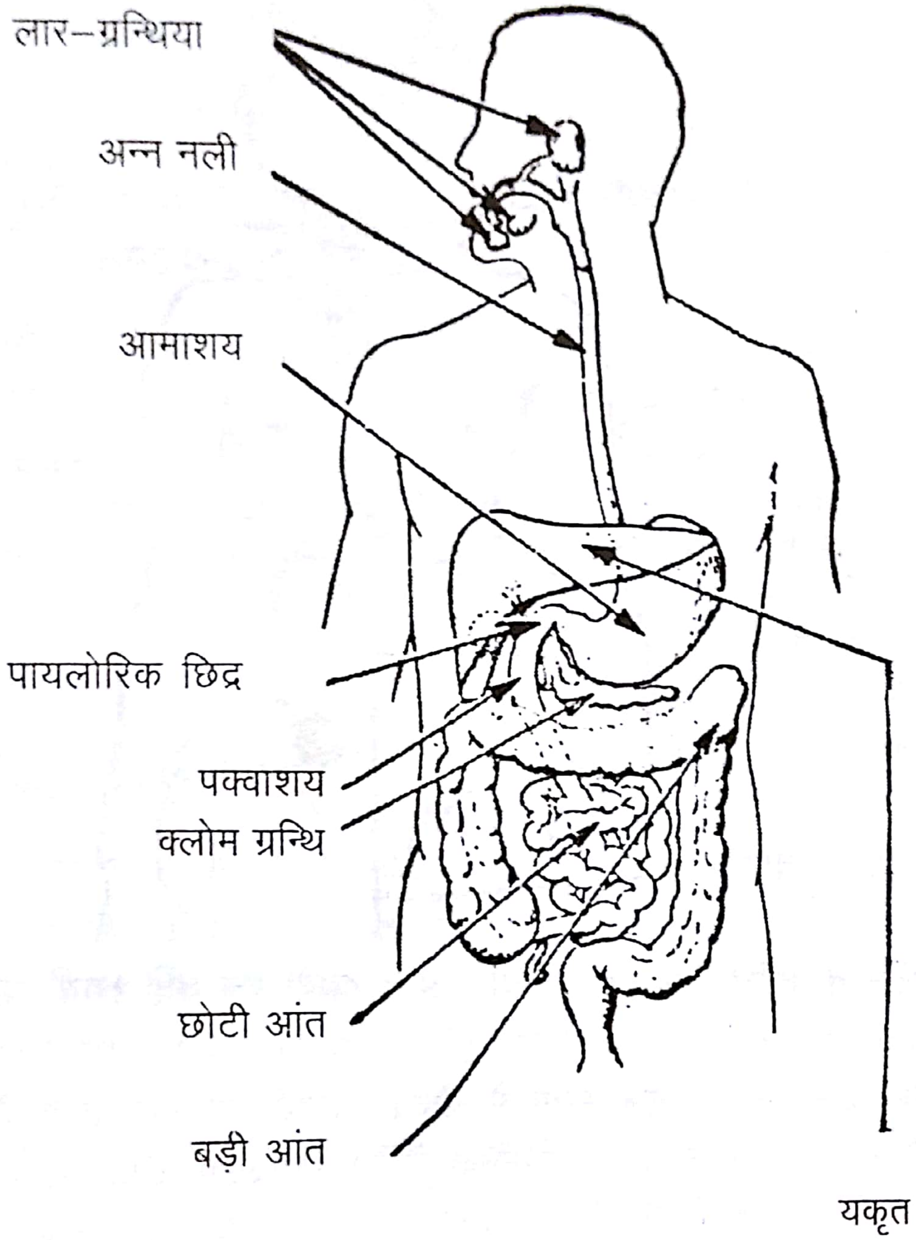

अन्तःस्त्रावी ग्रन्थि-तन्त्र

अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियां (Endocrine Glands) नलिकाविहीन होती हैं। उनके स्त्राव सीधे ही रक्त प्रवाह में छोड़े जाते हैं। वे पूरे शरीर में प्रवाहित होते हैं और उत्पादन-स्थान से सुदूर स्थानों तक अपना कार्य कर सकते हैं। अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियां शरीर में बिखरी हुई पाई जाती हैं। इसके बावजूद इन सबका एक सक्षम तन्त्र बनता है, जो शरीर की अन्यान्य क्रियाओं में सम्पूर्ण संगति बिठाकर उनका सुचारु रूप से नियन्त्रण करता है।

मुख्य अन्तःस्त्रावी ग्रंथियां ये हैं—पाइनियल, पिच्यूटरी (पीयूष), थायरॉइड, पेरा-थाइरॉइड, थाइमस, एड्रीनल (अधिवृक्क), लेंगरहांस के द्वीप तथा

Scanned by CamScanner

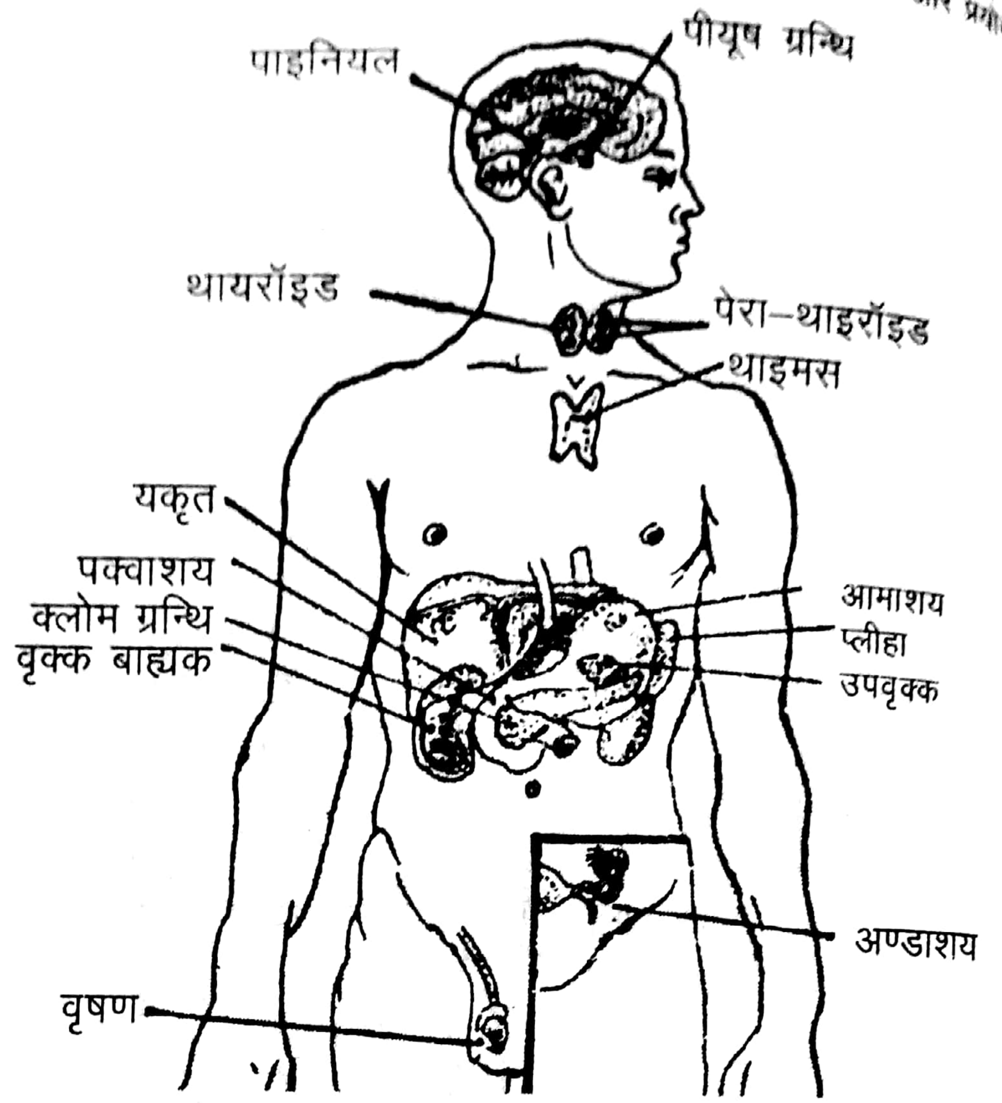

शरीर के विभिन्न भागों में स्थित अन्तःस्त्रावी एवं बहि-स्त्रावी ग्रन्थियां

गोनाड्स (काम-ग्रन्थियां)। ये सब ग्रंथियां अपेक्षाकृत काफी छोटी होती हैं। रक्त द्वारा उन्हें विपुल मात्रा में पोषक सामग्री उपलब्ध होती है। इन ग्रंथियों के उत्पादन जैव-रासायनिक-यौगिक (Organic Chemical Compound) के रूप में होते हैं। वे स्वल्प मात्रा में भी बहुत अधिक प्रभावशाली होते हैं।

विसर्जन तन्त्र–गुर्दे

शरीर में उत्पन्न नाइट्रोजन अवशिष्ट पदार्थों का विसर्जन करने के लिए मुख्य अवयव के रूप में गुर्दे कार्य करते हैं।

प्रत्येक गुर्दे में मूत्र का उत्पादन सतत चौबीस घंटे चालू रहता है। वह बूंद-बूंद कर मूत्र-वाहिनी के माध्यम से मूत्राशय (ब्लैडर) में टपकता रहता है और संगृहीत होता है।

मूत्राशय से मूत्र को बाहर निकालने के लिए एक नलिका होती है, जो शरीर के बाहर एक छिद्र के द्वारा खुलती है।

Scanned by CamScanner

रक्त की सफाई और निस्यन्दन के अतिरिक्त गुर्दे रक्त की लाल कोशिकाओं के उत्पादन को बढ़ावा देते हैं। इसके अतिरिक्त वे रक्त में सोडियम व पोटेशियम, लवण, जल एवं अन्य तत्त्वों की मात्रा का नियमन करते हैं। गुर्दों के द्वारा जैविक जल-सन्तुलन को नियन्त्रित किया जाता है। गुर्दे हमारे रक्त को अत्यधिक अम्लीय या अत्यधिक प्रत्यम्लीय होने से बचाते हैं।

आध्यात्मिक आधार

हमारा शरीर बहुत मूल्यवान् है। इसमें जितने रहस्य भरे पड़े हैं, वे रहस्य एक साधक ही जान सकता है। एक डॉक्टर भी नहीं जान सकता, एक कुशल शल्य-चिकित्सक भी उन रहस्यों को नहीं जानता, जो अध्यात्म के आचार्यों ने खोजे हैं। यद्यपि आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर का मूल्य चिकित्सक नहीं कर सकता, फिर भी यह तो मानना पड़ेगा कि नाड़ी-तंत्र के बारे में आज का चिकित्सक अच्छी तरह से जानता है, उसका फंक्शन क्या है, उसकी सारी नाड़ियां किस प्रकार क्रिया करती हैं। इन सबको एक कुशल चिकित्सक अच्छी तरह जानता है, किन्तु इन नाड़ियों से किस प्रकार प्राण की धारा प्रवाहित की जा सकती है और कहां ले जाई जा सकती है, चित्त-वृत्तियों को कहां-कहां ले जाया जा सकता है, यह बात चिकित्सा-शास्त्र का विषय नहीं है।

प्राण

हृदय में प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, नासाग्र में प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, नाभि में प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, गुदामूल में प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है और हमारी समूची त्वचा में प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है। प्राण के कई प्रवाह हैं। केवल सप्त धातुमय शरीर को जानने मात्र से भीतर की यात्रा नहीं हो सकती, भीतर के दरवाजे नहीं खुल सकते। भीतरी दरवाजों को खोलने के लिए, भीतर की यात्रा करने के लिए इन सारे रहस्यों को अनावृत करना, उद्घाटित करना परम आवश्यक होता है।

जैन दर्शन के अनुसार जीवन-शक्ति के मूल स्रोत मस्तिष्क, हृदय या फुफ्फुस नहीं, अपितु दस प्रकार के प्राण हैं—पांच प्राण इंद्रियों को बल प्रदान करते हैं, तीन प्राण मन, वाणी और शरीर को बल प्रदान करते हैं। श्वासोच्छ्वास के रूप में ऑक्सीजन और कार्बन डायोक्साइड को ग्रहण

Scanned by CamScanner

करने और छोड़ने की शक्ति श्वासोच्छ्वास-प्राण है तथा जीवित रखने की शक्ति आयुष्य-प्राण है। इन दसों में जब तक आयुष्य-प्राण क्रियाशील है, तब तक किसी एक शक्ति का काम बंद हो जाने पर भी प्राणी जीवित रह सकता है।

औदारिक शरीर

जैन आगमों में हमारा शरीर तीन प्रकार का बताया गया है: औदारिक, तैजस और कार्मण। औदारिक शरीर में हमारा अस्थि-पंजर, हमारी मांसपेशियां तथा शरीर-विज्ञान द्वारा व्याख्यायित सभी तन्त्र जैसे पाचन-तंत्र, श्वसन-तंत्र, परिसंचरण-तंत्र आदि तथा पांचों इन्द्रियां—श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय एवं मन आ जाते हैं। पांचों इंद्रियों और मन को भोगोन्मुख या योगोन्मुख करना, यह स्वयं व्यक्ति पर निर्भर है। शरीर-प्रेक्षा का एक कार्य इन्द्रिय-संयम का विकास भी है।

अध्यात्म में इन्द्रिय-संयम एवं मनः-संयम पर बल दिया गया है। चेतना इन्द्रियों और मन के मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयों के प्रति क्रमशः आसक्ति और घृणा अभिव्यक्त करती है। ये दोनों ही बंधन के हेतु हैं। वास्तव में इंद्रियों एवं मन का काम आसक्ति और घृणा नहीं है। बल्कि केवल जानना है—बिना आसक्ति और घृणा किए जानना है। यही शरीर-प्रेक्षा का लक्ष्य है। प्रमाद से मुक्त होना और जागरूक होकर शरीर का उपयोग करना शरीर-प्रेक्षा का आध्यात्मिक पक्ष है।

जैन आगम उत्तराध्ययन में विभिन्न उपमाओं के द्वारा इंद्रिय-विषयों और भावों में अत्यन्त आसक्त या द्विष्ट होने वाले व्यक्ति की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है। वहां बताया गया है—

"जो मनोज्ञ रूपों, शब्दों, गन्धों, रसों, स्पर्शों और भावों में तीव्र आसक्ति करता है, वह वैसे ही अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है जैसे प्रकाश-लोलुप पतंगा रूप में आसक्त होकर, अतृप्त बना हुआ रागातुर हरिन शब्द में मुग्ध होकर, बिल से निकलता हुआ सर्प नाग-दमनी आदि औषधियों के गन्ध में गृद्ध होकर, मांस के रसास्वादन में आसक्त बना रागातुर मत्स्य कांटे से बींधकर, घड़ियाल के द्वारा पकड़ा हुआ भैंसा अरण्य-जलाशय के शीतल जल के स्पर्श में मग्न होकर तथा हथिनी के प्रति आकृष्ट हाथी काम-गुणों (भावों) में आसक्त होकर विनाश को प्राप्त होते हैं।"

"जो अमनोज्ञ रूपों, शब्दों, गन्धों, रसों, स्पर्शों और भावों में तीव्र द्वेष

Scanned by CamScanner

करता है, वह अपने दुर्दम द्वेष से उसी क्षण दुःख को प्राप्त करता है। वे रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और भाव उसका कोई अपराध नहीं करते।"[1]

तैजस शरीर

तैजस शरीर वह सूक्ष्म शरीर है, जो पूरे स्थूल शरीर में फैला हुआ होता है और पूरे शरीर को ऊर्जा देता है। शरीर-विज्ञान के अनुसार हर कोशिका में ऊर्जा का निर्माण होता है और अध्यात्म के अनुसार चेतना के असंख्य प्रदेशों में प्राण व्याप्त है।

कार्मण शरीर

कार्मण शरीर सूक्ष्मतम माना गया है। अध्यात्म के अनुसार ज्ञान, दृष्टि, संवेदनशीलता, आसक्ति, शरीर-सौष्ठव, बाह्य परिवेश, विघ्न-बाधाएं और जीवन की अवधि आदि सभी का निर्धारण कार्मण शरीर में होता है। प्रेक्षा का प्रयोग एक पुरुषार्थ है, जो कर्मों के प्रभाव को नष्ट कर सकता है। कार्मण शरीर का शरीर-विज्ञान में संवादी-तंत्र है अन्तःस्रावी ग्रंथि-तंत्र। इस प्रकार प्रतीत होता है कि ग्रन्थि-तंत्र के स्रावों और कर्मस्रावों में समानता है। हमारी कोशिकाओं में स्थित गुण-सूत्र (Chromosomes) और जिन्स (Genes) ग्रन्थियों को प्रभावित करने वाले हैं। कर्म-शास्त्रीय दृष्टि से नाम-कर्म और गुण-सूत्र व जिन्स में बहुत ही साम्य नजर आता है।

शरीर-प्रेक्षा द्वारा प्रत्येक कोशिका की प्रेक्षा करके हम न सिर्फ अपनी ऊर्जा के व्यय को रोकते हैं, बल्कि कार्मण शरीर को भी प्रभावित करते हैं। पहले हम गहराई तक भीतर चित्त को ले जाकर औदारिक शरीर को देखते हैं। हमें जिन स्पन्दनों का अनुभव होता है, वे होते हैं परिवहन-तन्त्र के और रासायनिक परिवर्तन के जब और गहराई में जाते हैं तो हम कोशिकाओं के भीतर ऊर्जा का अनुभव करते हैं। गुण-सूत्र और जिन्स के कार्यों के प्रभाव हमारे अनुभव में आते हैं।

शरीर-प्रेक्षा में हमारा ज्ञान और दृष्टि का आवरण हटता है। हम अपने आप को और शरीर को नये-नये पहलुओं से जानते और देखते हैं। संवेदनशीलता नई दृष्टि के साथ विकसित होती है।

प्रयोजन

आत्म-दर्शन की प्रक्रिया

शरीर हमारी आत्मा है। जब तक उसमें प्राण-शक्ति का संचार है तब

१. उत्तराध्ययन, ३२/२४, २५, ३७, ३८, ५०, ५१, ६३, ६४, ७६, ७७, ८९, ९०।

Scanned by CamScanner

तक शरीर को सर्वथा अनात्मा नहीं कह सकते। अंगुली इसलिए हिलती है कि वह आत्मा है, शरीर में आत्मा के असंख्यात प्रदेश फैले हुए हैं।

आत्म-दर्शन का पहला प्रयोग है—शरीर को देखना।

शरीर को हम तब देख सकते है, जब शरीर-प्रेक्षा का अभ्यास करें, बाहर और भीतर चित्त को टिकायें, एकाग्र करें। शरीर के भीतर जो प्राण के प्रकंपन हो रहे हैं, जो रसायन काम कर रहे हैं, विद्युत् काम कर रही है, उसे देखें। हमारे शरीर की "कैमेस्ट्री" अलग है, अलग ही काम कर रही है। उन सारे परिवर्तनों को जब तक हम नहीं देख पाते, तब तक आत्म-दर्शन की बात नहीं होती।

आत्मा के शुद्ध स्वरूप की यात्रा का पहला प्रस्थान है—श्वास-दर्शन। दूसरा प्रस्थान है—शरीर-दर्शन यानी शरीर-प्रेक्षा।

शरीर-प्रेक्षा की यह प्रक्रिया अन्तर्मुख होने की प्रक्रिया है। सामान्यतः बाहर की ओर प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा को अन्तर की ओर प्रवाहित करने का प्रथम साधन स्थूल शरीर है।

स्थूल शरीर के भीतर तैजस और कार्मण—ये दो सूक्ष्म शरीर हैं। उनके भीतर आत्मा है। शरीर की क्रियाओं और संवेदनों को देखने का अभ्यास करने वाला क्रमशः तैजस और कार्मण-शरीर को देखने लग जाता है। शरीर-प्रेक्षा के दृढ़ अभ्यास और मन में सुशिक्षित होने पर शरीर में प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा का साक्षात्कार होने लग जाता है।

निष्पत्तियां

प्राण का संचालन : रोग-प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास : शरीर का कायाकल्प

शरीर-प्रेक्षा का महत्त्वपूर्ण परिणाम है—प्राण-प्रवाह का संतुलन। शरीर-प्रेक्षा आध्यात्मिक प्रक्रिया है, साथ-साथ यह मानसिक और शारीरिक प्रक्रिया भी है। स्वास्थ्य के लिए भी बहुत बड़ी चिकित्सा है—प्राण-चिकित्सा। शरीर-प्रेक्षा करने वाला केवल आध्यात्मिक प्रयोग ही नहीं कर रहा है, साथ-साथ में प्राण-चिकित्सा का प्रयोग भी कर रहा है, बीमारियों की चिकित्सा भी कर रहा है।

यदि प्राण-शक्ति का संतुलन बना रहे, तो कोई बीमार नहीं हो सकता। असंतुलन ही मनुष्य को बीमार बना रहा है। कहीं प्राण ज्यादा हो गया और कहीं कम हो गया, संतुलन बिगड़ गया। पूरे शरीर में प्राण-धारा

Scanned by CamScanner

का एक संतुलन होना चाहिए। शरीर में विद्युत् का प्रवाह संतुलित रहना चाहिए। वह संतुलन बिगड़ा और आदमी बीमार बन गया। प्रेक्षा करने वाला पूरे शरीर को देखता है–सिर से पैर तक देखता है। देखने का मतलब है, जहां चित्त जाता है वहां प्राण जाता है। चित्त और प्राण दोनों साथ-साथ जाते हैं। चित्त केन्द्रित हुआ, प्राण को उसके साथ जाना ही होगा। प्राण चित्त का अनुचारी है, अनुगामी है। पूरे शरीर में प्राण की यात्रा होती है। जो संतुलन बिगड़ा हुआ होता है, वह संतुलन फिर ठीक हो जाता है। परिणाम-स्वरूप जहां चेतना पर आया हुआ आवरण दूर होता है, वहां साथ ही प्राण-शक्ति, ज्ञान-तन्तुओं एवं कर्म-तन्तुओं के पर्याप्त उपयोग तथा मांसपेशियों व रक्त-संचार (Blood Circulation) की क्षमता में संतुलन के माध्यम से अभीष्ट मानसिक एवं शारीरिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

शरीर में रोग न होने देने का दूसरा उपाय है–रोग-प्रतिरोधक शक्ति का विकास। जब रोग-प्रतिरोधक शक्ति प्रबल होती है, तब किसी भी प्रकार के रोग के कीटाणु आक्रमण नहीं कर सकते। वे आते हैं और पराजित होकर भाग जाते हैं। जिस व्यक्ति की प्रतिरोधात्मक शक्ति मजबूत है उसे उसे कीटाणु सताने का प्रयत्न करते हैं, पर सता नहीं पाते। हम शरीर-प्रेक्षा के द्वारा रोग-प्रतिरोधक शक्ति को सक्षम बनाते हैं, उसकी एक मजबूत दीवार खड़ी करते हैं जिससे कि कोई आक्रमण न कर सके।

शरीर-प्रेक्षा की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है–चेतना के साथ जुड़ी हुई आस्था का निर्माण। उस आस्था के आधार पर संचालित होने वाली नई आदतों का निर्माण। शरीर-प्रेक्षा उत्सर्जन-तन्त्र को सक्रिय एवं सक्षम बनाए रखने में सहायक होती है, जिससे कि शरीर का विष सहजतया विसर्जित हो जाए।

शरीर-प्रेक्षा के द्वारा रक्त-संचार-तंत्र ठीक काम करने लग जाता है, रक्त-संचार में होने वाले अवरोध दूर हो जाते हैं, धमनियों के अवरोध दूर होते हैं, रक्त-चाप सन्तुलित होता है। हृदय को अतिरिक्त श्रम नहीं करना पड़ता और वह लम्बे समय तक कार्यक्षम हो सकता है।

शरीर-प्रेक्षा का प्रभाव पाचन-तन्त्र पर पड़ने से आमाशय, यकृत, आंतें आदि सभी अवयवों की कार्य-प्रणाली ठीक चलने लगती है। इससे प्रत्येक क़ोशिका को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्त्व मिल सकते हैं। प्रत्येक मांसपेशी अपना कार्य सुचारु रूप से संचालित करने के लिए उद्यत रह सकती है। सभी उदर-संबंधी रोगों का स्वतः निवारण हो जाता है।

Scanned by CamScanner

शरीर-प्रेक्षा का सीधा प्रभाव नाडी-तंत्र पर पड़ता है। हमारे मस्तिष्क और मन से संबंधित सारी गडबड़ियां नाडी-तंत्र के अवरोधों और विकृतियों के कारण पैदा होती हैं। जब नाड़ी-तंत्र शुद्ध होता है, तो सारी मानसिक बीमारियां (आधियां) स्वतः समाहित हो जाती हैं।

अभ्यास

१. मानव-शरीर में नाड़ी-तन्त्र, परिसंचरण-तन्त्र, श्वसन-तन्त्र, पाचन-तन्त्र तथा विसर्जन-तन्त्र का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

२. शरीर-प्रेक्षा का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए और जैन-दर्शनोक्त तैजस शरीर और कार्मण शरीर का परिचय दीजिए।

३. आत्मा के दर्शन में शरीर-प्रेक्षा का क्या उपयोग है? स्पष्ट कीजिए।

४. शरीर-प्रेक्षा से मानसिक एवं शारीरिक चिकित्सा में जो लाभ होते हैं, उन्हें स्पष्टतया समझाइए।

Scanned by CamScanner

: ५ :

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

प्रत्येक प्राणी के जीवन के अस्तित्व तथा शारीरिक क्रियाओं का संचालन इस बात पर आधारित है कि उसके शरीर में अनेक तन्त्र एक "टीम" (मिलजुल कर काम करने वाले दल) के रूप में विविध क्रिया-कलापों को निष्पादित करे। एक ही प्रकार के कार्यों की श्रृंखला को निष्पादित करने वाले अनेक अवयवों के समूह को "तन्त्र" कहा जाता है।

नाड़ी-ग्रंथि-तंत्र (Neuro-endocrine System)

नाड़ी-तन्त्र और अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र—ये दो शरीर के प्रमुख नियंत्रक एवं संयोजक हैं। वे शरीर के अन्य सभी तन्त्रों का नियोजन एवं संयोजन करते हैं तथा उनके माध्यम से समग्र शरीर के क्रिया-कलापों का विलक्षण पारस्परिक अनुबन्ध है और दोनों मिलकर सर्वांगीण रूप से शरीर-तन्त्र को संचालित करते रहते हैं। इन दोनों का पारस्परिक अनुबन्ध इतना विलक्षण है कि नाड़ी-तन्त्र और ग्रन्थि-तंत्रों के अवयवों को एक अखण्ड तन्त्र के ही अंगरूप माना जाने लगा है, जिसे नाड़ी-ग्रन्थि-तन्त्र (Neuro-endocrine System) की संज्ञा दी गई है। अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र अपने प्रभावों का निष्पादन रासायनिक नियंत्रकों के स्रावों (हार्मोन) के माध्यम से करता है। प्राणी की वृद्धि और विकास, काम-प्रवृत्तियां, गर्भाधान और जनन, चयापचय आदि महत्वपूर्ण कार्यों का नियमन करने का दायित्व इन स्रावों पर होता है। ये हार्मोन न केवल प्रत्येक शारीरिक क्रिया में भाग लेते हैं, अपितु व्यक्ति की मानसिक दशाओं, स्वभाव और व्यवहार पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। ये हार्मोन मनुष्य के भीतरी आवेशों और आवेगों तथा वृत्तियों और वासनाओं के अत्यन्त शक्तिशाली व प्रेरक बलों को उत्पन्न करने वाले प्रमुख स्रोत हैं। वृत्तियां आदि न केवल कामनाओं को उत्पन्न करती हैं अपितु उनकी पूर्ति के अनुरूप प्रवृत्ति के लिए व्यक्ति को बाध्य करती हैं। प्रेम, घृणा, भय आदि भाव अन्तःस्रावी स्रोतों द्वारा जनित आवेग हैं।

Scanned by CamScanner

बहुत लम्बे समय तक यह अवधारणा रही कि मस्तिष्क ही मनुष्य की चैतन्य-ऊर्जा का स्रोत है तथा वही समस्त भावावेगों की उत्पत्ति स्थान है। अन्तःस्रावी ग्रन्थि-शास्त्र (विज्ञान की यह शाखा, जो अन्तःस्रावी ग्रन्थि-संस्थान का अध्ययन करती है) के क्षेत्र में पिछले वर्षों में हुई उल्लेखनीय प्रगति ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि हमारे सारे भावावेश और भावावेग—वृत्तियां और वासनाएं हमारे अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र की ही अभिव्यक्तियां हैं।

मनुष्य की जितनी आदतें बनती हैं, उनका उद्गम-स्थान है—ग्रन्थितन्त्र। नाड़ी-तंत्र में हमारी सारी वृत्तियां अभिव्यक्त होती हैं, अनुभव में आती हैं और फिर व्यवहार में उतरती हैं। व्यवहार, अनुभव या अभिव्यक्तिकरण—ये सब नाड़ी-तन्त्र के काम हैं, किन्तु आदतों का जन्म, आदतों की उत्पत्ति ग्रन्थि-तन्त्र में होती है। वे ही आदतें मस्तिष्क के पास पहुंचती हैं, अभिव्यक्ति होती हैं और व्यवहार में उतरती हैं।[१]

अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र और नाड़ी-तन्त्र का अन्योन्य सम्बन्ध निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो सकता है—किसी युवक के सामने कोई सुन्दर युवती उपस्थित होती है। उसके सामने आते ही उसके नाड़ी-तंत्रीय संवेदन (चाक्षुष संवेदन) विद्युत् आवेग के द्वारा उसके मस्तिष्क में रहे हुए केन्द्र—हाइपोथेलेमस (अवचेतक) के अमुक भाग को उत्तेजित करेंगे, उसके परिणामस्वरूप हाइपोथेलेमस पिच्यूटरी ग्रन्थि के अग्रभाग को सक्रिय करेगा। अब पिच्यूटरी की बारी आती है—वह अपनी ओर से काम-ग्रन्थियों (गोनाड्स) को गोनोडोट्रोफीन नामक हार्मोन भेजकर उन्हें सक्रिय करती है। तब उस युवक की काम-ग्रन्थियां अपने लैंगिक हार्मोन—एन्ड्रोजन का स्राव करती हैं, जो रक्त के माध्यम से मस्तिष्क में पहुंचकर नाड़ी-तन्त्र को प्रभावित करता है। उसके फलस्वरूप हृदय और नब्ज की गति में वृद्धि हो जाती है, रक्तचाप बढ़ जाता है, मांसपेशियों में तनाव पैदा हो जाता है और काम-भावना उद्दीप्त हो जाती है।

---

१. जब किसी पुरुष को समारोह या पार्टी में शामिल होना होता है, जहां महिलाओं की उपस्थिति भी होती है, तब उस स्थल पर पहुंचने पर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को प्रभाव पूर्ण बनाने के लिए कुछ क्रियाएं करता है, जैसे अपनी वेशभूषा को थोड़ा संवार लेना, टाई को ठीक-ठाक कर लेना, बालों को कंघी या हाथ से संवार लेना आदि। ये क्रियाएं व्यक्ति प्रायः ओटोमेटिक (अनालोचित या यंत्रवत्) कर लेता है। इसमें चेतन मन का प्रायः कोई भाग नहीं होता। वस्तुतः यह सारी क्रिया पिच्यूटरी द्वारा स्रावित गोनाडोट्रोफीन नामक हार्मोन के कारण होती है।

Scanned by CamScanner

इस तन्त्र के हार्मोनों के स्रावों का नियमन अधिकांशतः पिच्यूटरी द्वारा होता है। पिच्यूटरी द्वारा स्रावित विविध प्रकार के हार्मोन रक्त-प्रवाह के माध्यम से अन्य ग्रन्थियों तक पहुंच कर उन्हें एक निश्चित प्रकार के हार्मोन को निश्चित मात्रा में स्रावित करने के लिए उत्तेजित करते हैं। ये स्राव पुनः पिच्यूटरी तक पहुचते हैं और यदि उत्पादन आवश्यकता से अधिक हो, तो उत्तेजक रसायनों का निरोध किया जाता है। इस प्रकार फीड-बैक पद्धति और रासायनिक अन्तःसंचार के माध्यम से पिच्यूटरी अन्य ग्रन्थियों के स्रावों का नियमन करती है।

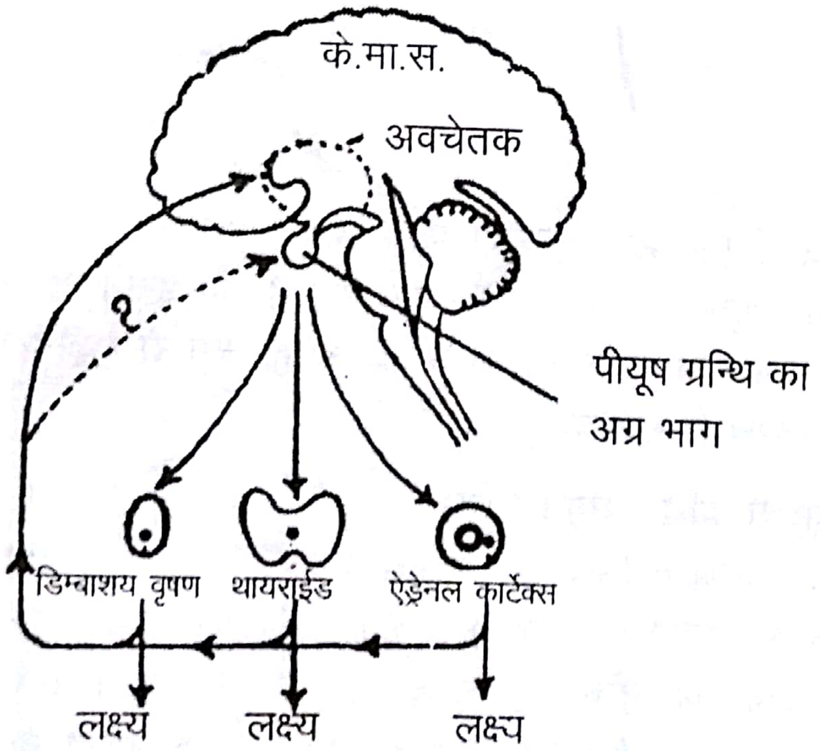

ग्रन्थियां : स्थान और कार्य

अन्तःस्रावी तन्त्र की प्रत्येक ग्रन्थि का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

१. पाइनियल ग्रन्थि

इस ग्रन्थि का स्थान मस्तक के मध्य में होता है। यह परिणाम में बहुत छोटी होती है—लगभग गेहूं के दाने जितनी। पिच्यूटरी ग्रन्थि के पीछे की ओर थोड़ी-सी ऊपर यह ग्रन्थि मस्तिष्क के निचले हिस्से में एक छोटी सी गुफा के आकार वाले छिद्र में छिपी हुई रहती है। इस ग्रन्थि का एक महत्वपूर्ण कार्य गोनाड्स (काम-ग्रन्थियों) के स्रावों का निरोध करना है। इस प्रकार यह ग्रन्थि शैशवावस्था में व्यक्ति की काम-वृत्ति का नियमन कर उसे यौवन-प्राप्ति तक उससे मुक्त बनाए रखती है। यौवन-प्राप्ति के बाद

Scanned by CamScanner

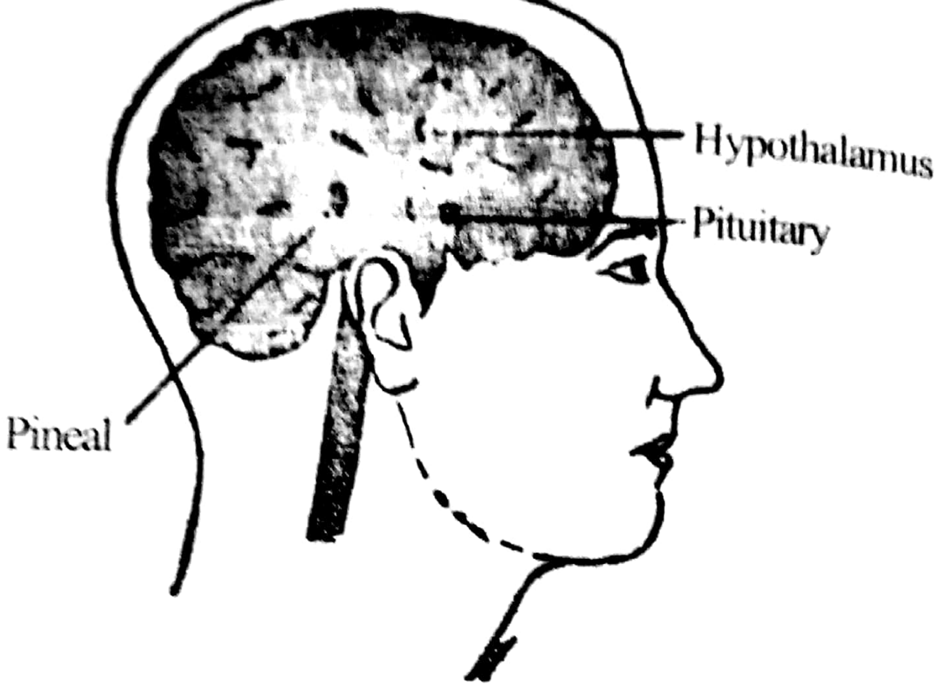

यह ग्रन्थि यौवनोचित वयस्कता को लाने में सहायक बनती है। प्रयोगों के आधार पर कुछ ऐसे प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं कि इसके स्राव पिच्यूटरी के ACTH नामक स्रोत का निरोध कर अप्रत्यक्ष रूप से एड्रीनल के स्रावों का नियमन करने में सहायक होते हैं।

२. पिच्यूटरी ग्रंथि (पीयूष ग्रंथि)

यह ग्रन्थि मस्तिष्क के लगभग मध्य में स्थित होती है। उसका स्थान मस्तिष्क के निचले छोर पर तथा नाक के मूल भाग के पीछे की ओर होता है। मस्तिष्क के नीचे एक छोटी-सी प्याली या पालने में यह ग्रन्थि लटकती-सी रहती है। यह मटर के दाने जितनी होती है।

इस ग्रन्थि के दो खण्ड हैं—१. अग्र खण्ड, २. पृष्ठ खण्ड। अग्र खंड का हिस्सा सम्पूर्ण अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र का नायक या अग्रणी माना जाता है। यह हिस्सा कम से कम नव प्रकार के विभिन्न हार्मोनों का स्राव करता है और जीवन के अनेक महत्वपूर्ण क्रिया-कलापों पर अपना प्रभाव डालता है। इसके प्रभाव से शरीर का कोई भी भाग अछूता नहीं है। थाइराइड, एड्रीनल कार्टेक्स तथा गोनाड्स को प्रेरित/निरोध करने वाले हार्मोनों के स्राव पिच्यूटरी के अग्र भाग से होते हैं।

पिच्यूटरी के पृष्ठ भाग से निकलने वाले स्राव वस्तुतः तो उसके निकटवर्ती अवचेतक (हायपोथेलेमस) में उत्पन्न होते हैं। वहां के पृष्ठ भाग में आते हैं, संगृहीत होते हैं और शायद बहुत परिवर्तन के साथ आवश्यकतानुसार शरीर के विभिन्न भागों तक पहुचते हैं।

Scanned by CamScanner

३. थाइरॉइड ग्रंथि

थाइराइड ग्रन्थि दो पिण्डों से बनी हुई है। स्वर-यंत्र के समीप श्वासनली के ऊपर के छोर पर यह ग्रन्थि आसीन है। इन दो पिण्डों को जोड़ने वाली एक संकड़ी पट्टी होती है, जो टेंटुआ (कण्ठमणि) के ठीक नीचे होती है। इस ग्रन्थि को अत्यधिक विपुल मात्रा में रक्त की आपूर्ति की जाती है। उदाहरणार्थ—गुर्दे की अपेक्षा इसे चार गुना अधिक रक्त मिलता है।

इस ग्रन्थि के मुख्य हार्मोन का नाम "थाइरोक्साइन" है। विपुल मात्रा में आयोडीन के अतिरिक्त लोहा, आर्सेनिक व फासफोरस की कुछ मात्रा इसमें होती है। यह नाड़ियों तथा मस्तिष्कीय ऊतकों के निर्माण में काम आता है। थाइराइड ग्रन्थि मूलतः शरीर में ऊर्जा उत्पादन का अवयव है। चयापचय की मात्रा तथा व्यक्ति में सक्रियता की तीव्रता को निर्धारित

पेराथाइरॉइड, थाइरॉइड और थाइमस ग्रन्थियां एवं स्थान

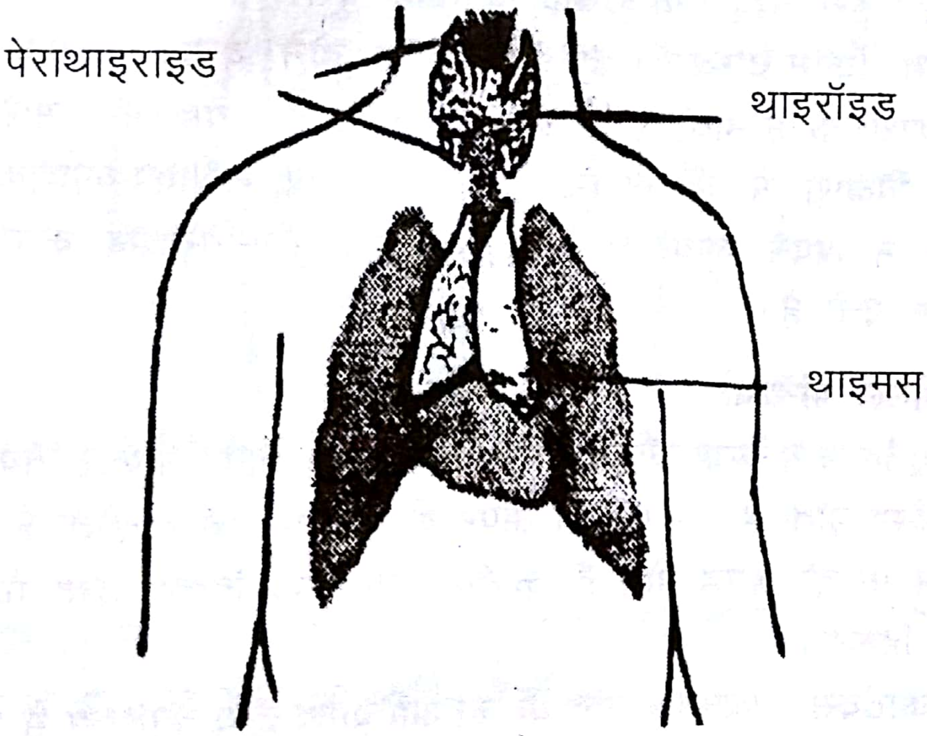

करने का मुख्य दायित्व इस ग्रन्थि पर है। पाचन क्रिया में भी यह ग्रन्थि सहायक होती है। इसके स्राव शरीर में जमा होने वाले विषों का प्रतिकार करते हैं। मस्तिष्कीय संतुलन को बनाए रखने का दायित्व भी इस पर है। शरीर में होने वाली वसा, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की चयापचय-क्रिया को नियंत्रित करने मे इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। गलगण्ड की बीमारी की रोकथाम या निवारण करने के लिए यह ग्रन्थि उत्तरदायी है।

Scanned by CamScanner

४. पेराथाइरॉइड

पेराथाइरॉइड की छोटी-छोटी अण्डाकार ग्रन्थियां होती हैं। ये थाइरॉइड ग्रन्थि के दोनों पिण्डों में ऊपर-नीचे जटित-सी होती हैं। इन ग्रन्थियों के हार्मोन 'पेराथोर्मोन' कहलाते हैं। इसके प्रभाव से शरीर के केल्शियम की मात्रा निश्चित होती है।

५. थाइमस ग्रन्थि

यह ग्रंथि दोनों फेफड़ों के बीच में थोड़ी-सी ऊपर की ओर होती है। शैशवावस्था के प्रारंभिक दो-तीन वर्षों में इस ग्रन्थि की वृद्धि बहुत तेज गति से होती है, फिर उसके विकास में मन्दता आ जाती है तथा ३० वर्ष की आयु के पश्चात् वह धीरे-धीरे सिकुड़ जाती है, फिर भी स्राव पैदा करने वाली उसकी कुछ कोशिकाएं आजीवन बनी रहती हैं।

यह शैशवावस्था में बच्चे के शारीरिक विकास का नियमन करती है तथा १४ वर्ष की आयु तक इस विकास का अधिकतर क्रम समाप्त हो जाता है। इस आयु तक उसका कार्य है—दूसरी ग्रन्थियों को—विशेषतया गोनाड्स (काम-ग्रन्थियों) को सक्रिय न होने देना। जिसके कारण यौवनावस्था के उन्मादों का निरोध होता रहता है। यह ग्रन्थि मस्तिष्क के सम्यग् विकास में भी सहायक होती है तथा लसिका-कोशिकाओं के विकास में अपने स्रावों द्वारा सहयोग कर रोग-निरोधक कार्यवाही में योगदान देती है।

६. एड्रीनल ग्रन्थियां

एड्रीनल ग्रन्थियां जोड़े के रूप में होती हैं। उनका आकार त्रिकोणाकार टोपी जैसा होता है। ये गुर्दे के ऊपर के भाग पर स्थित होती हैं। प्रत्येक एड्रीनल के दो खण्ड होते हैं—कार्टेक्स या बाह्य हिस्सा तथा मेडूला या भीतरी हिस्सा।

कार्टेक्स : एड्रीनल ग्रन्थियों का अधिकांश द्रव्य कार्टेक्स में होता है। इन ग्रन्थियों से गुजरने वाले रक्त की मात्रा इनके परिमाण के अनुपात में बहुत अधिक है। तीन दर्जन से भी अधिक प्रकार के स्रावों को पैदा करने वाली ये ग्रन्थियां अन्य सभी ग्रन्थियों की अपेक्षा संभवतः सबसे अधिक संख्या में स्रावों का उत्पादन करती हैं। इनमें से अनेक स्राव जीवन के लिए अनिवार्य होते हैं। वे स्राव मस्तिष्क तथा प्रजनन अवयवों के स्वस्थ विकास को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इनसे मानसिक

Scanned by CamScanner

एकाग्रता तथा शारीरिक सहनशीलता का विकास भी होता है। इन स्रावों के प्रभाव से शरीर की स्नायविक तथा मांसपेशीय संरचना स्वस्थ और बलवान होती है।

मेडूला : एड्रीनल-मेडूला का समस्त क्रिया-कलाप अनुकंपी नाड़ी-तंत्र के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। भय, दर्द, अधिक शीत का प्रकोप, अल्प रक्तचाप, भावात्मक उद्वेग आदि स्थितियां 'एपीनेफ्रीन' (जिसे 'एड्रीनालीन' भी कहते हैं) और 'नोर-एपीनेफ्रीन' नामक हार्मोनों के स्रावों में निमित्त बनते हैं। उत्तेजना, क्रोध, भय आदि में बार-बार होने पर एड्रीनल ग्रन्थि के एड्रीनालीन संगृहीत करने वाले भण्डार रिक्त हो जाते हैं।

एड्रीनल, पेनक्रियाज, गोनाड्स ग्रन्थियां एवं उनका स्थान

एड्रीनालीन के अभाव में अनिर्णायकता, चिंतातुरता तथा थोड़ा-सा निमित्त पाते ही रोने की वृत्ति आदि लक्षण देखे जाते हैं।

७. गोनाड्स (काम-ग्रन्थियां)

स्त्रियों में मुख्य रूप से गोनाड्स का कार्य डिम्बाशय तथा पुरुषों में वृषण द्वारा किया जाता है। प्रजनन के लिए बीज पैदा करने के अतिरिक्त गोनाड्स अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रूप में भी कार्य करती हैं। गोनाड्स उन हार्मोनों का स्राव करते हैं जिनके द्वारा स्त्री, स्त्रीत्व प्राप्त करती है और उनमें स्त्रियोचित व्यक्तित्व बना रहता है। दूसरी ओर पुरुषों में इन

Scanned by CamScanner

अन्तःस्रावी हार्मोनों के द्वारा पुरुषत्व जागृत होता है, जिससे उनका पुरुष-रूप व्यक्तित्व बना रहता है। इन ग्रन्थियों के हार्मोन न केवल काम-वृत्ति पर अपितु शरीर के अन्यान्य अवयवों तथा उनके क्रिया-कलापों पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं।

'एस्ट्रोजन' और 'प्रोजेस्टेरोन' नामक दो हार्मोन स्त्रियों में ही होते हैं, जो स्त्री को पुरुष से भिन्न दिखाने वाले लक्षणों को पैदा करते हैं। पुरुष के लैंगिक हार्मोनों को 'एन्ड्रोजन' कहते हैं। 'टेस्ट्रोस्टेरोन', वृषणों द्वारा उत्पादित एन्ड्रोजनों में एक मुख्य हार्मोन है। स्त्रियों और पुरुषों–दोनों जातियों में पिच्यूटरी के हार्मोन गोनाड्स की क्रियाओं को नियन्त्रित करने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आध्यात्मिक स्वरूप

हमारा द्वैतात्मक अस्तित्व

आत्मवादी दर्शन हमें इस सत्य की अनुभूति कराता है कि हमारा अस्तित्व द्वैतात्मक है–दो तत्वों का संयोग है। एक है चेतन-तत्व, जीव, दूसरा है–अचेतन तत्व, शरीर। यह द्वैत तब तक बना रहता है जब तक चेतना का विशुद्धतम स्वरूप उपलब्ध नहीं हो जाता। द्वैतात्मक स्थिति में हमारे अभौतिक चैतन्यमय तत्त्व (आत्मा) को अपने सुख-दुःख के संवेदन के लिए तथा क्रियात्मक-प्रवृत्ति के लिए एक स्थूल शरीर से ही काम नहीं चलता, अपितु सूक्ष्म शरीरों की अपेक्षा भी बनी रहती है। हमारे व्यक्तित्व की व्यूह-रचना बहुत जटिल है। रचनाक्रम इस प्रकार बनता है–सम्पूर्ण व्यक्तित्व के केन्द्र में है–चैतन्य तत्त्व–द्रव्य आत्मा या मूल आत्मा। उस केन्द्र से बाहर परिधि में अतिसूक्ष्म शरीर यानी कार्मण शरीर है, जो कषाय के वलय को पैदा करता है। केन्द्र से चैतन्य तत्त्व के जो स्पन्दन निकलते हैं, वे कषायतन्त्र को पार कर बाहर आते हैं। वह है–अध्यवसाय का तन्त्र। यह स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर–तैजस शरीर के साथ सक्रिय होकर काम करता है।

इस प्रकार हमारे मौलिक मनोवेगों, पाशवी आवेगों एवं कामुकता पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए जो हमारे विवेक और प्रज्ञा को जगाता है और हमें उन पर प्रभुत्व प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करता है, वह हमारी सूक्ष्म चैतन्यशील आत्मा ही है।

Scanned by CamScanner

अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र

ज्यों ही हम अस्तित्व के द्वैत को स्वीकार करते हैं, हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि भौतिक (स्थूल) शरीर और अभौतिक (सूक्ष्म) आत्मा के बीच में परस्पर संचार-व्यवहार के लिए कोई संचार-माध्यम की आवश्यकता होगी। अर्थात् शरीर के भीतर ही कोई ऐसी अन्तर्निर्मित व्यवस्था होनी चाहिए, जिसके माध्यम से हमारा सूक्ष्म चेतन-तत्त्व अपनी शक्ति और प्रभुत्व को क्रियान्वित कर स्थूल भौतिक (शारीरिक) अवयवों–अस्थि, मांस और जैविक रसायनों का नियन्त्रण/नियमन कर सके। इस व्यवस्था में हमारी चेतना की अति सूक्ष्म और अमूर्त्त अभिव्यक्तियों के स्थूलीकरण की तथा अभौतिक आदेशों की भौतिक स्तर पर क्रियान्विति की क्षमता होनी चाहिए। यह आन्तरिक संचार-माध्यम और कोई नहीं, अपितु हमारे शरीर का अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र है जो हमारे अस्तित्व के दोनों स्तरों–सूक्ष्म चेतना तथा स्थूल भौतिक शरीर के बीच कम्प्यूटर या परिवर्तक (ट्रांसफार्मर) का कार्य करता है। इसके लिए वे हार्मोन नामक रासायनिक पदार्थों का उत्पादन एवं प्रसारण करता है।

चैतन्य-केन्द्र और ग्रन्थियां

दार्शनिक, वैज्ञानिक और चिकित्सक–सभी एकमत से यह बात कहते हैं कि व्यक्ति की भावधारा और मनोदशाओं के साथ इन अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का गहरा सम्बन्ध है।

डॉ॰ एम॰ डब्ल्यू॰ काप (Kapp), एम॰ डी॰, ने अपनी पुस्तक "Glands–Our Invisible Guardians" में लिखा है–"हमारे भीतर जो ग्रन्थियां हैं, वे क्रोध, कलह, ईर्ष्या, भय, द्वेष आदि के कारण विकृत बनती हैं। जब ये अनिष्ट भावनाएं जागती हैं, तब एड्रीनल ग्लैण्ड को अतिरिक्त काम करना पड़ता है। वह थक जाती है। और-और ग्रन्थियां भी अतिश्रम से थक कर श्लथ हो जाती हैं।"

जब-जब हमारे संस्कार के कारण आवेग जागते हैं, तब-तब उन ग्रन्थियों पर अतिरिक्त भार पड़ता है। वे अस्वाभाविक रूप से काम करने लगती हैं। स्राव अधिक होता है। यह अतिरिक्त स्राव अनेक विकृतियां पैदा करता है। ग्रन्थियों की शक्ति क्षीण हो जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम इन आवेगों और भावनाओं को नियन्त्रित करें। आवेगों को समझदारी से समेटें और ग्रन्थियों पर अधिक भार न आने दें।

Scanned by CamScanner

आयुर्वेद और एक्यूपंक्चर

भगवती सूत्र में बतलाया गया है–'**सव्वेणं सव्वे।**' हमारी चेतना के असंख्य प्रदेश हैं। वे सब चैतन्य केन्द्र हैं। किन्तु कुछ स्थान ऐसे हैं, जहां चैतन्य दूसरे स्थानों की अपेक्षा अधिक सघन होता है। विज्ञान की भाषा में हमारा पूरा शरीर विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (Electromagnetic Field) है। किन्तु कुछ विशेष स्थानों में विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानों की तुलना में अनेक गुनी अधिक होती है। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रियां, अन्तःस्रावी ग्रन्थियां ऐसे केन्द्र हैं। आयुर्वेद की भाषा में इन चैतन्य-केन्द्रों को मर्मस्थान कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यों ने ऐसे १०७ मर्मस्थान बताए हैं। इन मर्मस्थानों में प्राण का केन्द्रीकरण होता है। ये रहस्य के स्थान हैं। यहां चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। प्रेक्षा-ध्यान के चैतन्य-केन्द्र और आयुर्वेद के मर्मस्थानों में स्थान की दृष्टि से और महत्त्व की दृष्टि से अद्भुत समानता है।

चैतन्य-केन्द्र स्थान और भाग

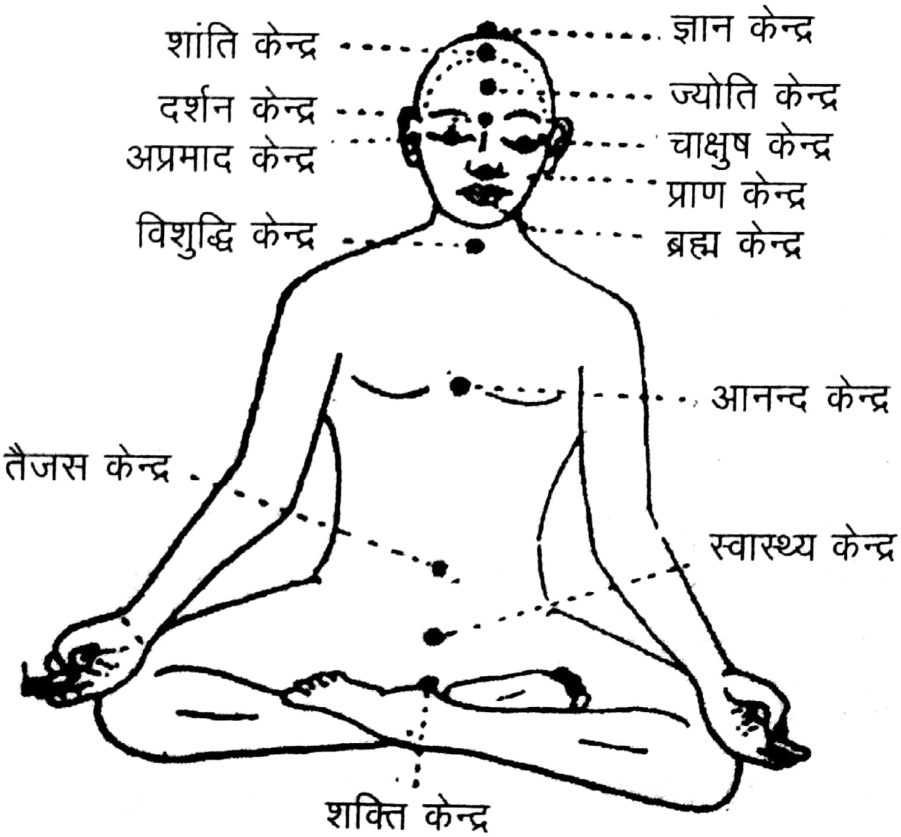

एक्यूपंक्चर के चिकित्सकों ने हमारे शरीर में ऐसे ७०० से अधिक केन्द्र खोज निकाले हैं, जिन्हें सूई द्वारा उत्तेजित करने पर अनेक प्रकार के रोगों की चिकित्सा की जाती है, अनेक असाध्य रोगों का उपचार किया जाता है। एक्यूपंक्चर और एक्यूप्रेसर में माना गया है–जो केन्द्र हमारे

Scanned by CamScanner

मस्तिष्क में है, वे हमारे अंगूठे में भी हैं। ये केन्द्र एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार मर्मस्थान, एक्यूपंक्चर के पोइंट्स, अन्तःस्रावी ग्रन्थियां—ये सब चैतन्य-केन्द्र से सम्बद्ध और प्रभावित हैं।

चैतन्य-केन्द्र सब अवयवों में सक्रियता पैदा करने वाले हैं। ये इन्द्रियों को भी संचालित करते हैं और मन को भी संचालित करते हैं। उनकी क्रियाओं को संतुलित करना साधना का मुख्य अंग है। यह कार्य चैतन्य-केन्द्र की प्रेक्षा द्वारा किया जा सकता है।

ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र

हम इस दृश्य शरीर को दो मुख्य केन्द्रों में विभाजित कर सकते हैं—ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र। नाभि से ऊपर मस्तिष्क तक का स्थान ज्ञानकेन्द्र है—चेतना-केन्द्र है और नाभि से नीचे का स्थान कामकेन्द्र है। हमारी चेतना इन दो वृत्तियों के आसपास उलझी रहती है। जहां चेतना ज्यादा उलझी रहती है, वहां चेतना का प्रवाह भी अधिक हो जाता है। ऊर्जा का मुख्य केन्द्र कामकेन्द्र है। सारी चेतना इसी के आसपास बिखरी पड़ी है। ज्ञानकेन्द्र में ऊर्जा बहुत कम है, क्योंकि आज के मनुष्य की मौलिक वृत्ति है 'काम' और इसलिए उसकी सारी चेतना, सारी ऊर्जा वहीं सिमटी पड़ी है। उसका ध्यान उधर ही ज्यादा जाता है। मानसशास्त्री कहते हैं—"मनुष्य में काम का जितना तनाव होता है, उतना और किसी वृत्ति का नहीं होता। भय का तनाव कभी-कभी होता है। क्रोध का तनाव कभी-कभी होता है। ईर्ष्या और मान का तनाव कभी-कभी होता है। इसी प्रकार अन्य आवेगों का तनाव भी कभी-कभी होता है। किन्तु काम का तनाव सबसे ज्यादा होता है, सघन होता है। उसकी जड़ें बहुत गहरे में हैं।" इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृष्ण-लेश्या[1], नील लेश्या और कापोतलेश्या—इन तीनों अप्रशस्त या अधर्म लेश्याओं का केन्द्र भी यहीं होना चाहिए और यथार्थ में यही है। हमारी प्रत्येक वृत्ति और उसकी अभिव्यक्ति का केन्द्र इसी स्थूल शरीर में होगा। इन तीन अधर्म लेश्याओं की अभिव्यक्ति का केन्द्र कामकेन्द्र है। आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान के केन्द्र भी ये ही हैं। जब चेतना यहां रहती है, तब इष्ट का वियोग होने पर व्याकुलता उत्पन्न होती है, अनिष्ट का संयोग होने पर क्षोभ पैदा होता है, प्रियता, अप्रियता की अनुभूतियां उत्पन्न होती हैं। वेदना के आने पर

---

१. लेश्या के विषय में अगले प्रकरण में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

Scanned by CamScanner

व्याकुलता, वेदना को नष्ट करने की चेष्टाएं, क्रूरता, ईर्ष्या, घृणा आदि के स्पन्दन कामकेन्द्र के आसपास अनुभूत होते हैं। वे यहीं उभरते हैं। हमारे कामकेन्द्र की चेतना के आसपास ही वे स्पन्दन क्रियान्वित होते हैं।

चेतना का आन्तरिक स्तर

मन चेतना का आन्तरिक स्तर नहीं है। चेतना की आन्तरिक स्तर है—आवेग, क्रोध, मान, ईर्ष्या, लालच आदि। हमारी वृत्तियां चेतना का आन्तरिक स्तर है। बीमारियां वहां से आती हैं। चरित्र भी वहीं से आता है। मस्तिष्क से चरित्र नहीं आता। चरित्र आता है—वृत्तियों से और वे आती हैं ग्रन्थि-तन्त्र से। ग्रन्थियों का स्थान मस्तिष्क नहीं है। आज तक यही माना जाता था कि मस्तिष्क हमारे शरीर का मुख्य अवयव है। इसी प्रकार हृदय और गुर्दे भी महत्वपूर्ण अवयव माने जाते हैं। किन्तु अब शरीर-शास्त्रीय नये आविष्कारों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अवयव है हमारा ग्रन्थि-तन्त्र—डक्ट्‌लेस ग्लैंड्स। आवेग, आवेश और भ्रष्ट आचरण—इन सबका निमित्त है—ग्रन्थि-तन्त्र। ग्रन्थि-तन्त्र को प्रभावित किये बिना आदमी को सच्चरित्र, प्रामाणिक नहीं बनाया जा सकता। भ्रष्टाचार को समाप्त करने और जीवन में सच्चाई लाने के लिए ग्रन्थि-तन्त्र को प्रभावित करना होगा। आदमी उपदेशों से सच्चरित्र नहीं होता, जितना वह ग्रन्थि-तन्त्र के स्रावों को बदलने से होता है। यह तथ्य आज अनुभव-सिद्ध हो चुका है।[1] यह नियम ९५ प्रतिशत लोगों पर लागू होता है। कुछेक व्यक्ति, जिनकी चेतना अत्यन्त प्रबुद्ध होती है, वे इसके अपवाद हो सकते हैं। सामान्य रूप से तो यही नियम है कि ग्रन्थि-तन्त्र को बदले बिना आदमी को नहीं बदला जा सकता।

---

१. लगभग प्रत्येक धर्म की उपासना-पद्धति में उपासना करते समय एक विशिष्ट प्रकार का आसन और मुद्रा का प्रयोग किया जाता है जिसमें व्यक्ति घुटनों के बल बैठकर हाथें को जोड़कर, मस्तक झुकाकर मस्तक से भूमि पर स्पर्श करता है। मुसलमान नमाज पढ़ते समय, ईसाई चर्च में प्रार्थना करते समय, वैदिक, बौद्धिक, जैन आदि देव-वन्दन या गुरु-वन्दन करते समय लगभग इसी आसन-मुद्रा का प्रयोग करते हैं। जब कमर को झुकाकर मस्तक को भूमि तक झुकाया जाता है, तब एड्रीनल ग्रन्थि में से अहंकार को पैदा करने वाले हार्मोनों का परिष्कार होता है, उपासक में नम्रता के भाव पैदा होते हैं। अति प्राचीन समय से सार्वभौम रूप में सर्वत्र यह प्रथा प्रचलित है। आसन, मुद्रा एवं भावना के संयुक्त प्रभाव से ग्रन्थियों के हार्मोनों को परिष्कृत करने का यह एक अच्छा उदाहरण है।

Scanned by CamScanner

वृत्ति, प्रवृत्ति; पुनरावृत्ति

कर्म की प्रेरणा-स्रोत है--वृत्ति। वृत्ति से प्रेरित होकर ही मनुष्य और पशु कर्म करते हैं। वृत्तियां अनेक हैं--आहार की वृत्ति, भय की वृत्ति, काम और परिग्रह की वृत्ति, क्रोध और मान की वृत्ति, माया और लोभ की वृत्ति। इन वृत्तियों से प्रेरित होकर ही प्राणी कर्म करता है। प्रत्येक कर्म के पीछे इनमें से किसी एक या अधिक वृत्तियों की प्रेरणा मिलेगी। वृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से पुनरावृत्ति--यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। वृत्ति जागी, प्रवृत्ति हुई।

हाथ से चांटा मारने के पीछे जो हमारी क्रोध की वृत्ति है, उसका शोधन करना है। हाथ का क्या शोधन होगा ? हाथ चलता ही रहेगा। चांटे मारने में हाथ नहीं चलेगा तो वह प्रणाम करने में चलेगा, भोजन करने में चलेगा। हाथ का शोधन नहीं करना है। कर्म, अकर्म तब बनता है जब वृत्ति का शोधन होता है। कर्म के साधनों का शोधन नहीं होता, कर्म की प्रेरणा का शोधन हो सकता है। पर कर्म की प्रेरणा का शोधन केवल मनुष्य ही कर सकता है, पशु नहीं कर सकता। यही मनुष्य और पशु के बीच की भेद-रेखा है। आदमी और पशु की परिभाषा हम इन शब्दों में कर सकते हैं--जो वृत्ति का शोधन नहीं कर सकता है, वह होता है पशु। पशु की पशुता चलती रहेगी; इसलिए कि उसमें वृत्ति-परिष्कार की कोई सम्भावना नहीं है। मनुष्य पशुता से ऊपर उठ सकता है क्योंकि उसमें वृत्ति-परिष्कार की क्षमता है।

मनुष्य की विलक्षण क्षमता

अनेक अर्थों में मनुष्य भी निःसन्देह एक 'प्राणी' है। वह अन्य सभी प्राणियों की तरह ही आहार-संज्ञा, भय-संज्ञा, मैथुन-संज्ञा और परिग्रह-संज्ञा वाला है, इसीलिए उसे भूख लगती है, वह भयभीत होता है, वह कामासक्त होता है और आक्रमण करता है। इस प्रकार भोजन करना, भोजन की सामग्री जुटाने के लिए प्रयत्न करना, स्व-संरक्षण के लिए लड़ाई करना तथा प्रजनन करना--इन सभी प्रवृत्तियों को मनुष्य भी अन्य सभी प्राणियों की तरह ही करता है, क्योंकि मनुष्य भी अन्य प्राणियों की तरह ही अपनी दैहिक आवश्यकताओं की अन्तःप्रेरणा से बाधित है। द्वेष, अनुराग, इच्छाओं, वासनाओं जैसी वृत्तियां उसकी प्रवृत्तियों पर उसी तरह हावी होता हैं, जिस प्रकार अन्य प्राणियों पर होती हैं। इन सब दृष्टियों से तो मनुष्य भी केवल एक 'प्राणी' ही है। पर, इन सबके बावजूद मनुष्य में कुछ ऐसी

Scanned by CamScanner

विलक्षणताएं हैं, जिनसे वह अन्य प्राणियों से नितान्त भिन्न और बहुत अर्थों में 'अद्वितीय' प्राणी है। मनुष्य की सबसे महान् विलक्षणता यह है कि उसकी चेतना अन्य प्राणियों की चेतना से अधिक विकसित है—वह 'विवेक चेतना' से युक्त है। मनुष्य ने मस्तिष्कीय विकास और प्रतिभा के क्षेत्र में अद्वितीय उपलब्धि की है और समग्र विश्व में पैदा होने वाले प्राणियों में उसने श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त किया है। यह इसलिए हुआ है कि केवल मनुष्य ही अपनी अन्तर्निहित युक्तिसंगत विचार-चेतना के द्वारा, जिसका कि मुख्य फल 'विज्ञान' है, अपने विकास के लिए उच्चतर मानदण्डों एवं मूल्यों का संस्थापन कर सकता है। मनुष्येतर प्राणियों में यौक्तिक मानस का अभाव होता है। उनमें केवल जिजीविषा और अपने तात्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको ढालने की क्षमता ही अन्तर्निहित होती है। वे (पशु-पक्षी वनस्पति आदि) जीव अपनी असंख्य पीढ़ियों से उसी प्रकार का जीवन बिता रहे हैं—उन्होंने कोई विकास नहीं किया है।

मनुष्य की विलक्षणताएं शरीर-विज्ञान से सम्बन्धित भी हैं और मनोविज्ञान से भी। उसकी शारीरिक विलक्षणताएं शायद यहां अप्रासंगिक होंगी। प्रस्तुत चर्चा के संदर्भ में मनुष्य की जिस विलक्षणता का हम उल्लेख करना चाहते हैं, वह है—उसकी 'प्रत्ययात्मक विमर्श' की क्षमता एवं विवेक चेतना। मनुष्य के मन के दो स्तर हैं—चेतन मन और अवचेतन मन। यह अवचेतन मन ही मनुष्य की वह चेतना है जो उसके भीतर सर्वाधिक प्रेरक बल रखती है। यही अन्तःस्रावी ग्रंथियों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। इन ग्रंथियों का कार्य है—हमारे भावावेशों को पैदा करना। चेतन मन में स्वयं कोई भावावेश उत्पन्न नहीं होता।

कर्मशास्त्रीय व्याख्या

आज के शरीर-शास्त्रियों ने शरीर में अवस्थित ग्रंथियों के विषय में बहुत सूक्ष्म विश्लेषण किया है। बौना होना, लम्बा होना, सुन्दर या असुन्दर होना, स्वस्थ या बीमार होना, बुद्धिमान या बुद्धिशून्य होना—सब इन ग्रंथियों के स्राव पर निर्भर है। ग्रन्थियों के स्राव इन सबको नियन्त्रित करते हैं। इस तथ्य को हम कर्म शास्त्रीय भाषा में समझें।

आठ कर्मों में एक कर्म है—नाम कर्म। उसके अनेक विभाग हैं। 'संस्थान नाम कर्म' के कारण मनुष्य लम्बा या बौना होता है। इस प्रकार सुन्दर-असुन्दर, सुस्वर वाला या दुःस्वर वाला आदि सब नाम कर्म की विभिन्न प्रकृतियों के कारण होता है। नाम कर्म का सूक्ष्म अध्ययन करने

Scanned by CamScanner

पर स्पष्ट हो जाता है कि हमारे शरीर का सारा निर्माण नाम कर्म के आधार पर होता है।

उपरोक्त कर्मशास्त्रीय विश्लेषण और शरीरशास्त्रीय विश्लेषण को मिलाकर देखें। दोनों में भाषा का अन्तर है, तथ्य का नहीं। शरीरशास्त्री 'हार्मोन्स' 'सिक्रीशन्स ऑफ ग्लैण्ड्स', 'ग्रन्थियों का स्राव' कहते हैं। कर्मशास्त्री 'कर्मों का रसविपाक अनुभाग बन्ध' कहते हैं।

योगशास्त्र और शरीरशास्त्र

हमारे शरीर में ग्रन्थियां हैं--चक्र हैं, कमल हैं। कमल जैसी चीज नहीं मिली, तो डॉक्टरों ने कहा—हमने सारे शरीर को चीरफाड़ कर देख डाला, अणु-अणु का विश्लेषण कर दिया, पर कहीं भी कमल नहीं मिला, कहीं चक्र दिखाई नहीं दिए। हां, डॉक्टरों को कुछ भी नहीं मिला। नाभि कमल हो या न हो, आज्ञा चक्र हो या न हो, विशुद्धि केन्द्र हो या न हो, किन्तु जो पाइनियल, पिच्यूटरी, थायरॉइड आदि ग्रन्थियां हैं, ग्लैंड्स हैं, उनको यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो योगशास्त्र और शरीरशास्त्र के प्रतिपादन में कोई विशेष भेद प्रतीत नहीं होगा।

आगे हम प्रत्येक चैतन्य-केन्द्र के कार्य तथा उसकी प्रेक्षा से होने वाले महत्वपूर्ण परिणाम आदि विषयों की चर्चा करेंगे।

प्रयोजन

विवेक-चेतना का विकास

प्रत्येक मनुष्य में विवेक-चेतना अन्तर्निहित होती है। इसका जागरण नहीं होता, तब तक मनुष्य अपने चेतन मन के द्वारा केवल बुद्धि और तर्क के आधार पर ही अपनी वृत्तियों की मांग पर विमर्श करता है। उसमें विवेक-चेतना को प्रयोग में नहीं लाता। वस्तुतः उसकी बौद्धिक और तार्किक शक्ति पर वृत्तियां इतनी अधिक हावी हो जाती हैं कि वह उसकी मांग के औचित्य-अनौचित्य का सही निर्णय करने में सक्षम नहीं होतीं। ऐसी स्थिति में उनका चेतन मन वृत्तियों की मांग को उचित ठहराने हेतु कोई न कोई तर्क या युक्ति ढूंढ निकालता है। इसलिए अपनी मौलिक मनोवृत्तियों के प्रेरक बलों पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए यह आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के उस विलक्षण वैशिष्ट्य को उजागर किया जाए जिसे 'विवेक-चेतना' और 'विवेक-पूर्ण तर्क' कहा जाता है और अन्त

Scanned by CamScanner

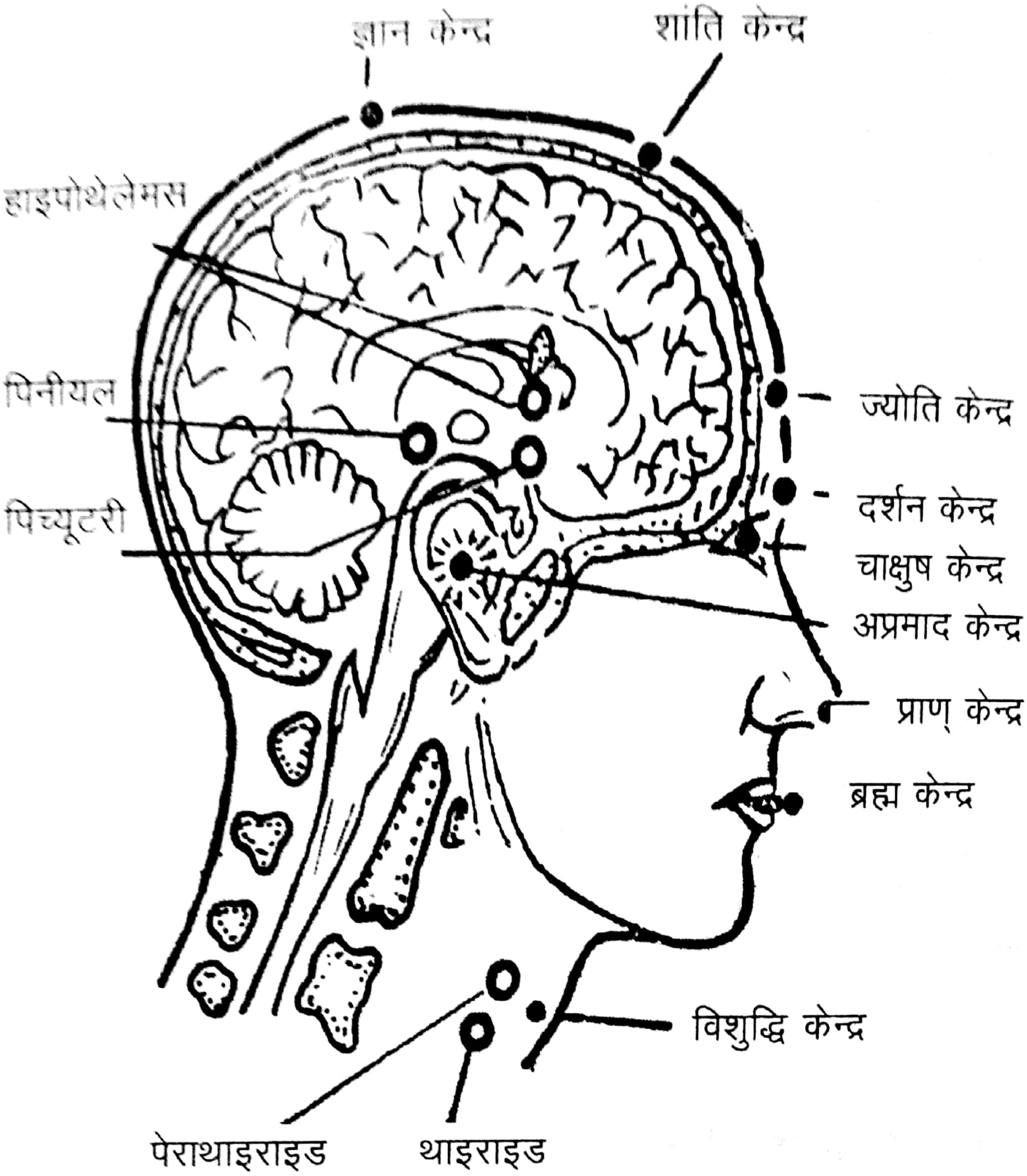

में शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक सभी प्रवृत्तियों पर विवेक-चेतना का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया जाए।

अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र का संतुलन

वृत्तियों के आवेगात्मक बलों के उद्दीपन या शमन करने की मूलभूत चाबी है—अन्तःस्रावी ग्रंथियां। इसलिए ये ही चैतन्य-केन्द्रों के संवादी केन्द्र हैं। अन्तःस्रावी तन्त्र का असन्तुलन मस्तिष्क को प्रभावित करता है और चिन्तन-धारा को दूषित या विकृत बनाता है। उदाहरणतः गोनाड्स की अधिक सक्रियता मन को विषय-वासना या भय के चिन्तन में लगाए रखेगी। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का अभ्यास अन्तःस्रावी तन्त्र के सन्तुलन को पुनः स्थापित कर व्यक्ति के विवेक-चेतना के विकास द्वारा चेतन मन की

Scanned by CamScanner

सम्यक् चिंतन-शक्ति को प्रबल बना सकता है और मौलिक मनोवृत्तियों के आवेगों को क्षीण कर सकता है।

हमारे शरीर में जितनी भी ग्रन्थियां हैं, वे सब अर्धचेतन मन हैं। यह मस्तिष्क को प्रभावित करता है, इसलिए मस्तिष्क से भी अधिक मूल्यवान् हैं। इन्हें हमें जागृत करना है। यदि इन्हें सही साधनों के द्वारा जागृत करते हैं, तो भय से मुक्ति मिलती है। भय से मुक्ति होने का अर्थ है—सारी बाधाओं से मुक्त होना। हम चैतन्य-केन्द्रों—ग्रन्थियों पर ध्यान करें। वे संतुलित होंगे। ज्यों-ज्यों हम उन केन्द्रों पर अधिक केन्द्रित होंगे, वे और संतुलित होते जाएंगे। उनके सन्तुलन से भय समाप्त होगा, आवेग समाप्त होंगे, सारी बाधाएं समाप्त होंगी, एक नया आयाम खुलेगा, नया आनन्द, नई स्फूर्ति, नया उल्लास प्राप्त होगा।

मनोविज्ञान मानता है कि जो बात हमारे स्थूल मन तक पहुंचती है, वह कारगर नहीं होती। उससे व्यक्ति का परिवर्तन नहीं हो सकता, तरंगातीत अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। जब हम दर्शन-केन्द्र पर ध्यान करते हैं, तब हमारा विचार, हमारा संकल्प अन्तर्मन तक पहुंच जाता है। वह संकल्प लेश्या-तंत्र और अध्यवसाय-तंत्र तक पहुंच जाता है। तरंगातीत अवस्था प्राप्त होती है, परिवर्तन घटित होने लगता है।

निष्पत्तियां

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा के तीन परिणाम

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा के द्वारा ये तीन काम हो सकते हैं। चैतन्य-केन्द्र निर्मल हो सकते हैं, आनन्द-केन्द्र जो सोया पड़ा है, मूर्च्छित है, वह जाग सकता है और शक्ति का संस्थान जो अवरुद्ध हो रहा है, विघ्न और बाधाओं से प्रताड़ित हो रहा है, वह फिर सक्रिय हो सकता है, उसकी ज्योति प्रज्वलित हो सकती है।

जब हम चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा करते हैं तब विद्युत् की धारा, प्राण की धारा वहां इतनी तेज हो जाती है कि जमा हुआ मैल साफ हो जाता है और वह विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र शुद्ध बन जाता है। निर्मलता आ जाती है और उस निर्मलता में से चैतन्य अभिव्यक्त हो सकता है, बाहर प्रकट हो सकता है। चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा से और अधिक प्राणधारा वहां इकट्ठी होती है और वे और अधिक निर्मल बन जाते हैं। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का महत्वपूर्ण परिणाम है—चैतन्य-केन्द्रों की निर्मलता।

Scanned by CamScanner

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का दूसरा परिणाम है—आनन्द-केन्द्र का जागरण। हमारे चित्त में ऐसे केन्द्र हैं, जिनके जाग जाने पर व्यक्ति सदा सुख की स्थिति में रहता है। आनन्द का केन्द्र हमारे भीतर है। यदि विद्युत् का, प्राण-धारा का ठीक प्रवाह वहां पहुंचे, उसे जगा पाए, तो फिर आनन्द ही आनन्द हो जाता है। समता, साम्य, अनुकूल और प्रतिकूल स्थिति में एक समान भाव करना सम्भव है। यह तभी सम्भव है कि वह आनन्द का केन्द्र, समता का केन्द्र जागृत हो जाए। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा के द्वारा वह केन्द्र जागृत होता है।

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का तीसरा परिणाम है—शक्ति का जागरण। हमारे शरीर में जो शक्ति के केन्द्र हैं, उन्हें हम चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा द्वारा जागृत करते हैं। हम चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा करें। हम इस सचाई को जान लें कि चित्त को अधिक से अधिक हृदय से ऊपर, कंठ से ऊपर, सिर तक रखना लाभदायक होता है। बराबर ऐसा करें तो हमारी वृत्तियां समाप्त हो सकती हैं, स्वभाव बदल सकता है, व्यवहार बदल सकता है और चरित्र बदल सकता है। यह बहुत बड़ा रहस्य है, व्यवहार और आचरण को बदलने का, स्वभाव और आदतों को बदलने का।

पदार्थ प्रतिबद्धता से मुक्ति—अनिर्वचनीय आनन्द

इस मूर्च्छा को तोड़ने के लिए चेतना को जगाएं। चेतना को व्यापक बनाने का अर्थ है चेतना की पदार्थ-प्रतिबद्धता को तोड़ देना। पदार्थ का उपयोग होगा, किन्तु चेतना पदार्थ से प्रतिबद्ध नहीं होगी। उपयोग करना और प्रतिबद्ध होना—दोनों अलग-अलग बातें हैं। रोटी खाना पदार्थ की उपयोगिता है। रोटी से बंध जाना यह उसकी प्रतिबद्धता है। जिसकी चेतना जाग जाती है, वह भी रोटी खाता है। ध्यान करने वाला साधक भी रोटी खाता है, पानी पीता है, पैसा रखता है। ये जीवन के आवश्यक उपकरण हैं। सबके लिए जरूरी है। ध्यान करने का अर्थ यह नहीं है कि पदार्थ छूट जाए। ध्यान से पदार्थ नहीं छूटता। जब तक जीवन है, तब तक पदार्थ को नहीं छोड़ा जा सकता। आध्यात्मिक होने का यह अर्थ नहीं है कि भौतिक पदार्थ छूट जाए। पदार्थ का उपयोग नहीं छूटता, केवल पदार्थ की प्रतिबद्धता छूट जाती है। वह साधक पदार्थ से बंधा नहीं रहता, पदार्थ के चंगुल में फंसा नहीं रहता। चेतना के जागरण का यह मुख्य परिणाम है। उसमें पदार्थ की उपयोगिता शेष रहती है, प्रतिबद्धता समाप्त हो जाती है। समस्या का मूल प्रतिबद्धता है, उपयोगिता नहीं।

Scanned by CamScanner

जब तेजस् लेश्या के स्पन्दन जागते हैं, तब व्यक्ति को अनिर्वचनीय आनंदानुभूति होती है। उस आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला ही उसे जान सकता है, वह उसे बता नहीं सकता। जिस व्यक्ति ने तेजस् लेश्या का कभी प्रयोग नहीं किया, ध्यान नहीं किया, वह व्यक्ति इस स्थूल शरीर से परे भी कोई आनन्द होता है, इन विषयों से परे भी कोई सुखानुभूति है, नहीं समझ पाता, कल्पना भी नहीं कर पाता। जब तक प्रयोग से नहीं गुजरता है, तब तक उसे ज्ञान ही नहीं होता कि ऐसा अनिर्वचनीय सुख भी हो सकता है। जिस सुख का अनुभव होता है, वह अपूर्व होता है। व्यक्ति सोचता है—मैंने मान रखा था कि सुख तो पदार्थ से ही मिलता है किन्तु आज यह स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि जैसा सुख तेजस् लेश्या के स्पन्दनों के जागने पर होता है, वैसा सुख जीवन में किसी भी पदार्थ से नहीं मिल सकता। भ्रांति टूट जाती है, धारणाएं बदल जाती हैं।

अभ्यास

१. मानव-शरीर की मुख्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
२. अन्तःस्रावी ग्रंथियां व्यक्ति की भावधारा और मनोदशाओं को कैसे प्रभावित करती हैं?
३. चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा क्यों आवश्यक है?
४. चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा की निष्पत्तियों को स्पष्ट कीजिए।

Scanned by CamScanner

लेश्या-ध्यान

वैज्ञानिक आधार

विश्व-विज्ञान और रंग

प्रकाश "तरंग" के रूप में होता है और प्रकाश का रंग उसके तरंग-दैर्ध्य (wave-length) पर आधारित है। तरंग-दैर्ध्य और कम्पन की आवृत्ति (frequency) परस्पर में व्यक्त प्रमाण (inverse proportion) से संबंधित है। अर्थात् तरंग-दैर्ध्य के बढ़ने के साथ कम्पन की आवृत्ति कम होती है और उसके घटने के साथ बढ़ती है। सूर्य का प्रकाश त्रिपार्श्व कांच (prism) में गुजरने पर प्रकाश-विक्षेपण के कारण सात रंगों में विभक्त होता दिखाई देता है। उस रंग-पंक्ति को वर्णपट (spectrum) कहते हैं। उनमें से लाल रंग का तरंग-दैर्ध्य सबसे अधिक और बैंगनी (violet) रंग का तरंग-दैर्ध्य सबसे कम होता है। दूसरे शब्दों में लाल प्रकाश की कम्पन-आवृत्ति सबसे कम और बैंगनी प्रकाश की सबसे अधिक होती है।

दृश्य प्रकाश में जो विभिन्न रंग दृष्टिगोचर होते हैं, वे विभिन्न प्रकम्पनों की आवृत्ति या तरंग-दैर्ध्य के आधार पर होते हैं :

रंग	तरंग दैर्ध्य (1A° = $\frac{१}{१०००००००}$) सें.मी.	कम्पन-आवृत्ति (प्रति सैकिण्ड)
लाल	७४००—६२०० A°	४०००—५००० खरब
नारंगी	६२००—५८५० A°	५०००—५४०० खरब
पीला	५८५०—५७५० A°	५४००—५५०० खरब
हरा	५७५०—५००० A°	५५००—६००० खरब
नीला	५०००—४४५० A°	६०००—६६०० खरब
जामुनी	४४५०—४३५० A°	६६००—६७५० खरब
बैंगनी	४३५०—३६०० A°	६७५०—७६०० खरब

Scanned by CamScanner

रंग की परिभाषा

सूर्य से प्रसारित होने वाले प्रकाश-तरंग जब पदार्थ से होकर गुजरते हैं, तब उस पदार्थ की स्वयं की विशिष्टता के कारण एक विशेष तरंग-दैर्ध्य को छोड़कर शेष सभी उस पदार्थ के द्वारा शोषित हो जाते हैं। इस प्रकार जब दूब में से प्रकाश की तरंगें गुजरती हैं, दूब की विशिष्टता के कारण ही हरे को सूचित करने वाली तरंग-दैर्ध्य को छोड़कर शेष तरंग-दैर्ध्य वाली सभी तरंगें दूध के द्वारा शोषित (absorbed) हो जाती हैं। हमारी आंख तक केवल वे ही तरंगें पहुंचती हैं, जिनका तरंग-दैर्ध्य हरे रंग को सूचित करता है और इसीलिए हमें दूबे हरी दिखाई देती हैं।

सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक और नोबल-पुरस्कार-विजेता प्रो. सी.बी. रमन ने रंग की प्रक्रिया पर गहन शोध-कार्य किया है। उपर्युक्त कथन की पुष्टि प्रो. रमन के इस कथन से होती है कि "सूर्य के प्रकाश में जो पदार्थ का रंग हमें दिखाई देता है, वह पदार्थ के ऊपर पड़ने वाली सूर्य-रश्मियों में विद्यमान समस्त प्रकाश-तरंगों में से जिस द्रव्य का पदार्थ बना हुआ है, उस द्रव्य द्वारा विसरण (diffusion) और छितराव (scattering) के पश्चात् जो तरंगें आंख तक पहुंचती हैं तथा आंख द्वारा उनका संश्लेषण होता है, उनसे उत्पन्न होता है।"

किसी भी पदार्थ का रंग तीन बातों पर निर्भर होता है—आपतित प्रकाश की प्रकृति, पदार्थ द्वारा शोषित प्रकाश और विभिन्न रंगों की अनवशोषित प्रकाश-किरणें। इन तीनों के कारण से आंख पर उत्पन्न अनुभूति ही पदार्थ का रंग है।

पारदर्शक और अपारदर्शक वस्तुएं

जब सफेद प्रकाश किसी पारदर्शी वस्तु पर आपतित होता है, तो उसका कुछ भाग वस्तु द्वारा अवशोषित हो जाता है, थोड़ी मात्रा में परिवर्तित होता है, पर अधिकांश भाग संचरित (पार) हो जाता है। अपारदर्शक वस्तु पर आपतित प्रकाश का कुछ हिस्सा परावर्तित हो जाता है, कुछ उसमें प्रवेश करता है, जिसका कुछ भाग वापस लौटता है और शेष भाग अवशोषित हो जाता है। अपारदर्शक वस्तु का रंग आपतित प्रकाश की प्रकृति और अवशोषित प्रकाश पर निर्भर करता है क्योंकि सभी वस्तुएं अपने रंग के प्रकाश को छोड़कर शेष रंगों की प्रकाश-किरणों को अवशोषित कर लेती हैं।

Scanned by CamScanner

प्राथमिक और पूरक रंग

नीला, पीला और लाल—ये तीन प्राथमिक रंग कहलाते हैं। इन रंगों को उचित अनुपात में मिलाने पर दूसरे रंग प्राप्त किए जा सकते हैं, जबकि अन्य रंगों को मिलाने से ये प्राथमिक रंग प्राप्त नहीं हो सकते। जब दो रंगों को मिलाने से तीसरा रंग प्राप्त होता है, तो उन दो रंगों को एक-दूसरे का "पूरक" रंग कहते हैं।

प्रकृति के रहस्य अधिकांशतः प्रकाश की भाषा में अंकित हैं। उनका उद्‌घाटन प्रकाश की सांकेतिक भाषा को समझने से हो सकता है। अणु-सिद्धांत और प्रकाश के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान के आधार पर अब बात सिद्ध हो चुकी है कि प्रत्येक द्रव्य या प्रत्येक प्रकार का अणु अपनी आण्विक संरचना के आधार पर एक विशेष तरंग-दैर्ध्य को ही ऊर्जा के रूप में उत्सर्जित या गृहीत करता है। इसी के आधार पर प्रत्येक द्रव्य का वर्णपट्ट में एक निश्चित स्थान होता है, जो दूसरे किसी द्रव्य का नहीं होता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक प्रकार का अणु अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को अपने विशिष्ट हस्ताक्षर द्वारा अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है और यह हस्ताक्षर उसके अपने अनन्य वर्ण के रूप में होता है। दूसरे शब्दों में, यह अभिव्यक्ति उस द्रव्य विशेष या अणुविशेष की "अंगुलियों की छाप" बन जाती है जो केवल उसके अपने व्यक्तित्व (संरचना-विशेष) को ही व्यक्त करती है। इसके आधार पर ज्योतिर्वैज्ञानिक अन्तरिक्ष में सुदूर आकाश-पिण्डों तक विद्यमान द्रव्यों को पहचान सकते हैं। लाखों प्रकाश-वर्ष दूर रहे हुए नीहारिकाओं तथा ताराओं का अध्ययन करने में इससे बड़ी सहायता मिलती है। वर्णक्रम विज्ञान (स्पेक्ट्रोस्कोपी) के द्वारा प्राप्त तथ्यों के आधार पर समग्र विश्व के निर्माण एवं संरचना के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों की स्थापना हुई है। सर जोसेफ नोर्मल लोक्यर नामक वैज्ञानिक ने सूर्य-रश्मियों के वर्णक्रम के अध्ययन से ही इस बात की खोज की थी कि सूर्य में 'हीलियम' नामक द्रव्य विद्यमान है।

रंग और मनोविज्ञान

वैज्ञानिकों के अनुसार भी हमारा सारा जीवन-तंत्र रंगों के आधार पर चलता है। आज के मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अन्तर-मन को, अवचेतन मन को और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है—रंग। रंग हमारे समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

Scanned by CamScanner

सभी प्राणियों के स्वास्थ्य और व्यवहार पर प्रकाश और रंगों का गहरा प्रभाव है। वनस्पति-जगत् के लिए सूर्य का प्रकाश जीवनदाता है। मनुष्य एवं अन्य प्राणियों की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक दशाओं तथा आचार-व्यवहार पर विभिन्न रंगों का क्या-क्या प्रभाव पड़ता है—इस विषय में प्राचीन एवं आधुनिक दोनों विज्ञान में काफी गवेषणा की गई है। उन्नीसवीं शताब्दी के रंग-चिकित्सकों का यह दावा था कि विभिन्न रंगों के कांच या बोतलों के माध्यम से तैयार की गई औषधियों द्वारा वे सामान्य कब्जी से लेकर तंत्रिकाशोथ (नाड़ी-तंत्र की कोशिकाओं पर आई हुई सोजिश) (meningitis) जैसी घातक बीमारियों तक को ठीक कर सकते हैं। उस युग में इस प्रकार के दावे चिरकाल तक प्रतिष्ठित नहीं हो सके और अंत में बदनाम भी हुए। किन्तु आधुनिक युग में इन्हें रंग-चिकित्सा या 'प्रकाश-जैविकी' (फोटोबायोलोजी) के नाम से पुनरुज्जीवित किया गया है। अमेरीका की "मासाच्यूसेट्स इन्स्टीच्यूट ऑफ टेक्नोलोजी" के सुप्रसिद्ध पोषण-वैज्ञानिक डॉ. रिचर्ड जे. बुर्टमैन के अनुसार—"शारीरिक क्रियाकलापों पर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाले तत्त्वों के आहार के अतिरिक्त यदि किसी का हाथ है, तो वह है प्रकाश का।"

अनेक प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात किया जा चुका है कि विभिन्न रंगों का व्यक्ति के रक्तचाप, नाड़ी और श्वसन की गति एवं मस्तिष्क के क्रियाकलापों पर तथा अन्य जैविकी क्रियाओं पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ता है। इसी के परिणामस्वरूप आज अनेक प्रकार की बीमारियों की चिकित्सा में विभिन्न रंगों का उपयोग किया जाने लगा है।

नीला और पराबैंगनी रंग

प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में बच्चों का निर्धारित समय से पहले प्रसव हो जाता है। ऐसे बालक प्रायः घातक पीलिया की बीमारी के शिकार हो जाते हैं। ऐसे बालकों का उपचार पहले प्रायः बाहर से रक्त चढ़ाकर किया जाता था। अब उनका उपचार रक्त-आधार के बदले नीले प्रकाश की किरणों के स्नान से किया जाने लगा है।

रूस को प्रकाश-जैविकी के क्षेत्र में अग्रगण्य माना जाता है। वहां के वैज्ञानिकों के अनुसार कोयला की खानों के मजदूरों को यदि पराबैंगनी किरणों का स्नान कराया जाता है, तो वे "श्याम फुप्फुस" (black lungs) नामक बीमारी से बच सकते हैं। श्री फावेर बिरेन एक रंग-विशेषज्ञ हैं,

Scanned by CamScanner

जिन्होंने रंग के विषय में सैकडों लेख एवं पुस्तकें लिखी हैं तथा जो इस विषय के अधिकृत व्यक्ति माने जाते हैं। श्री बिरेन के मतानुसार स्कूल के कमरे में बत्तियों के साथ परा-बैंगनी प्रकाश वाली बत्तियों को लगाने पर विद्यार्थियों का विकास तेजी के साथ होता है, उनकी कार्य-क्षमता और प्राप्तांकों में वृद्धि होती है तथा जुकाम, नजले आदि की बीमारियों की घटनाओं में कमी होती है।

शांतिदायक गुलाबी रंग

केलिफोर्निया (अमरीका) के सान बरमार्डिनो काउण्टी के "प्रोबेशन विभाग" (अपराध-सुधार-विभाग) की स्वास्थ्य सेवा के निदेशक श्री पौल ई. बोकुनिनी कहते हैं—"हमारे यहां कैद बाल अपराधी जब कभी उन्मत्त होकर हिंसा पर उतारु हो जाते थे, तब पहले हम यातनाओं द्वारा उन पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। अब हम उन्हें ऐसे कमरे में रखते हैं जिसकी दीवारें एक विशेष गुलाबी रंग से रंगी हुई होती हैं। हमने पाया कि वे उद्दण्ड बच्चे चिल्लाना छोड़ कर शिथिल और शांत होकर केवल १० मिनट में ही निद्राधीन हो जाते हैं।" समूचे अमरीका में लगभग १५०० से अधिक अस्पतालों एवं सुधार-गृहों में कम से कम एक कमरा गुलाबी रंग की दीवारों वाला होता ही है। यह गुलाबी रंग "शांति दायक गुलाबी रंग" के नाम से प्रसिद्ध है। यह मनुष्य की भावनाओं पर होने वाले रंग के प्रभाव का ज्वलन्त उदाहरण है।

मनःकायिक बीमारियों पर रंगों का प्रभाव

व्यक्ति की बीमारियों को रंग कैसे और क्यों प्रभावित करते हैं—इस विषय में सभी चिकित्सक एकमत नहीं हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि रंगों का प्रभाव सीधे शरीर पर न होकर, मानस पर होता है। उनके मतानुसार रंगों द्वारा ऐसी मनोदशाओं का निर्माण होता है जो शरीर को स्वस्थ कर देती है। किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि आधे से अधिक बीमारियां मनःकायिक ही होती हैं।

इस बात को तो सभी चिकित्सक और शोधकर्ता स्वीकार करते हैं कि विद्युत्-चुम्बकीय तरंग-क्रम का अमुक हिस्सा, जैसे कि "एक्स" किरणें, सूक्ष्म तरंगें एवं परा-बैंगनी किरणें, व्यक्ति के स्वास्थ्य पर उल्लेखनीय प्रभाव डालती हैं। किन्तु पुरे दृश्य प्रकाश के प्रभाव के विषय में उनमें मतभेद है। फिर भी अनेक प्रयोगों द्वारा स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हुए हैं कि

Scanned by CamScanner

प्रकाश हमारे अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र एवं नाड़ी-तंत्र को निश्चित रूप से प्रभावित करता है।

नाड़ी-ग्रन्थि-तन्त्र पर रंगों का प्रभाव

अमरीकरन इन्स्टीच्यूट ऑफ बायो-सोसल रिसर्च के निदेशक प्रो. एलेकझांडर सोस की मान्यता है कि रंग का विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा किसी अज्ञात रूप में हमारी पिच्यूटरी और पिनियल ग्रन्थियों एवं मस्तिष्क की गहराई में विद्यमान हायपोथेलेमस को प्रभावित करती है। वैज्ञानिकों के अनुसार हमारे शरीर के ये अवयव अंतःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र[1] का नियमन करते हैं, जो स्वयं शरीर के अनेक मूलभूत क्रियाकलापों और आक्रमण, भय आदि भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को नियंत्रण करता है।

हेरोल्ड बोह्लाफार्थ नामक प्रकाश-जीव विज्ञान-शास्त्री (फोटो-वायोलोजिस्ट) और "जर्मन अकादमी ऑफ कलर साइन्स" के अध्यक्ष ने एक विद्यालय के बच्चों पर कुछ प्रयोग करने के पश्चात् यह रिपोर्ट दी है कि दो अंधे बच्चों के रक्त-चाप, नाड़ी की गति और श्वास की गति पर प्रकाश का वही प्रभाव देखा गया, जो कि अन्य सात सामान्य दृष्टि वाले बच्चों पर सामने आया था। बायो-सोसल रिसर्च की एक पत्रिका में उपर्युक्त प्रयोग की जो रिपोर्ट छपी है, उसमें बताया गया है कि जब विद्यालय के कमरे की दीवारों के रंगों को नारंगी और सफेद से बदलकर रोयल ब्लू और हल्का ब्लू कर दिया गया, सामान्य बत्तियों के स्थान पर इन्द्रधनुषी बत्तियों को लगा दिया, तो बच्चों का प्रकुंचक (ऊपर का) रक्तचाप १२० से घटकर १०० तक आ गया। उनका व्यवहार पहले से अधिक अच्छा और अनुशासनबद्ध हुआ तथा उनकी एकाग्रता बढ़ गई। आगे श्री बोह्लाफार्थ कहते हैं—प्रकाश से प्राप्त विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा की अल्प मात्राएं हमारे एक या एक से अधिक तंत्रिका-संचारी (neuro trans-mitter) को—जो एक तंत्रिका से दूसरी तंत्रिका तक या तंत्रिका से मांसपेशी तक संदेश पहुंचाने वाले रासायनिक संदेशवाहक हैं—प्रभावित करती हैं। प्रयोगों के द्वारा ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं कि जो प्रकाश हमारी आंखों के दृष्टिपटल पर टकराता है, वह हमारी पाइनियल ग्रंथि में से निकलने वाले मेलाटोनिन नामक महत्त्वपूर्ण स्राव के संश्लेषण को

---

१. प्रेक्षाध्यान : साधना-पद्धति में एण्डोक्राइन ग्रन्थियां, चैतन्य केन्द्रों के संवादी स्थान हैं। प्रत्येक एण्डोक्राइन ग्रन्थि का अपना रंग है। रंग के आधार पर उसे प्रभावित किया जा सकता है।

Scanned by CamScanner

प्रभावित करता है। यह मेलाटोनिन नामक हार्मोन एक अन्य सेरोटोनिन नामक तंत्रिका-संचारी के उत्पादन-मात्रा का निर्णय करने में सहायक होता है।

आभामण्डल

आभामण्डल क्या है ?

दो शब्द हैं–एक है भामण्डल और दूसरा है आभामण्डल। बहुत प्राचीनकाल से संसार के सभी धर्मों में देवी, देवता, संत और अवतारी पुरुषों के चित्रों में उनके मस्तक के चारों ओर एक प्रकाश का वृत्त, जिसे भामण्डल (halo) कहा जाता है, दिखाने की परम्परा रही है। चित्रों में उन महापुरुषों के सिर के पीछे गोलाकार पीले रंग का एक चक्र-सा दिखाई

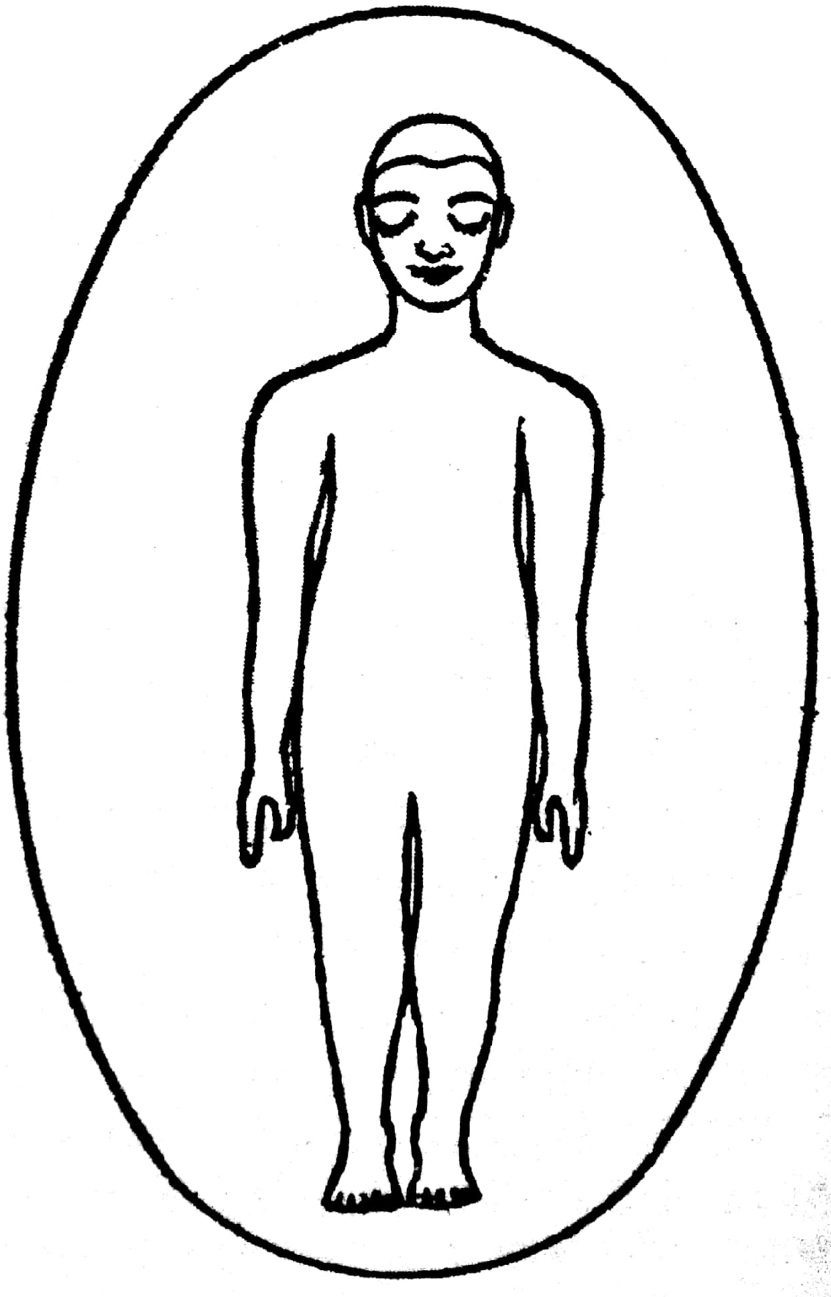

Scanned by CamScanner

देता है। वह प्रत्येक व्यक्ति में नहीं होता, केवल विशिष्ट व्यक्तियों में ही होता है। दूसरा है—आभामण्डल (Aura)। इस संसार के प्रत्येक पदार्थ के चारों ओर एक आभामण्डल होता है, चाहे वह मनुष्य हो, पशु हो, पान हो या पत्थर। प्रत्येक पदार्थ के चारों ओर रश्मियों का एक वलय होता है। यह कवच जैसा, सूक्ष्म तरंगों के जाल जैसा या रूई के सूक्ष्म तंतुओं के व्यूह जैसा होता है। ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं—पूरे शरीर के बाहर चारों ओर फैला हुआ होता है। किसी का तीन फुट का, किसी का पांच फुट का और किसी का सात फुट का। किसी का बहुत सुन्दर और बड़ा आकर्षक होता है। किसी का भद्दा और ग्लानि पैदा करने वाला होता है। किसी का आभामण्डल पास में आने वाले व्यक्ति को शांति देता है और किसी का आभामण्डल चिंता या दुर्मनस्कता से भर देता है।

दुनिया का हर पदार्थ—चेतन और अचेतन अपने आकार में रश्मियों का विकिरण करता है। ये रश्मियां विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा या तरंग के रूप में होती हैं। इस निकलने वाली ऊर्जा से आभामण्डल निर्मित होता है। कोई भी पदार्थ, कोई भी अस्तित्व दुनिया में ऐसा नहीं है जिससे यह विकिरण न होता हो।

जीवन्त प्राणी का आभामंडल तैजस शरीर—सूक्ष्म शरीर का विकिरण है। जीवन्त प्राणी में विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा के साथ प्राण-ऊर्जा भी निकलती रहती है, अतः उनके आभामण्डल तेजस्वी, गतिशील और ज्योतिर्मय होते हैं, जबकि निर्जीव पदार्थ में यह फीके और स्थिर प्रकाश वाला होता है। जीवन्त प्राणी का आभामंडल एकरूप नहीं रहता—बदलता रहता है। निर्मलता, मलिनता, संकोच और विस्तार—ये सारी अवस्थाएं उनमें घटित होती रहती हैं। ऐसा इसलिए होता है कि उसके बदलने वाला लेश्या-तंत्र, भाव-तंत्र भीतर विद्यमान है। प्राणी और पदार्थ में यह मौलिक अंतर है कि पदार्थ में परिवर्तन करने वाला नियामक तत्त्व नहीं होता। अन्य ऊर्जाओं की तरह यह प्राण-ऊर्जा भी हमारे चर्म-चक्षुओं द्वारा देखी नहीं जा सकती। केवल अतीन्द्रिय ज्ञानी (अवधिज्ञानी) ही इसे देख सकता है। फिर भी वैज्ञानिक, चिकित्सक और योगी—सभी लोग इस विषय में एकमत हैं कि आभामंडल का वास्तविक अस्तित्व है और इसके माध्यम से व्यक्ति के भौतिक प्राणिक और चैतसिक अवस्था का चित्र प्रकट होता है।

क्या आभामण्डल दीख सकता है ?

क्या आभामण्डल देखा जा सकता है ? हां; बहुत अच्छी तरह से

Scanned by CamScanner

देखा जा सकता है किन्तु आभामण्डल के दर्शन हर किसी को नहीं होते। शरीर की स्थिरता की साधना करने वाले व्यक्ति को हो सकते हैं, कायोत्सर्ग की प्रगाढ़ अवस्था में आभामण्डल का दर्शन होने लगता है। गहरी ध्यान की स्थिति में भी आभामण्डल दिखाई देता है। अचानक कभी-कभी ऐसा होता है कि ध्यान करते-करते शरीर तो नहीं है, किन्तु पूरे शरीर के आकार की कोई प्रतिमा सामने आकर बैठ गई है। कभी-कभी गहरे अंधेरे में हाथ को देखें। हाथ दिखाई नहीं देगा, किन्तु हाथ के आकार की एक आभा दीखने लग जाएगी, पूरा-का-पूरा विद्युन्मय हाथ दीखने लग जाएगा, बशर्ते कि अंधकार सघन हो।

पिछली कुछ शताब्दियों के दौरान अनेक लोगों ने आभामण्डल के अध्ययन से रोगों के निदान के लिए या स्वास्थ्य और प्राणशक्ति को नापने के लिए नाना प्रकार के उपकरणों को काम में लिया है, जिनमें सीधे-सादे पर चमत्कारी डंडों और केवल हस्त-स्पर्श से लेकर बहुमूल्य मशीनों तक की सामग्री शामिल है। पिछले कुछ वर्षों में मद्रास के गवर्नमेंट जनरल अस्पताल के "इन्स्टीच्यूट ऑफ न्यूरोलॉजी" (स्नायु-विज्ञान संस्थान) में डॉक्टरों के एक दल ने जिसके नेता डॉ. पी. नरेन्द्रन् हैं, किर्लियन फोटोग्राफी की तकनीक को विकसित कर आभामण्डल के फोटो लेने के उपकरण का विकास किया है और इसके माध्यम से अनेक खोजें की हैं और कर रहे हैं। अन्य देशों में इस प्रकार का कार्य चल रहा है।

उन्नीसवीं शताब्दी में बेरोन फान राइशनवाख नामक वैज्ञानिक ने यह दावा किया था कि उसने मनुष्य, प्राणी, वनस्पति, चुम्बक आदि से निकलने वाले विकिरणों का पता लगा लिया है तथा इन्हें संवेदनशील व्यक्ति देख सकते हैं।

लगभग १९४५ में लन्दन में सेंट थामस अस्पताल के एक कर्मचारी डब्ल्यू. जे. किल्नर ने एक ऐसे ही उपकरण को विकसित किया था। इस उपकरण का नाम "डाईस्थानीनस्क्रीन" था। किल्नर ने अपनी पुस्तक "मानव वातावरण" (Human Atmosphere) में यह बताया है कि जीवित प्राणियों के चारों ओर आभामण्डल होता है, जो यद्यपि चर्मचक्षुओं द्वारा दृश्य नहीं होता, स्वस्थता की दशा में और रुग्नावस्था में भिन्न-भिन्न प्रकार का हो जाता है। आगे चलकर कुछ रासायनिक पदार्थों के माध्यम से यह संभव किया जा सका कि सामान्य व्यक्ति भी अपनी आंखों से आभामण्डल को देख सके।

Scanned by CamScanner

एक अमरिकन महिला जे. सी. ट्रस्ट ने एक पुस्तक लिखी है—अणु और आभामण्डल (Atom and Aura)। इस पुस्तक में काल्पनिक तथ्यों का संकलन नहीं है। आभामण्डल के चित्र लिए हैं और छापे हैं।

इसी प्रकार का कार्य सोवियत संघ में किर्लियन दम्पति द्वारा किया गया। किर्लियन फोटोग्राफी आभामण्डल के फोटो खींचने की पद्धति है। उन्होंने ऐसे व्यक्ति के पूरे आभामण्डल के फोटो खींचे थे, जिनके हाथ या पैर काट दिए थे। आभामण्डल में कटे हुए अंग का भी फोटो आ गया। १९५० में उन्होंने पौधों और प्राणियों में भविष्य में होने वाली बीमारी, जिसका कोई लक्षण वर्तमान में नहीं दिखाई देता, के विषय में आभामण्डल के फोटो से निदान कर बता दिया।

किर्लियन दम्पत्ति के कार्यों की रिपोर्ट ने डॉ. नरेन्द्रन् को १९३४ में ही इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रेरित कर दिया था। डॉ. नरेन्द्रन् और उसके साथी डॉक्टरों व तकनीशियनों ने मिलकर उपरोक्त उपकरण का विकास किया। इससे रुग्ण व्यक्ति की अंगुली के आभामण्डल का फोटो अंगुली को एक प्लेट पर रखकर लिया जाता है, जिसे एक विद्युत्-पथ के साथ जोड़ा जाता है और इस माध्यम से आभामण्डल को पकड़ा जा सकता है, जिसे कोई भी आदमी अपनी आंखों से देख सकता है। उस आभामण्डल को प्रकाश-तरंग में बदल कर एक कैमरे सदृश उपकरण के द्वारा फोटोग्राफिक कागज पर उतारा जा सकता है। इसके लिए बीमार को किसी भी प्रकार की पूर्व तैयारी की आवश्यकता नहीं होती और न ही रिकार्डिंग के दौरान किसी प्रकार के विकिरणों का प्रसारण होता है।

आभामण्डल के रंग और दोष

डॉ. नरेन्द्रन् कहते हैं कि "जीवित प्राणी में से निकलने वाला आभामण्डल न तो उष्मा है, न ध्वनि। वह एक प्रकार की तरंगों के रूप में होता है। किन्तु स्वस्थ और अस्वस्थ, मृत और जीवित, जीवंत और निर्जीव वस्तुओं के आभामण्डल में निश्चित ही भिन्नताएं होती हैं।"

आभामण्डल में विविध रंग पाए जाते हैं—लाल, हरा, पीला, जामुनी और नीला। सफेद और श्याम रंग नहीं पाए गए। वर्तमान में तो केवल अंगुलियों के अग्रभाग के आभामण्डलों का अध्ययन सीमित है। पिछले तीन वर्षों में (१९८१-१९८४) डॉ. नरेन्द्रन् के दल ने ६३२ बीमार व्यक्तियों का अध्ययन किया है जिनमें स्नायविक गड़बड़ी, उदररोग, स्त्रीरोग आदि के रुग्न थे। स्नायविक (नाड़ीतंत्रीय) गड़बड़ी के भिन्न-भिन्न प्रकार के मरीजों

Scanned by CamScanner

के आभामण्डल निश्चित ढांचे के पाए गए। इन रोगों में मिर्गी, सूत्रण रोग, मस्तिष्क की गाठ, चेहरे का पक्षाघात जैसी बीमारियां शामिल हैं। इस मशीन के द्वारा बीमारी होने से पूर्व ही उसकी भविष्यवाणी की जा सकती है। इस दृष्टि से यह उपकरण बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विशेषत: कैंसर जैसे रोगों के बारे में पहले से ही उसका पता लगाया जा सकेगा और उसका उपचार कर लेना संभव हो जाएगा।

मृत्यु के बाद आभामण्डल

मृत व्यक्ति के आभामण्डल के विषय में डॉ. नरेन्द्रन् का कहना है कि मृत्यु के बाद तुरन्त ही आभामण्डल समाप्त नहीं हो जाता। परन्तु जैसे बिजली का हीटर स्विच बन्द कर देने पर धीरे-धीरे दीप्ति-रहित होता जाता है, वैसे ही प्राणी की मृत्यु के बाद आभामण्डल की दीप्ति मन्द होती-होती न्यूनतम स्थिति तक पहुंच जाती है। जब व्यक्ति की हृदय और श्वास की गति बन्द हो जाती है तब शरीर से बाहर "धारियों" के रूप में आभामण्डल निकलने लगता है। छह घंटे तक वह चलता रहता है, इसके बाद अवशिष्ट आभा ठीक वैसी हो जाती है, जैसी की पत्थर जैसे निर्जीव पदार्थों के आभामण्डल में पाई जाती है।

विदेशों में आभामण्डल पर शोध

डॉ. नरेन्द्रन् ने बताया है कि सोवियत संघ में आभामंडल के ज्ञान का उपयोग कृषि-कार्य में किया जा रहा है। वैज्ञानिकों ने पत्तियों की रुग्णता का अध्ययन आभामण्डल के आधार पर किया तथा उनके रोगों के विषय में भविष्यवाणियां कीं।

दूसरी ओर अमरीका में उसका उपयोग अतीन्द्रिय ज्ञान के अध्ययन में किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, वह क्या शक्ति है, जो कभी-कभी किसी व्यक्ति को उस ट्रेन से यात्रा करने से रोक देती है, जो आगे चलकर दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है ? डॉ. नरेन्द्रन् के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति के पास अन्तःदर्शन (intuition) की शक्ति है और यदि उसे विकसित किया जा सके तो मनुष्य-जाति के लिए वह अनेक प्रकार से बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। जैसी दुर्घटना या दुर्घटना से होने वाली मृत्यु से होने वाली मृत्यु के विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है।

आभामण्डल में दिखाई देने वाले विभिन्न रंगों की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

Scanned by CamScanner

१. सुनहला रंग	—आध्यात्मिकता
२. हलका नीला या नील-लोहित	—रोग हरने की शक्ति
३. गुलाबी	—प्रेम, स्नेह
४. लाल	—तृष्णा, क्रोध
५. हरा	—बौद्धिकता
६. भूरे या गहरे मटियाले रंग	—रोगग्रस्तता
७. मुर्झाया या निस्तेज	—मृत्यु की सन्निकटता

आध्यात्मिक दृष्टिकोण

लेश्या एक प्रकार का पौद्‌गलिक पर्यावरण है। इसकी खोज जीव और पुद्‌गल के स्कंधों का अध्ययन करते समय हुई। जीव से पुद्‌गल (Matter) और पुद्‌गल से जीव प्रभावित होते हैं। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्‌गलों के अनेग वर्ग हैं। उनमें से एक वर्ग का नाम लेश्या है। लेश्या शब्द का अर्थ आणविक आत्मा, कांति, प्रभा या छाया है। छाया-पुद्‌गलों से प्रभावित होने वाले जीव परिणामों को भी लेश्या कहा गया है। प्राचीन साहित्य में शरीर के वर्ण, आणविक आभा और उससे प्रभावित होने वाले विचार—इन तीनों अर्थों में लेश्या का उल्लेख मिलता है। शरीर के वर्ण और आणविक आभा को 'द्रव्य लेश्या' और विचार को 'भाव लेश्या' कहा गया है।

आणविक आभा कर्म-लेश्या का ही नामांतर है। आठ कर्मों में छठा कर्म नाम है। उसका सम्बन्ध शरीर रचना सम्बन्धी पुद्‌गलों से है। उसकी एक पद्धति 'शरीर-नामकर्म' है। 'शरीर-नामकर्म' के पुद्‌गलों का ही एक वर्ग कर्म-लेश्या कहलाता है।

लेश्या की अनेक परिभाषाएं मिलती हैं, जैसे—

१. योग-परिणाम २. कषायोदय रंजित योग-प्रवृत्ति ३. कर्म-निष्पन्न ४. कार्मण शरीर की भांति कार्मण वर्गणा-निष्पन्न कर्म-द्रव्य।

इन शास्त्रीय परिभाषाओं के अनुसार लेश्या से जीव और कर्म पुद्‌गलों का सम्बन्ध होता है, कर्म की स्थिति निष्पन्न होती है और कर्म का उदय होता है। इस प्रकार आत्मा की शुद्धि और अशुद्धि के साथ लेश्या जुड़ी हुई है।

प्रभाववाद की दृष्टि से दोनों परम्पराएं प्राप्त होती हैं—

१. पौद्‌गलिक लेश्या का मानसिक विचारों पर प्रभाव।

२. मानसिक विचारों का लेश्या पर प्रभाव।

Scanned by CamScanner

कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामोऽयमात्मनः।
स्फटिकस्यैव तत्रायं, लेश्या–शब्दः प्रवर्तते।।

इस प्रसिद्ध श्लोक की ध्वनि यह है–कृष्ण आदि लेश्या के पुद्‌गल जैसे होते हैं वैसे ही मानसिक परिणति होती है।

दूसरी धारा यह है–कषाय की मंदता से अध्यवसाय की शुद्धि होती है और अध्यवसाय की शुद्धि से लेश्या की शुद्धि होती है।

पांच आस्रवों में प्रवृत्त मनुष्य कृष्ण लेश्या में परिणत होता है। अर्थात् उसकी आणविक आभा (पर्यावरण) कृष्ण होती है। मनुस्मृति में सत्त्व, रजस् और तमस् के जो लक्षण और कार्य बतलाए गए हैं, वे लेश्या के लक्षणों से तुलनीय हैं।

लेश्या तंत्र→ग्रंथि तंत्र→क्रिया तंत्र

अध्यवसाय के अनेक स्पन्दन अनेक दिशाओं में आगे बढ़ते हैं। वे चित्त पर उतरते हैं। उनकी एक धारा है–भाव की धारा। अध्यवसाय की यह धारा जो रंग से प्रभावित होती है, रंग के स्पन्दनों के साथ जुड़कर भावों का निर्माण करती है, वह है हमारा भाव-तंत्र या लेश्या-तंत्र। जितने भी अच्छे या बुरे भाव हैं, वे सारे इनके द्वारा ही निर्मित होते हैं।

लेश्या-तंत्र हमारे संचित कर्म या संस्कारों का झरना है। कर्म के इस प्रवाह का बाहर आने का माध्यम है–हमारा अन्तःस्रावी ग्रन्थितंत्र (Endocrine System)। जब लेश्या से भावित अध्यवसाय आगे बढ़ते हैं, तब ये प्रभावित करते हैं, हमारे अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र को। इन ग्रन्थियों के स्राव ही हमारे कर्मों के अनुभाग यानी विपाक का परिणमन है। इस प्रकार पूर्व संचित कर्म का अनुभाग रसायन बनकर ग्रन्थितंत्र के माध्यम से हार्मोन के रूप में प्रगट होता है। ये हार्मोन रक्त-संचार तंत्र के द्वारा नाड़ी-तंत्र और मस्तिष्क के सहयोग से हमारे अन्तर्भाव, चिन्तन, वाणी, आचार और व्यवहार को संचालित और नियंत्रित करते हैं। इस तरह ग्रन्थि-तंत्र हमारे सूक्ष्म अध्यवसाय-तंत्र और स्थूल शरीर के बीच "ट्रान्सफोर्मर" (परिवर्तक) का काम करता है। अध्यवसाय की अपेक्षा यह स्थूल है और शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म है। यही हमारे चैतन्य और शरीर के बीच की कड़ी है जो हमारी चेतना के अति सूक्ष्म और अमूर्त आदेशों को भौतिक स्तर पर परिवर्तित कर देता है और उसे मन एवं स्थूल शरीर तक पहुंचाता है।

मन, वाणी और शरीर–ये तीनों क्रिया-तंत्र (योग-तंत्र) के अंग हैं, क्रियान्विति के साधन हैं, ज्ञान के साधन नहीं। ज्ञान-तंत्र चित्त-तंत्र तक

Scanned by CamScanner

और भाव-तंत्र लेश्या-तंत्र तक समाप्त हो जाता है। इन दोनों के निर्देशों को क्रियान्वित करने के लिए क्रिया-तंत्र सक्रिय होता है, जिनके तीन कर्मचारी हैं—मन, वाणी और शरीर। मन का काम है—स्मृति, कल्पना और चिन्तन करना। उसका काम ज्ञान करना नहीं है। वह चित्त-तंत्र और लेश्या-तंत्र से मिलने वाले निर्देशों का पालन करता है।

निष्कर्ष की भाषा में—मूल है चैतन्य या आत्मा। उस पर पहला वलय है—कषाय-तंत्र का। चैतन्य के स्पन्दन कषाय के वलय को पार कर अध्यवसाय के रूप में बाहर आते हैं और वह लेश्या-तंत्र के साथ मिलकर भावधारा बन जाते हैं। दूसरा वलय है—योग-तंत्र का। योग का अर्थ है—प्रवृत्ति। मन, वचन और काया योग-तंत्र के विभाग हैं। उनका काम है—प्रवृत्ति करना। कषाय-तंत्र और योग-तंत्र के बीच की कड़ी है—ग्रन्थि-तंत्र और नाड़ी-तंत्र। इस प्रकार—

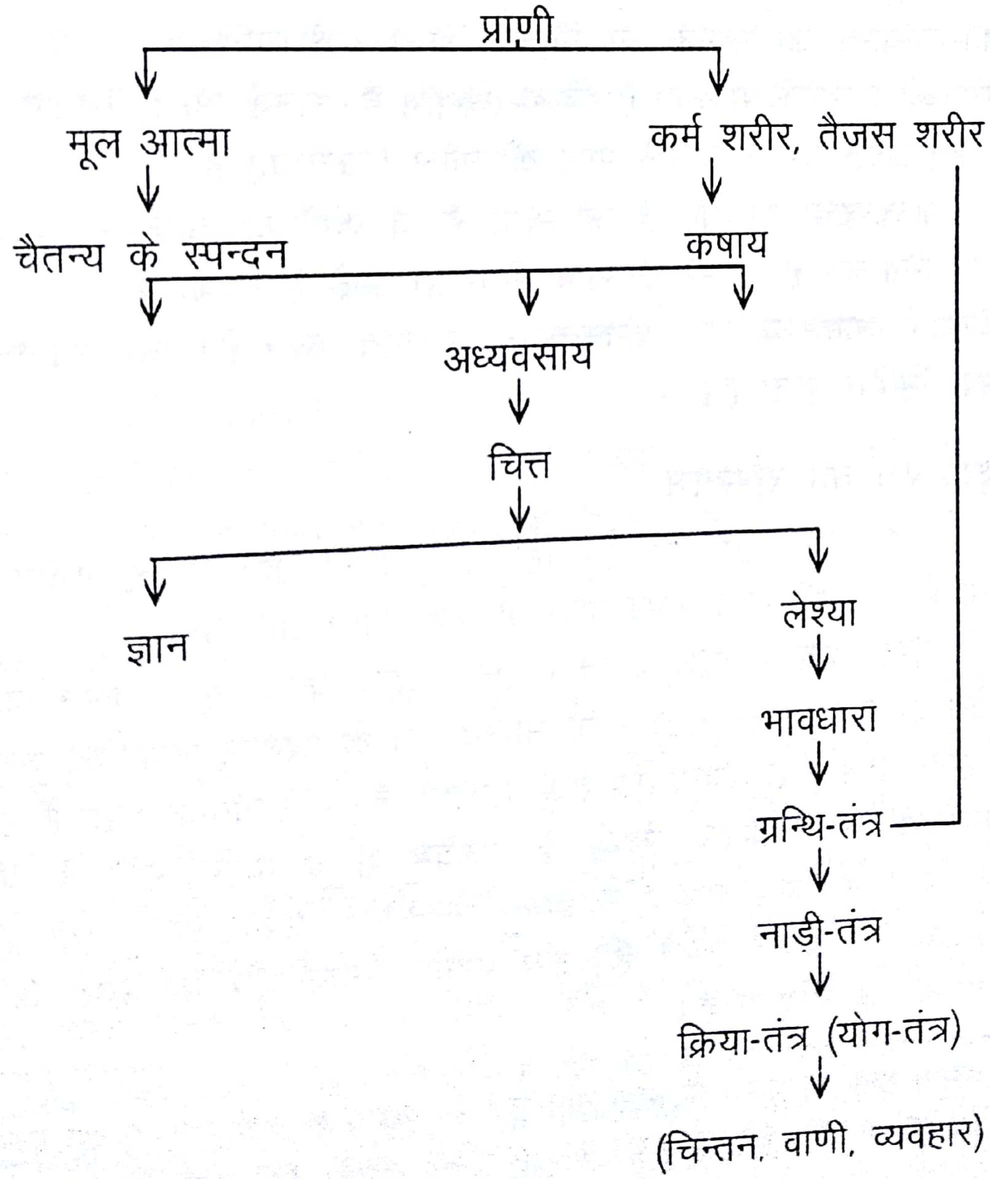

Scanned by CamScanner

लेश्या के क्रियाकलाप

यह लेश्या एक बहुत बड़ा कारखाना है। कषाय के तरंगें और कषाय की शुद्धि होने पर आने वाली चैतन्य की तरंगें—इन सब तरंगों को भाव के सांचे में ढालना, भाव के रूप में इनका निर्माण करना, और उन्हें विचार तक, वाणी तक, क्रिया तक पहुंचा देना, यह इसका काम है। सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच में सम्पर्क-सूत्र का कार्य लेश्या करती है। मन वचन और काया की प्रवृत्ति के द्वारा जो कुछ बाहर से आता है वह कच्चा माल होता है। लेश्या उसे लेती है और उसे कषाय तक पहुंचा देती है। फिर भीतर से वह कच्चा माल पक्का बनकर आता है। जो कर्म भीतर जाता है, वह फिर विपाक होकर आता है। भीतरी स्राव जो रसायन बनकर आता है उसे लेश्या फिर अध्यवसाय से लेकर हमारे सारे स्थूल तंत्र—अन्तःस्रावी ग्रंथियों और मस्तिष्क तक पहुंचा देती है। इसलिए यदि हमारे स्थूल शरीर में लेश्या के प्रतिनिधि-संस्थानों को खोजें, उनके बिक्री-संस्थानों को खोजें, तो जितनी अन्तःस्रावी ग्रन्थियां हैं, ये सारी लेश्या की प्रतिनिधि-संस्थाएं हैं, बिक्री-संस्थान हैं। उनके सेल्स-मैनेजर वहां बैठे हैं। अच्छे ढंग से उनके माल की सप्लाई कर रहे हैं।

अन्तःस्रावी ग्रंथियों के जो स्राव हैं, वे कर्मों के स्राव से प्रभावित होकर निकलते हैं। कर्मों के स्राव भीतर से आते हैं लेश्या के द्वारा और ग्रंथियों में आकर वे सारे व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। सारा व्यक्तित्व उससे निर्मित होता है।

लेश्या-रंग का संस्थान

भीतर कषाय[1] का तंत्र है। वहां जो कुछ भी जाता है, वह रंगीन हो जाता है। जो भी माल बाहर आता है, वह रंगीन आता है।

हिंसा, असत्य, क्रोध, अहंकार, कपट आदि का आचरण करने वाला व्यक्ति बाहर से काले, नीले आदि मलिन रंगों के परमाणु आकर्षित करता है। लेश्या-तंत्र उन्हें कषाय-तंत्र तक पहुंचाता है। जब विपाक होता है, तब कषाय से रंगीन होकर लेश्या के माध्यम से वे बाहर आते हैं और भिन्न-भिन्न अंतःस्रावी ग्रंथियों में आकर भिन्न-भिन्न प्रकार की वृत्तियों और वासनाओं को प्रकट करते हैं। इस प्रकार सम्पर्क-सूत्र का सारा कार्य लेश्या-तंत्र के हाथ में है।

---

१. कषाय शब्द का चुनाव भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। कषाय का अर्थ होता है रंगा हुआ। रंगे हुए या लाल रंगे हुए कपड़े को 'काषायिक' कपड़ा कहा जाता है।

Scanned by CamScanner

जैसे रंग का हम ग्रहण करते हैं, वैसे ही हमारे भाव, आचार और व्यवहारे बन जाते हैं। स्फटिक के सामने जैसा रंग आता है, वह वैसा ही दिखने लग जाता है। स्फटिक का अपना रंग नहीं होता। आत्मा के परिणामों का भी अपना कोई रंग नहीं होता। सामने जिस रंग के परमाणु आते हैं, आत्मा के परिणाम भी वैसे हो जाते हैं। ये परिणाम ही हमारी भाव-लेश्या है।

द्रव्य लेश्या, भाव लेश्या

लेश्या दो प्रकार की है—द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। द्रव्य लेश्या भौतिक (पौद्गलिक) है और भाव लेश्या चैतन्य का एक स्तर है। पुद्गल का लक्षण है—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श-युक्त होना। द्रव्य लेश्या में भी ये चारों गुण पाए जाते हैं। भाव लेश्या अपौद्‌गलिक है, इसलिए उसमें कोई वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं होते। कृष्ण लेश्या का वर्ण काला, नील लेश्या का नीला और कापोत लेश्या का वर्ण कबूतर या राख जैसा होता है। ये तीन अप्रशस्त लेश्याएं हैं। तेजो लेश्या का वर्ण लाल, पद्‌म लेश्या का पीला और शुक्ल लेश्या का सफेद होता है। ये तीन प्रशस्त लेश्याएं हैं। तीनों अप्रशस्त लेश्याओं के गन्ध, रस और स्पर्श भी अमनोज्ञ तथा प्रशस्त लेश्याओं के गंध, रस और स्पर्श मनोज्ञ होते हैं।

इन चार गुणों में से रंग चित्त को सबसे अधिक प्रभावित करता है। हमारा सारा जीवन-तंत्र रंगों के आधार पर चलता है। आज मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अन्तर्मन को—अवचेतन मन को और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है—रंग। हमारा जीवन ही नहीं, मृत्यु का सम्बन्ध भी रंग से है। हमारे पुनर्जन्म का संबंध भी रंग से है।[१]

तीन अप्रशस्त लेश्याएं रूखी और ठंडी हैं। तीन प्रशस्त लेश्याएं चिकनी और गरम हैं। यह प्रशस्तता और अप्रशस्तता की व्याख्या संक्लेश और असंक्लेश के आधार पर की गई है, इसलिए सापेक्ष है। असंक्लेश का अर्थ है—विशुद्धि। संक्लेश का अर्थ है—अविशुद्धि। कृष्ण लेश्या की अपेक्षा नील लेश्या विशुद्ध है और नील लेश्या की अपेक्षा कापोत लेश्या विशुद्ध है। कृष्ण लेश्या संक्लेश का चरम बिन्दु है, नील लेश्या मध्य है और

१. एक व्यक्ति मरता है, वह अगले जन्म में पैदा होता है। प्रश्न पूछा गया—"वह अगले जन्म में क्या होगा ? कैसा होगा ?" उत्तर मिला—"जिस लेश्या में मरेगा, उसी लेश्या में उत्पन्न होगा—जिस रंग में मरेगा, उसी रंग में पैदा होगा।"

Scanned by CamScanner

कापोत लेश्या न्यूनतम है। दूसरी ओर असंक्लेश की न्यूनतम अवस्था है तेजस् लेश्या, मध्य है पद्म लेश्या और उत्कृष्ट है शुक्ल लेश्या।

तीन प्रशस्त लेश्याओं ने जिस व्यक्तित्व का निर्माण किया है, उसे विघटित करने के लिए तीन प्रशस्त लेश्याएं सक्षम हैं। वे नया व्यक्तित्व उभार देती हैं।

वृत्तियों का उद्भव-स्थान

हमारी वृत्तियां, भाव या आदतें–इन सबको उत्पन्न करने वाला सशक्त तंत्र है–लेश्या-तंत्र। जब तक लेश्या-तंत्र शुद्ध नहीं होता, तब तक आदतों में परिवर्तन नहीं हो सकता। लेश्या-तंत्र को शुद्ध करना आवश्यक है। उसको शुद्ध करने की प्रक्रिया को समझने से पहले यह समझना जरूरी है कि अशुद्धि कहां जन्म लेती है और कहां प्रकट होती है। यदि हम उस तन्त्र को ठीक समझ लेते हैं, तो उसे शुद्ध करने की बात समझने में बड़ी सुविधा हो जाती है।

बुरी आदतों को उत्पन्न करने वाली लेश्याएं हैं–कृष्ण-लेश्या, नील-लेश्या और कापोत-लेश्या। क्रूरता, हत्या की भावना, कपट, असत्य बोलने की भावना, प्रवंचना, धोखाधड़ी, विषय की लोलुपता, प्रमाद, आलस्य आदि जितने दोष हैं, ये सब इन लेश्याओं से उत्पन्न होते हैं। हमारे इस स्थूल शरीर में इन लेश्याओं के संवादी स्थान हैं, जिनमें ये वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। अधिवृक्क ग्रन्थियां (एड्रीनल ग्लैण्ड्स) और काम ग्रंथियां (गोनाड्स)–ये दो ग्रंथियां इन लेश्याओं के प्रतिनिधि या संवादी स्थान हैं। इन तीन लेश्याओं के भाव यहां जन्म लेते हैं।

हम वर्तमान विज्ञान की दृष्टि, योग-शास्त्र की दृष्टि और लेश्या के सिद्धांत की दृष्टि, इन तीनों दृष्टियों से इन पर विचार करें और इनकी तुलना करें।

वर्तमान विज्ञान की दृष्टि के अनुसार काम-वासना का स्थान है–जनन-ग्रन्थियां (गोनाड्स)। वहां कामवासना उत्पन्न होती है। अन्य वृत्तियों का स्थान है–अधिवृक्क ग्रंथियां (एड्रीनल ग्लैण्ड्स)। वहां भय, आवेग, बुरे भाव जन्म लेते हैं।

योग-शास्त्र की भाषा में तीन चक्र हैं–स्वाधिष्ठान-चक्र, मणिपूर-चक्र और अनाहत-चक्र, जहां हमारी सारी वृत्तियां जन्म लेती हैं। "एड्रीनल और गोनाड्स" को योग-शास्त्र की भाषा में स्वाधिष्ठान-चक्र और मणिपूर चक्र कहा जाता है।

Scanned by CamScanner

लेश्या-सिद्धांत की दृष्टि से अविरति, क्षुद्रता, निर्दयता, नृशंसता, अजितेन्द्रियता–ये कृष्ण-लेश्या के परिणमन हैं। ईर्ष्या, कदाग्रह, अज्ञान, माया, निर्लज्जता, विषय-वासना, क्लेश, रस-लोलुपता–ये नील-लेश्या के परिणमन हैं। वक्रता–वक्र आचरण, अपने दोषों को ढांकने की मनोवृत्ति, परिग्रह का भाव, मिथ्या दृष्टिकोण, दूसरे के मर्म को भेदने की वृत्ति, अप्रिय कथन–ये कापोत-लेश्या के परिणमन हैं।

विज्ञान की दृष्टि, योग-शास्त्रीय दृष्टि और लेश्या-सिद्धांत की दृष्टि–इन तीनों की तुलनात्मक दृष्टि से लेश्या के सिद्धांत में जो तीन लेश्याएं हैं, योगशास्त्र की दृष्टि में जो तीन चक्र हैं और विज्ञान की दृष्टि में जो एड्रीनल और गोनाड्स ग्रंथियां हैं–इन सबका काम समान-सा है। लेश्या का सिद्धांत मानता है कि सारी आदतें तीन लेश्याओं में जन्म लेती हैं, योग-शास्त्र मानता है कि सारी आदतें तीन चक्रों में जन्म लेती हैं और विज्ञान के अनुसार ये सारी आदतें दो ग्रंथियों में जन्म लेती हैं। अद्‌भुत समानता है तीनों प्रतिपादनों में। यह सत्य स्पष्ट हो गया कि सारी बुरी वृत्तियां पेडू के पास वाले स्थान से लेकर नाभि के स्थान तक या हृदय के स्थान तक जन्म लेती हैं। इतना ही स्थान है इनका। इस सत्य को समझ लेने पर बदलने की बात को समझने में बहुत सरलता हो जाती है।

भावधारा, लेश्या और आभामण्डल

प्राणी न शुद्ध अर्थ में आत्मा है और न शुद्ध अर्थ में जड़ पदार्थ है। वह एक यौगिक पदार्थ है। चैतन्य और पदार्थ का योग है। आत्मा का लक्षण है चैतन्य। पदार्थ का लक्षण है–वर्ण, गंध, रस और स्पर्श। प्राणी का आभामण्डल दो प्रकार की ऊर्जाओं के संयुक्त विकिरण से बनता है–एक चैतन्य द्वारा प्राण-ऊर्जा का विकिरण और दूसरा भौतिक शरीर द्वारा विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा का विकिरण। प्राण-ऊर्जा के विकिरण का आधार है–व्यक्ति की भावधारा। भाव चैतसिक है और आभामण्डल पौद्गलिक (भौतिक) है, फिर भी भाव और आभामण्डल दोनों परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध रखते हैं। आभामण्डल हमारी भावधारा का प्रतिनिधित्व करता है। इस दृष्टि से भाव के द्वारा आभामण्डल की और आभामण्डल के द्वारा भाव की व्याख्या की जा सकती है। आभामण्डल किसी एक रंग का नहीं होता। उसमें अनेक रंगों का मिश्रण होता है क्योंकि उसका निर्माण लेश्याओं के आधार पर होता है। लेश्या के रंग व्यक्ति के भाव पर निर्भर रहते हैं। जिस व्यक्ति में जिन भावों की प्रधानता होती है, वैसे ही लेश्या के रंग हो जाते

Scanned by CamScanner

हैं। लेश्या में जितने रंग होते हैं, उतने ही रंग आभामण्डल में बिम्बित हो जाते हैं। अच्छे भाव दीप्तिमय होते हैं और बुरे भाव मलिन। आभामण्डल के जो चित्र लिए जाते हैं, उनमें जो रंग प्रतिबिम्बित होते हैं, उनके आधार पर क्षण-क्षण में बदलते हुए भाव भी पकड़ में आ सकते हैं। आभामण्डल के माध्यम से चेतना के परिवर्तन जाने जा सकते हैं। शरीर और मन के स्तर पर घटित होने वाली घटनाएं जानी जा सकती हैं। स्थूल शरीर की घटनाएं पहले सूक्ष्म शरीर में घटित होती हैं। उसका प्रतिबिम्ब आभामण्डल पर अंकित होता है। इसके अध्ययन से भविष्य में घटित होने वाली घटना का भी पता लगाया जा सकता है।

हमारा चित्त नाड़ी-संस्थान में क्रियाशील रहता है और उसका मुख्य केन्द्र है मस्तिष्क। वह अन्तर्जगत् में सूक्ष्म चेतना से जुड़ा हुआ है। वहीं से उसे गतिशीलता के आदेश-निर्देश प्राप्त होते रहते हैं और बाह्य-जगत् में वह अपने प्रतिबिम्बभूत आभामण्डल से जुड़ा हुआ होता है। जैसा चित्त होता है, वैसा आभामण्डल होता है और जैसा आभामण्डल होता है, वैसा चित्त होता है। चित्त को देखकर आभामण्डल को जाना जा सकता है और आभामण्डल को देखकर चित्त को जाना जा सकता है। चित्त निर्मल, तो आभामण्डल निर्मल होता है और चित्त मलिन, तो आभामण्डल मलिन होता है।

हमारी भावधारा जैसी होती है, उसी के अनुरूप मानसिक चिन्तन तथा शारीरिक मुद्राएं और इंगित तथा अंग-संचालन होता है। क्रोध की मुद्रा में रहने वाले व्यक्ति में क्रोध के अवतरण की संभावना बढ़ जाती है। क्षमा की मुद्रा में रहने वाला व्यक्ति के लिए क्षमा की चेतना में जाना सहज हो जाता है।

योगियों का आभामण्डल

सामान्य और स्वस्थ मनुष्यों के आभामण्डलों में आयु, लिंग या जाति की भिन्नता का कोई प्रभाव नहीं देखा जाता। किन्तु योगियों—उच्च चरित्र वाले व्यक्तियों के आभामण्डल सामान्य व्यक्तियों से बिलकुल भिन्न पाए जाते हैं। उनमें दीप्ति अधिक होती है। आभामण्डल को देखकर व्यक्ति के चरित्र को जाना जा सकता है।

प्रयोजन

सत्य की खोज

साधक के मन में यह प्रश्न सहज ही उभर सकता है कि ध्यान

Scanned by CamScanner

क्यों ? प्रवृत्ति को छोड़कर निवृत्ति क्यों ? प्रश्न स्वाभाविक है। हम यदि प्रवृत्ति और निवृत्ति को ठीक से समझ लें तो प्रश्न समाहित हो सकता है। यदि तनिक भी भ्रांति हुई तो ध्यान के प्रति भी हम भ्रांत हो जाएंगे।

प्रवृत्ति है जीवन की नैया को खेने के लिए, जीवन की यात्रा को चलाने के लिए और निवृत्ति है जीवन की सच्चाई और सत्य को पाने के लिए। जो लोग केवल प्रवृत्ति करते हैं, वे जीवन की यात्रा को चला सकते हैं, किन्तु जीवन की सच्चाई को प्राप्त नहीं कर सकते। प्रवृत्ति हमारी जीवन-यात्रा का साधन है, साध्य नहीं। यदि जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति का सम्यक् सन्तुलन नहीं होता, तो व्यक्ति प्रवृत्ति को साध्य मानने लग जाता है और जीवन में एक बहुत बड़ी भ्रांति आ जाती है। इस भ्रांति को मिटाने के लिए और सच्चाई को पाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति ध्यान का अभ्यास करे।

चैतन्य की स्वतंत्र सत्ता का अनुभव

विज्ञान का लक्ष्य भी सत्य को पाना है, जिसके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील है पर वैज्ञानिक खोजों के विषय केवल पदार्थ हैं, परमाणु हैं, चेतना की स्वतंत्र सत्ता उसका विषय नहीं है। विज्ञान ने पदार्थ पर बहुत खोजें की हैं और आज भी उसकी खोज चालू है। पदार्थ के अस्तित्व के कण-कण को छाना जा रहा है। विज्ञान की खोज उपकरणों, यंत्रों और अन्य भौतिक साधनों के माध्यम से हो रही है। इसलिए वह पदार्थ तक ही पहुंच पाएगी, आत्मा तक उसकी पहुंच नहीं हो सकती। चेतन सत्ता उसका विषय भी नहीं बनता। इसलिए वैज्ञानिक जगत ने चेतन की स्वतंत्र सत्ता को अब तक स्वीकार नहीं किया है। उस स्वीकार के कारण आज हमें ध्यान की उपयोगिता इतनी ही लगती है कि उससे तनाव कम होता है, शारीरिक स्वास्थ्य बना रहता है आदि। बस, ध्यान की उपयोगिता समाप्त। यह सच है कि ध्यान से स्नायविक, मानसिक और भावनात्मक तनाव कम होते हैं, स्वास्थ्य सुधरता है, रक्त-चाप संतुलित होता है, किन्तु ध्यान का उद्देश्य केवल शरीर को पुष्ट और स्वस्थ करने का नहीं है। यद्यपि शारीरिक स्वास्थ्य भी कम मूल्यवान् नहीं है और ध्यान का एक उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य भी है, पर सबसे मूल्यवान उद्देश्य है—अपने अस्तित्व का बोध। जब तक व्यक्ति अपने अस्तित्व का बोध नहीं कर लेता, तब तक दुःख को समाप्त नहीं कर सकता। दुःखों को समाप्त करने का एकमात्र साधन है—सत्य की उपलब्धि, अस्तित्व की उपलब्धि।

Scanned by CamScanner

अन्तर्दृष्टि की जागृति

अन्तर्दृष्टि का अर्थ है प्रियता और अप्रियता की अनुभूति से मुक्ति। जब तक हम प्रियता अप्रियता से मुक्त नहीं होते, तब तक हमें सत्य उपलब्ध नहीं होता। हम बड़े-बड़े शास्त्रों को रट लें, तत्त्वों का पारायण कर लें, फिर भी हमें अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती। अन्तर्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि, सम्यक्त्व, सत्य, सब एक ही हैं। ध्यान हम इसलिए कर रहे हैं कि हम अपने अस्तित्व को जानें, ज्ञाता को जानें, द्रष्टा को जानें, द्रष्टा-ज्ञाता, जो पर्दे के पीछे चला गया, हम उसका अनुभव करें। एक वैज्ञानिक उसे नहीं जान सकता, एक ध्यान-साधक उसे जान सकता है। ध्यान के सारे नियम ज्ञाता तक पहुंचाने के लिए हैं। साधक अपने संवेदनों को शुद्ध करता चलता है, भोक्ता-स्वरूप को छोड़ता है और ज्ञाता स्वरूप को प्राप्त करता है। जहां केवल जानने की बात आती है, वहां संवेदन शुद्ध हो जाता है, दृष्टि शुद्ध हो जाती है और ज्ञान शुद्ध हो जाता है।

अनुभव की सच्चाई

डॉ. इर्विन श्रोडिंजर (Erwin Schrodinger) जैसे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक कहते हैं कि "आज वैज्ञानिक इस बात में उलझे हुए हैं कि पदार्थ का मूल कण क्या है ? किन्तु यह कोई बहुत महत्त्व का प्रश्न नहीं है। विज्ञान के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह होनी चाहिए कि क्या चेतन सत्ता है या नहीं ? और पदार्थ का मूल चेतन है या अचेतन ?" वर्तमान में पदार्थ के विषय में अनेक दृष्टियां स्पष्ट हुई हैं। किन्तु चैतन्य के विषय में अब भी केवल वैज्ञानिकों को ही नहीं, धार्मिक लोगों में भी अनेक उलझनें हैं। आज धार्मिक लोग आत्मा के प्रश्न को शास्त्रों के माध्यम से हल करना चाहते हैं, तर्क के द्वारा समाहित करना चाहते हैं, आत्मा को वाङ्मय द्वारा जानना चाहते हैं। यह कितना विरोधाभास है कि एक ओर यह कहा जाता है कि आत्मा तर्कातीत, पदातीत और शब्दातीत सत्य है। दूसरी ओर हम उसे तर्क, पद और शब्द के द्वारा पाना चाहते हैं।

चैतन्य को जानने का एकमात्र उपाय है—स्वयं का अनुभव, अपने संवेदनों का निर्मलीकरण और ऊर्ध्वीकरण। ध्यान के साधक के लिए यह इष्ट है कि वह ***"स्वयं"*** आत्मा को खोजे। वह केवल शास्त्रों पर या मान्यताओं पर निर्भर न रहे, किन्तु स्वयं खोजे। शास्त्रों में लिखा है कि आत्मा है, किन्तु यह एक शाब्दिक सच्चाई है, मान्यता है। ध्यान का प्रयोग

Scanned by CamScanner

किया, अपनी अन्तश्चेतना को जगाया, साक्षात्कार किया और जाना कि आत्मा है। तब वह साधक की ***"अपनी"*** सच्चाई बन जाती है, अनुभव की सच्चाई बन जाती है। ध्यान के द्वारा ही हम अनुभव की सच्चाई तक पहुंच सकते हैं। ध्यान के अतिरिक्त ऐसा कोई माध्यम नहीं है जो हमें शाब्दिक सच्चाई से हटाकर अनुभव की सच्चाई तक पहुंचा दे।

परिवर्तन और रूपान्तरण

व्यक्तित्व का रूपान्तरण

अध्यात्म के आचार्यों ने आत्म-शोधन की प्रक्रिया को इतने सुन्दर ढंग से प्ररूपित किया है कि उसे ठीक समझ कर यदि हम उसका प्रयोग करें तो व्यक्तित्व के रूपान्तरण में कोई कठिनाई नहीं होगी।

लेश्या के शोधन के द्वारा ही जीवन में धर्म सिद्ध हो सकता है। जब कृष्ण, नील और कापोत—ये तीन लेश्याएं बदल जाती हैं और तेजस्, पद्म और शुक्ल—ये तीन लेश्याएं अवतरित होती हैं, तब परिवर्तन घटित होता है। लेश्याओं के शोधन के बिना जीवन नहीं बदल सकता।

धार्मिक होने का अर्थ ही है कि परिवर्तन की यात्रा पर चल पड़ना, रूपान्तरण की ओर प्रस्थान कर देना। यहां से तैजस-लेश्या की यात्रा शुरू हो जाती है, अध्यात्म की यात्रा शुरू हो जाती है। जब तैजस-लेश्या की यात्रा प्रारम्भ होती है तब अध्यात्म के स्पंदन जाग जाते हैं। जब अध्यात्म के स्पंदन जागते हैं, तब परिवर्तन अपने आप शुरू हो जाता है।

अध्यात्म का समूचा मार्ग रूपान्तरण की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का एक अभ्यास-क्रम है। जो व्यक्ति इस अभ्यास-क्रम को स्वीकार कर लेता है, वह निश्चित ही अपनी लेश्याओं को बदल देता है। वह कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओं का अतिक्रमण कर या उन्हें बदलकर तैजस, पद्म और शुक्ल लेश्याओं के स्पन्दनों के अनुभवों में चला जाता है। वहां जाने पर स्वभाव में अपने आप परिवर्तन प्रारम्भ हो जाता है। यह है हमारे स्वभाव-परिवर्तन की प्रक्रिया और इसका साधन है लेश्या-ध्यान।

रासायनिक परिवर्तन

तप की समूची प्रक्रिया, योग की समूची प्रक्रिया और ध्यान की समूची प्रक्रिया आंतरिक रसायन-परिवर्तन की प्रक्रिया है। शक्तिशाली और गरिष्ठ भोजन के द्वारा शरीर में विषैले (Toxic) रसायन पैदा होते हैं,

Scanned by CamScanner

संचित होते हैं और मन में वासना की विकृति पैदा करते हैं। आयम्बिल, उपवास, एकान्तर उपवास, पांच दिन का उपवास, आठ दिन का उपवास—ये सारे बाह्य तप के प्रयोग शरीर के भीतरी रसायनों में परिवर्तन लाते हैं। आसन, प्राणायाम और अन्य यौगिक क्रियाओं के द्वारा रासायनिक परिवर्तन घटित होता है। प्रायश्चित्त, विनय, स्वाध्याय आदि आभ्यन्तर तपश्चर्या के प्रयोग के द्वारा भी रसायनों में परिवर्तन आता है। प्राचीन भाषा के प्रायश्चित्त को आज की भाषा में मनोविश्लेषण या आत्मविश्लेषण कह सकते हैं। प्रायश्चित्त की निर्मल भावना पुरानी ग्रन्थियों को खोल देती है। विनय अहंकार-शून्यता की प्रक्रिया सब प्रकार की तपश्चर्या में रासायनिक परिवर्तन अपने आप घटित होता है।

लेश्याओं का रूपान्तरण

किन्तु रासायनिक परिवर्तन का सबसे बड़ा सूत्र है—ध्यान। चैतन्य-केन्द्रों के ध्यान और लेश्या-ध्यान के द्वारा भीतरी रसायनों में आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है, भाव-संस्थान में परिवर्तन होता है और लेश्याओं में परिवर्तन होता है। जैसा पहले बताया जा चुका है, दुष्प्रवृत्तियों के द्वारा संचित होने वाले कर्म कषायवलय को प्रबल करते रहते हैं। जब संचित कर्म का विपाक होता है—वे फल देने के लिए तैयार होते हैं, तब वे तरंगों और रसायनों के रूप में कषाय-वलय से बाहर आते हैं और ग्रन्थि-तंत्र के माध्यम से वृत्तियों और वासनाओं को पैदा करते हैं। जब तरंगें और रसायन तीव्र विपाक लेकर बाहर आ रहे होते हैं, तब लेश्या-ध्यान (चैतन्य-केन्द्रों पर रंगों के ध्यान) के द्वारा ऐसी तरंगें और ऐसे रसायनों का निर्माण होता है कि वे तीव्र विपाक वाली तरंगें नष्ट हो जाती हैं, रसायन मन्द हो जाते हैं, उनका सामर्थ्य क्षीण हो जाता है और उनका आक्रमण विफल हो जाता है।

भीतर से तीव्र विपाक का जो परिस्राव आता है, उस स्राव को ग्रन्थियां बाहर लाती हैं। लेश्या-ध्यान से ग्रन्थियां शुद्ध होने लगती हैं, लेश्यायें शुद्ध होने लगती हैं, तब अध्यवसाय शुद्ध होने लगते हैं। जब अध्यवसाय शुद्ध होते हैं, तब कषाय के तीव्र विपाक नहीं आ सकते—वे मन्द हो जाते हैं। मन्द विपाक तीव्र वृत्ति, वासना या बुरी आदत का निर्माण नहीं कर सकता।

भावधारा का निर्मलीकरण

लेश्या की परिभाषा करते समय यह बताया गया था कि केन्द्र में

Scanned by CamScanner

मूल आत्मा (चैतन्य) है और उसके चारों ओर अति सूक्ष्म शरीर द्वारा निर्मित कषाय का वलय है। चैतन्य तो मलीन नहीं है, वह तो शुद्ध है, फिर यह अशुद्धता क्यों? कारण स्पष्ट है। उस चैतन्य महासागर के चारों ओर एक वलय है—कषाय के महासागर का। एक प्रश्न और होता है कषाय का महासागर जब चैतन्य के महासागर को घेरे हुए है तो फिर शुद्धि का प्रश्न ही कहां उठता है। जो कुछ बाहर आएगा वह सारा अशुद्ध ही होगा। शुद्ध-लेश्या कैसे होगी? शुद्ध-भाव कैसे होगा? शुद्ध-अध्यवसाय कैसे होगा? कषाय से छनकर और कषाय के रस के साथ मिलकर जो कुछ भी बाहर आएगा वह मलिन, अपवित्र और अशुद्ध ही आएगा। शुद्ध कैसे होगा?

भाव की शुद्धि अध्यवसाय से होती है और अध्यवसाय की शुद्धि कषाय के मन्दीकरण से होती है। कषाय का मन्दीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो केवल ज्ञेय के प्रति जब चैतन्य के स्पंदन जागते हैं, तब उनके साथ कषाय की मलिनता नहीं जुड़ती, उनसे जो अध्यवसाय निर्मित होंगे वे शुद्ध बने रहेंगे। उनसे जो लेश्या बनेगी, वह शुद्ध बनेगी। केवल ज्ञेय के प्रति चैतन्य के स्पन्दन तभी जागते हैं जब रागात्मक या द्वेषात्मक भाव उनके साथ नहीं जुड़ते। यह घटित होता है—केवल ज्ञाता-द्रष्टा भाव के द्वारा जो प्रेक्षा-ध्यान का ही एक रूप है।

कषाय के मन्दीकरण का एक दूसरा रास्ता भी है—ध्यान-साधना के द्वारा मोह के विलय के स्पन्दनों को उत्पन्न करना। जब हम ध्यान का प्रयोग करते हैं, तब हमारे सूक्ष्म-शरीर के अन्दर दो प्रकार के स्पन्दन समानान्तर रेखा में चलते हैं—एक है मोह का स्पन्दन और दूसरा है मोह के विलय का स्पन्दन। दोनों स्पन्दन चलते हैं और वे भाव बनते हैं। कषाय जितना क्षीण होगा, मोह का स्पन्दन उतना ही निर्वीर्य बन जाएंगे, शक्तिशून्य बन जाएंगे। वह समाप्त नहीं होंगे किन्तु उसकी सक्रियता कम हो जाएगी, उनका प्रभाव क्षीण हो जाएगा। जब मोह के विलय का स्पंदन शक्तिशाली होंगे, तब भाव मंगलमय और कल्याणकारी होंगे। जब-जब मोह के स्पन्दन शक्तिशाली होते हैं—नील और कापोत-लेश्या के स्पन्दन शक्तिशाली होते हैं, तब-तब तेजस्-लेश्या और पद्म लेश्या के स्पन्दन क्षीण हो जाते हैं। जब-जब कषाय के स्पन्दन कम होते हैं, तब-तब तेजस्-लेश्या, पद्म-लेश्या और शुक्ल-लेश्या के स्पन्दन तथा भाव शक्तिशाली बनते जायेंगे। इस प्रकार जो तरंगें कषाय का वलय पार कर बाहर आ रही

Scanned by CamScanner

हैं, उन्हें तरंगावस्था में ही तैजस शरीर के स्तर पर प्रशस्त लेश्या के स्पन्दनों को उत्पन्न कर मन्द कर दिया जाता है। यह लेश्या-ध्यान के द्वारा किया जा सकता है। लेश्या-ध्यान में प्रशस्त रंगों के ध्यान द्वारा प्रशस्त लेश्या के स्पन्दन पैदा करने से अप्रशस्त लेश्या के स्पन्दन जो भीतर से आ रहे हैं, उनकी तीव्रता मन्द हो जाती है।

कषाय या अतिसूक्ष्म (कार्मण) शरीर में केवल स्पंदन है, कोरी तरंगें हैं। वहां भाव नहीं है। वहां चेतना के स्पंदन भी हैं और कषाय के स्पंदन भी हैं। दोनों के स्पन्दन ही स्पंदन हैं, तरंगें ही तरंगें हैं। उदाहरणार्थ, क्रोध कषाय का एक रूप है। अति सूक्ष्म शरीर में क्रोध की केवल तरंगें होती हैं। चैतन्य की तरंगों के साथ जब क्रोध की तरंगें मिलती हैं, तो क्रोध के अध्यवसाय बनते हैं। वहां तक कोरी तरंगें हैं, भाव नहीं। बाद में वे तरंगें सघन होकर भाव का रूप लेती हैं, वे लेश्या बन जाती हैं। लेश्या में पहुंचकर भाव बनता है और तरंगें ठोस रूप ले लेती हैं। शक्ति या ऊर्जा पदार्थ में बदल जाती है। तरंग का सघन रूप है भाव और भाव का सघन रूप है क्रिया। जब भाव सघन होकर क्रिया बन जाती है तब वह स्थूल शरीर में प्रगट होती है।

लेश्या-ध्यान के द्वारा कषाय के मंदीकरण की प्रक्रिया को फिर क्रोध के उदाहरण से समझें। क्रोध स्थूल शरीर में प्रगट होने से पहले तक तरंगावस्था में होता है ; तब ही उसकी शक्ति को क्षीण करना होगा। रंगों के ध्यान के द्वारा—शुभ लेश्या के द्वारा ऐसी तरंगों को उत्पन्न करना होगा जो क्रोध को तरंगावस्था में ही समाप्त कर सके या उसकी शक्ति, प्रभाव और सक्रियता को क्षीण कर सके। क्रोध की तरंगें भी ऊर्जा के रूप में हैं और उनको समाप्त करने वाली तरंगें भी ऊर्जा के रूप में हैं।

निस्तरंग की दिशा में प्रस्थान

तीन स्थितियां हैं—१. बुरे विचार २. अच्छे विचार ३. निर्विचार। "बुरे विचार" भी एक तरंग है और "अच्छे विचार" भी तरंग है। दोनों तरंगें हैं। दोनों में तरंग की दृष्टि से कोई अंतर नहीं है। किन्तु एक तरंग और दूसरी तरंग में बहुत बड़ा अन्तर होता है। सामान्य आदमी यह मानता है कि इस संसार में रंग है, रूप है, ध्वनियां हैं, ताप है, सब-कुछ है। किन्तु एक वैज्ञानिक इस भाषा में नहीं सोचेगा। वैज्ञानिक के लिए यह दुनिया न रंगमय है, न रूपमय है, न ध्वनिमय है, न तापमय है। उसके लिए यह

Scanned by CamScanner

जगत् काल और विद्युत् का प्रवाह मात्र है। सब कुछ विद्युन्मय है। ऐसी स्थिति में अच्छा सोचना भी विद्युत् की तरंग है और बुरा सोचना भी विद्युत् की तरंग है। सोचना, चिंतन करना, प्रवृत्ति करना, सब कुछ विद्युत् की तरंग है। यदि हम निस्तरंग की ओर बढ़ना चाहते हैं, तरंगातीत स्थिति में जाना चाहते हैं तो उसकी यही प्रक्रिया होगी कि सबसे पहले बुरी तरंग को समाप्त कर अच्छी तरंग का निर्माण करें। अच्छी तरंग का निर्माण किए बिना बुरी तरंग को समाप्त नहीं किया जा सकता। जिस बुरे चिंतन से व्यक्ति तरंगातीत स्थिति से दूर चला गया था, वह अच्छे चिंतन से उस दिशा में कदम बढ़ा सकता है। यद्यपि अच्छे चिन्तन से व्यक्ति तरंगातीत अवस्था में नहीं पहुंच सकता, किन्तु जहां बुरा चिंतन तरंगातीत दिशा से हमें विमुख कर देता है, वहां अच्छा चिंतन उस दिशा में गति कराता है।

बुरे चिन्तन से अच्छे में आने का सबसे सरल उपाय है—लेश्या-ध्यान। इस ध्यान का अभ्यास किए बिना चिंतन को नहीं मोड़ा जा सकता। सामाजिक संबंधों के कारण व्यक्ति में शत्रुता के भाव आते रहते हैं। दूसरे का अनिष्ट करने की भावना उसमें पनपती है। अप्रिय व्यक्ति के सामने आते ही आंखें तमतमा जाती हैं। विरोधी व्यक्ति की स्मृति होते ही सारी चिंतन-धारा प्रकम्पित हो जाती है। इन प्रतिक्रियाओं को तब तक नहीं रोका जा सकता, जब तक शुद्ध लेश्याओं का ध्यान नहीं किया जाता। प्रशस्त लाल, प्रशस्त पीत और प्रशस्त श्वेत वर्णों का ध्यान कर हम आंतरिक प्रक्रिया को बदल सकते हैं और मन की आंतरिक प्रक्रिया के द्वारा फिर उन वर्णों में परिवर्तन शुरू हो जाता है। तब हम बाहर से भीतर को प्रभावित करते हैं और भीतर से बाहर को प्रभावित करते हैं।

अन्तर्वृत्तियों के शोधन के लिए तैजस और पद्म लेश्या का ध्यान किया जाए। बुरे विचार न उठें, बुरे विचार हमें आक्रांत न करें, हमारे मस्तिष्क को प्रभावित न करें, इसलिए हमें शुक्ल लेश्या का ध्यान करना होगा। हम एक ऐसे कवच का निर्माण करें जिसको भेद कर बुरे विचार न आ पाएं। वे बाहर ही रह जायें। हमारे मस्तिष्क में न आयें। यदि शुक्ल लेश्या के द्वारा हम एक शक्तिशाली कवच बना लेते हैं तो बाहर के खतरे से बच जाते हैं। यदि हम तैजस और पद्म लेश्या का कवच बना लेते हैं, तो भीतर से उठने वाले बुरे विचारों के आक्रमण से बच जाते हैं। इसके बाद अच्छे विचारों की तरंगें पैदा होने लग जाती हैं और ये तरंगें बहुत सहयोगी बनती हैं। ये हमारी अध्यात्म यात्रा में आगे बढ़ने में सहयोग

Scanned by CamScanner

करती है। यद्यपि लेश्या स्वयं तरंग है किन्तु निस्तरंग की दिशा में प्रस्थान के लिए लेश्या-ध्यान बहुत सहयोग करता है।

चिकित्सा पद्धति

हमारे समूचे भाव-तंत्र पर रंगों का प्रभुत्व है। रंगों के द्वारा शारीरिक बीमारियां मिटाई जा सकती हैं, मानसिक दुर्बलताओं को मिटाया जा सकता है और आध्यात्मिक मूर्च्छा को तोड़ा जा सकता है। लेश्या-पद्धति आध्यात्मिक मूर्च्छा को मिटाने की महत्त्वपूर्ण चिकित्सा पद्धति है। दूषित भावों और विकृत विचारों द्वारा जो जहर शरीर में पैदा होता है, जो विष एकत्रित होता है, उसे बाहर निकालने की यह अभूतपूर्व पद्धति है। रंगों के ध्यान से या रंग-चिकित्सा से संचित विष बाहर निकलते हैं और भाव तथा विचार निर्मल बनते हैं। जब भाव पवित्र होते हैं, निर्मल होते हैं तब विचार भी निर्मल होते हैं। विचारों का सम्बन्ध कषाय से नहीं है। विचारों का सम्बन्ध है मस्तिष्क से और ज्ञान से। विचार, स्मृति, चिन्तन, विश्लेषण, चयन, निर्धारण—ये ज्ञान की जितनी शाखाएं हैं, इन सबका सम्बन्ध मस्तिष्क से है। जितने भाव हैं, उन सबका संबंध हमारी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से है। शरीर में दो तंत्र उनकी अभिव्यक्ति के हैं—एक है ग्रंथि-तंत्र और दूसरा है नाड़ी-तंत्र। हमारे भावों को व्यक्त करता है ग्रंथि-तंत्र और विचारों का निर्माण करता है नाड़ी-तंत्र। पहला है भाव, दूसरा है विचार। विचार से भाव नहीं बनता, किंतु भाव से विचार बनता है। जिस लेश्या का भाव होता है, वैसा ही विचार बन जाता है। भाव अंतरंग-तंत्र है और विचार कर्म-तंत्र है। यह करने वाला तंत्र है भाव। इसलिए हमें विचारों पर अधिक ध्यान देने की जरूरत नहीं है। विचारों पर वे लोग ध्यान दें जो बाहर ही बाहर घूमते हैं। जो भीतर की यात्रा कर रहे हैं, उन्हें विचार पर ध्यान देने की जरूरत नहीं है। वे भाव पर ध्यान दें, भाव को निर्मल करें।

भावों को निर्मल बनाने का सबसे सरल उपाय है—रंगों का ध्यान करना। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपाय है। प्रशस्त रंगों का ध्यान भावों को निर्मल बनाने में उपयोगी होता है। लाल, पीला और सफेद—ये तीन रंग भाव-शुद्धि के कारण हैं।

जब हम इन प्रशस्त रंगों का ध्यान करते हैं और उनसे तन्मयता प्राप्त करते हैं, तब हमारे भाव परिवर्तित हो जाते हैं। विचारने और साधने की जरूरत नहीं, सहज बदल जाते हैं। सारे स्पन्दन बदल जाते हैं।

Scanned by CamScanner

विचारों के, विकल्पों के और मोह के स्पंदन इन प्रशस्त रंगों के स्पंदनों से रूक जाते हैं, निर्वीर्य हो जाते हैं। साथ-साथ कषाय-विलय और मूर्च्छा-विलय के जो स्पंदन होते हैं, उन्हें शक्ति मिलती है और वे सक्रिय हो जाते हैं।

हम भावों को परितर्वन कर लेश्याओं को शुद्ध कर भाव-संस्थान को गंगाजल जैसा निर्मल बनायें, गंगोत्री जैसा निर्मल बनायें और शरीर, मन तथा अध्यात्म की चिकित्सा करें। हम शरीर के दोष और अपाय, मन के दोष और अपाय तथा अध्यात्म के दोष अर्थात् मूर्च्छा के दोष और अपाय—इन सब अपायों को समाप्त करें और उपायों का प्रयोग करें।

निष्पत्तियां

परिवर्तन का प्रारम्भ

तेजस् लेश्या का बाल-सूर्य जैसा लाल रंग है। लाल रंग निर्माण का रंग है। लाल रंग का तत्त्व है—अग्नि। हमारी सक्रियता, शक्ति, तेजस्विता, दीप्ति, प्रवृत्ति सबका स्रोत है—लाल रंग। लाल रंग हमारा स्वास्थ्य है। डॉक्टर सबसे पहले देखता है कि रक्त में श्वेत कण कितने हैं और लाल कण कितने हैं ? लाल कण कम होते हैं तो वह अस्वास्थ्य का द्योतक है। लाल रंग में यह क्षमता है कि वह बाह्य जगत् से अन्तर्जगत् में ले जा सकता है। जब तक कृष्ण, नील और कापोत लेश्या काम करती है, तब तक व्यक्ति अन्तर्मुखी नहीं हो सकता, आध्यात्मिक नहीं हो सकता, अन्तर्जगत् की यात्रा नहीं कर सकता। वह आंतरिक सुखों का अनुभव नहीं कर सकता। हम प्रेक्षा-ध्यान की प्रक्रिया में आंतरिक सूक्ष्म स्पन्दनों का अनुभव करना सीखाते हैं। चित्त जब सूक्ष्म होता है, तब वह सूक्ष्म कंपनों को पकड़ने में सक्षम हो जाता है। जब तैजस्-शरीर के साथ हमारा संपर्क स्थापित होता है, तब रंग दीखने लग जाते हैं।

जब हम दर्शन केन्द्र पर बाल सूर्य के अरुण रंग का ध्यान करते हैं और जब वह ध्यान सधता है, अरुण रंग प्रगट होता है, दीखने लग जाता है, तब इस लाल रंग के अनुभव से, तेजस् लेश्या के स्पन्दनों की अनुभूति से अन्तर्जगत् की यात्रा प्रारम्भ होती है। आदतों में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो जाता है। कृष्ण, नील और कापोत-लेश्या के काले रंगों से होने वाली आदतें तेजस् लेश्या के प्रकाशमय लाल रंग से समाप्त होने लगती हैं। अचानक स्वभाव में परिवर्तन आता है।

Scanned by CamScanner

अनिर्वचनीय एवं अपूर्व आनन्द

जब तेजस् लेश्या के स्पन्दन जागते हैं, तब व्यक्ति को अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति होती है। उस आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला ही उसे जान सकता है, वह उसे बता नहीं सकता। जिस व्यक्ति ने तेजोलेश्या का कभी प्रयोग नहीं किया, ध्यान नहीं किया, वह व्यक्ति इस स्थूल शरीर से परे भी कोई आनन्द होता है, इन विषयों से परे भी कोई सुखानुभूति है, नहीं समझ पाता, कल्पना भी नहीं कर पाता। जब तक वह प्रयोग से नहीं गुजरता, तब तक उसे ज्ञात ही नहीं होता कि ऐसा अनिर्वचनीय सुख भी हो सकता है। जो सुख का अनुभव होता है, वह अपूर्व होता है। व्यक्ति सोचता है—मैंने मान रखा था कि सुख तो पदार्थ से ही मिलता है किन्तु आज यह स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि जैसा सुख तेजस् लेश्या के स्पन्दनों के जागने पर होता है, वैसा सुख जीवन में किसी भी पदार्थ से नहीं मिल सकता। भ्रांति टूट जाती है, धारणाएं बदल जाती हैं।

वास्तविकता यह है कि पदार्थों में सुख है ही नहीं। हमारे भीतर एक विद्युत्धारा है। वह सुख का निमित्त बनती है। वैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि विद्युत् के प्रकम्पनों के बिना कोई सुख का संवेदन नहीं हो सकता। जो सुख, इन्द्रिय-विषयों के उपभोग से उपलब्ध किया जाता है, वही सुख इन्द्रिय-विषयों के बिना, कल्पना से भी किया जाता है और वही सुख केवल विद्युत् के प्रकंपन पैदा करके भी किया जा सकता है। कान के बिन्दु पर या स्वाद के बिन्दु पर इलेक्ट्रोड लगाकर प्रकंपन पैदा किया जाए, तो पदार्थ के बिना भी उनके उपभोग की-सी सुख-संवेदना का अनुभव होता है। वस्तु के संयोग से जो प्रतिक्रियाएं पैदा होती हैं, वे प्रतिक्रियाएं वस्तु के बिना भी विद्युत् के प्रकंपनों से पैदा की जा सकती हैं। इसलिए यह तथ्य प्रमाणित हो गया कि सुख का संवेदन विद्युत्-प्रकंपन सापेक्ष है।

जब तेजस लेश्या जागती है, तब विद्युत् के प्रकम्पन बहुत बढ़ जाते हैं, तीव्रतम हो जाते हैं। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास करने वाले को अनुभव होता है—पीत-लेश्या से चित्त प्रशांत होता है, शांति बढ़ती है और आनन्द बढ़ता है। दर्शन की शक्ति पीले रंग से विकसित होती है। दर्शन का अर्थ है—साक्षात्कार, अनुभव। इससे तर्क की शक्ति नहीं बढ़ती, साक्षात्कार की शक्ति बढ़ती है, अनुभव की शक्ति का विकास होता है।

Scanned by CamScanner

पीले रंग की क्षमता है—मन को प्रसन्न करना, बुद्धि का विकास करना, दर्शन की शक्ति को बढ़ाना, मस्तिष्क और नाड़ी-संस्थान को सुदृढ़ करना, सक्रिय बनाना। यदि हम मस्तिष्क तथा चाक्षुष-केन्द्र पर पीले रंग का ध्यान करते हैं, तो ज्ञानतंतु विकसित होते हैं।

जितेन्द्रियता

जब हम चमकते हुए पीले रंग के परमाणुओं को आकर्षित करते हैं तो जितेन्द्रिय होने की स्थिति निर्मित हो जाती है। हम जितेन्द्रिय हो सकते हैं। पद्म लेश्या का अभ्यास करने वाला व्यक्ति जितेन्द्रिय हो जाता है। कृष्ण और नील लेश्या में रहने वाला व्यक्ति अजितेन्द्रिय होता है। ये दोनों प्रकार के परमाणु एक दूसरे के विरोधी हैं। जब तक काले रंग के परमाणुओं का प्रभाव बना रहता है, तब तक हम जितेन्द्रिय नहीं हो सकते। जब पीले रंग के परमाणुओं से हमारा लेश्या-तंत्र और आभामण्डल सक्रिय होता है तब हमें जितेन्द्रिय होने की सुविधा मिल जाती है।

शुक्ल-लेश्या का ध्यान : निष्पत्तियां

शुक्ल लेश्या का रंग पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा श्वेत रंग है। श्वेत रंग पवित्रता, शांति, शुद्धि और निर्वाण का द्योतक है। तेजो लेश्या और पद्म-लेश्या के द्वारा बढ़ी हुई गर्मी को शुक्ल-लेश्या उपशांत कर देती है और निर्वाण घटित हो जाता है। शुक्ल लेश्या उत्तेजना, आवेग, आवेश, चिन्ता, तनाव, वासना, कषाय, क्रोध आदि को शांत कर पूर्ण शांति का अनुभव कराती है।

आत्म-साक्षात्कार

साधक ऐसा न माने कि तेजस् लेश्या और पद्म लेश्या के स्पन्दन पकड़ में आ गए तो यात्रा सम्पन्न हो गई। इससे आगे की यात्रा अभी शेष है। इन्द्रिय-चेतना मनःस्थ चेतना और चित्त की चेतना वाले शरीर में एक ऐसा तत्त्व भी है जो इन चेतनाओं से परे है। उसका साक्षात्कार हमें इष्ट है। आत्म-साक्षात्कार ही लेश्या-ध्यान का लक्ष्य है, जो शुक्ल-लेश्या के ध्यान से प्राप्त होता है। इस बिन्दु पर पहुंचकर ही हम भौतिक और आध्यात्मिक जगत् के अन्तर को समझ सकते हैं।

आत्म-साक्षात्कार की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है—निर्विकल्प चेतना का निर्माण।

Scanned by CamScanner

अव्यथ चेतना

जिस दुनिया में निर्विकल्प चेतना का महत्त्व है, सचमुच वह कोई दूसरे प्रकार की दुनिया है। यह काल्पनिक बात नहीं है। यह यथार्थ है। जब यह चेतना जागती है, तब सारी असमाधियां दूर हो जाती हैं। सबसे पहला सुफल होता है—अव्यथ चेतना की जागृति। निर्विकल्प चेतना में जीने वाला व्यक्ति निव्यर्थ जीवन जीता है। उसकी चेतना में व्यथा नहीं होती। उसके सामने कितना ही प्रतिकूल वातावरण उपस्थित हो, भयंकर परिस्थितियां और समस्याएं हों, वह कभी व्यथित नहीं होता। जैसे सोये हुए व्यक्ति के सामने घटने वाली घटना का उस पर कोई असर नहीं होता, वैसे ही निर्विकल्प चेतना में जीने वाले व्यक्ति पर घटनाओं का कोई असर नहीं होता। कोई भी घटना उसे क्षुब्ध नहीं कर पाती। वह घटना को जान लेता है, भोगता नहीं। वह केवल ज्ञाता रहता है, भोक्ता नहीं।

अमूढ़ चेतना

दूसरा सुफल यह होता है कि चेतना असम्मोह की स्थिति में चली जाती है। उसमें फिर मूढ़ता पैदा नहीं होती। इस दुनिया में मूढ़ता पैदा करने वाले अनेक तत्त्व हैं। व्यक्ति एक शब्द सुनता है, एक रूप देखता है और सम्मोहित हो जाता है। उसकी चेतना संमूढ़ बन जाती है। एक विचार सामने आता है और वह संमूढ़ बन जाता है। पग-पग पर संमूढ़ता के कारण बिखरे पड़े हैं। वह इनमें फंस जाता है। सारे सम्मोहन विकल्प-चेतना में जागते रहते हैं। विकल्प उभरता है, साथ-साथ मूढ़ता उभरती है। निर्विकल्प चेतना के उपलब्ध होने पर चित्त मूढ़ नहीं बनता, सम्मोहन समाप्त हो जाते हैं।

विवेक चेतना

तीसरा सुफल यह होता है कि उससे विवेक-चेतना जाग जाती है। विवेक-चेतना के जागने पर साधक में पार्थक्य-शक्ति विकसित हो जाती है। आत्मा और पुद्गल का स्पष्ट भेद उसे साक्षात् हो जाता है।

व्युत्सर्ग-चेतना

चौथी सुफल यह होता है कि जब विवेक-चेतना पुष्ट होती है तब व्युत्सर्ग की क्षमता बढ़ती है। त्याग और विसर्जन की शक्ति का विकास होता है। व्युत्सर्ग चेतना से त्याग की शक्ति प्रबल होती है।

Scanned by CamScanner

यही हमारा गन्तव्य है, यही हमारी मंजिल है। जैसे-जैसे चेतना का विकास होगा, जैसे-जैसे विकल्पों को कम करते हुए निर्विकल्प चेतना के क्षणों में जीने का अभ्यास होगा, वैसे-वैसे वह चेतना पुष्टि होगी और चेतना का वह अनन्त सागर एक दिन निस्तरंग और ऊर्मि-विहीन बन जाएगा। उस स्थिति में, उस परम सत्य का साक्षात्कार होगा जिसके लिए हजारों-हजारों लोग सदा उत्सुक रहते हैं।

अभ्यास

१. व्यक्ति के मन पर रंगों के प्रभाव को समझाइये।

२. रंग व्यक्ति की मनःकायिक बीमारियों पर क्या प्रभाव डालते हैं?

३. आभामण्डल का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए आभामण्डल के रंग और रोगों के सम्बन्ध को प्रकट कीजिए।

४. वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लेश्या की व्याख्या कीजिए।

५. द्रव्य लेश्या और भावलेश्या का अन्तर स्पष्ट कीजिए और व्यक्ति की वृत्तियों के संदर्भ में लेश्यातंत्र का महत्त्व बताइये।

६. लेश्या-ध्यान की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए।

७. व्यक्तित्व के परिवर्तन और रूपांतरण में लेश्या के शोधन की महत्ता पर प्रकाश डालिए।

८. भावधारा का निर्मलीकरण क्या है और यह कैसे प्राप्त होता है?

६. लेश्या-ध्यान की निष्पत्तियों को स्पष्ट कीजिए।

Scanned by CamScanner

अनुप्रेक्षा

वैज्ञानिक आधार

मनोविज्ञान में यह सिद्धांत निरूपित हुआ है कि जो संवेग बार-बार उपयोग में आते हैं, वे स्थाई भाव में बदल जाते हैं और अनेक स्थाई भाव मिलकर चरित्र का निर्माण करते हैं। जैसे स्थाई भाव होते हैं, वैसे ही मनुष्य की इच्छाएं होती हैं। सिग्मण्ड फ्रायड नामक मनोवैज्ञानिक ने यह सिद्धांत निरूपित किया कि इच्छाओं के दमन से मानसिक बीमारियां उत्पन्न होती हैं। जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छा का दमन करता है, तो वह इच्छा उसके मन के एक हिस्से–अवचेतन में जाकर शरण ले लेती है। मन के तीन भाग होते हैं–(१) चेतन (Consicious) (२) अर्ध चेतन या अवचेतन (subconscious) (३) अचेतन (unconsicious)। जो इच्छा अपूर्ण रह जाती है, वह अवचेतन मन में चली जाती है। वह व्यक्ति स्वप्नों के माध्यम से उस इच्छा की पूर्ति करता है। ऐसी अनेक दमित इच्छाएं मनोरोग पैदा कर देती हैं।

इस तरह स्वप्नों के विश्लेषण से रोग के कारण का पता चलता है और उसका उपचार सिग्मण्ड फ्रायड, फ्रेन्ज मेस्मर आदि ने 'सम्मोहन' (hypnotism) के प्रयोग से उसमें अवचेतन मन में गई हुई इच्छा का निरसन या रूपान्तरण करने की कोशिश की। सम्मोहन के द्वारा भावना का रूपांतरण करने की इस विद्या ने यूरोप में तहलका मचा दिया। सम्मोहन के माध्यम से शरीर को गहरा शिथिल किया जाता है और उसके बाद जो भी भावना पहुंचानी होती है, रोगी के मन में गहराई तक पहुंचाई जाती है। पुरानी अतृप्त इच्छा का स्थान नई भावना ले लेती है और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

सुप्रसिद्ध मनश्चिकित्सक जुंग ने शरीर को शिथिल-अवस्था में लाने के लिए "स्वतः सूचना" (auto-suggestion) का प्रयोग किया। स्वतः सूचना द्वारा अपने शरीर को शिथिल अवस्था में लाकर उसमें, 'भावना' का प्रयोग किया और व्यक्ति निरोग हो गया। 'सम्मोहन' के बदले 'स्व-सम्मोहन'

Scanned by CamScanner

(self-hypnotism) ज्यादा निरापद है। इससे रोगी किसी का भी गुलाम नहीं बनता और अपने व्यक्तित्व की सुरक्षा करने में सक्षम रहता है।

जब हमारा दृष्टिकोण गलत होता है, तो हमारी इच्छाएं भी अनंत हो जाती हैं। जब भावना या अनुप्रेक्षा के द्वारा दृष्टिकोण बदल जाता है, तो इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं। "ये भोग हमें सुख नहीं देते, बल्कि बंधन में जकड़ने वाले हैं। जिस विषयासक्ति (या संग) को सार समझते थे और जिसके लिए इतने बेचैन थे, वह सार नहीं, बल्कि असार है, क्योंकि वह हमारे बन्धन और अतृप्ति का कारण है।"—जब इस 'संसार भावना' की सच्चाई को हम जान लेते हैं और यह भावना हमारे मन और मस्तिष्क में भली-भांति छा जाती है, तब सारी भोग की इच्छाएं स्वतः निरस्त हो जाती हैं और सिग्मण्ड फ्रायड का वह तर्क भी समाप्त हो जाता है जिसके चलते दमित और अतृप्त भोगेच्छाएं मनोरोग का कारण बनती हैं। भावना या अनुप्रेक्षा का यह एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक आधार है। अनुप्रेक्षा में पहले शरीर को स्थिर, शिथिल और जागरूक किया जाता है, तब किसी भी भावना को मन की गहराई तक पहुंचा दिया जाता है। पुरानी मिथ्या भावनाओं का निरसन हो जाता है और नई सम्यक् भावनाओं को बार-बार के अभ्यास से स्थाई भाव का रूप देकर चरित्र का अंग बना दिया जाता है।

एक चिकित्सा पद्धति का नाम है—फेथ हीलिंग (Faith healing) यानि "आस्था द्वारा रोग-चिकित्सा"। यह बहुत प्राचीनकाल से लगातार अब तक प्रचलित है। आधुनिक सभ्यता वाले पश्चिमी देशों में जहां अन्य चिकित्सा-पद्धतियां चरम विकास पर पहुंची हैं, वहां पर भी "फेथ हीलिंग" की पद्धति प्रचलित है। प्रश्न है—आस्था घनीभूत कैसे हो? हमारा अपने "ईश्वर" यानी आंतरिक शक्तियों के साथ संपर्क स्थापित कैसे हो? जब व्यक्ति में इस आस्था का निर्माण हो जाता है कि शारीरिक या मानसिक बीमारियां मात्र एक संयोग है और जो संयोग होता है उसका निश्चित वियोग होता है, "मैं दुःख भोगने के लिए नहीं जन्मा हूं", तब वह बाहरी साधनों का सहारा लिए बिना रोग और दुःख से मुक्त हो जाता है। उसके दुःख का संवेदन समाप्त हो जाता है। यह 'आस्था के द्वारा रोग-चिकित्सा' और कुछ नहीं, वरन् 'स्वयं सूचना' या आत्म-सम्मोहन के द्वारा भावना का दृढ़ीकरण है।

भावना के प्रयोगों के उपचारात्मक मूल्य को आधुनिक आयुर्विज्ञान के चिकित्सकों द्वारा भी स्वीकृत किया गया है। डॉ. स्टीफन ब्लेक ने

Scanned by CamScanner

'माइंड एण्ड बोडी' नामक पुस्तक में लिखा है—"गहरी शिथिल अवस्था में रोगियों को लाकर सूचनात्मक भावना द्वारा उनके शारीरिक व्यवहार में उल्लेखनीय परिवर्तन लाया जा सकता है—इस बात को आज प्रचुर प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया गया है।"

भावना का अर्थ केवल कुछ सोच लेना मात्र नहीं है। उसका अर्थ है--हमारे ज्ञान-तंतुओं को तथा कोशिकाओं को अपने वशवर्ती कर लेना, उन पर अपनी भावना को अंकित कर देना। हमारे शरीर में अरबों-खरबों न्यूरॉन्स हैं, तंत्रिका-कोशिकाएं हैं। वे न्यूरॉन्स हमारी अनेक प्रवृत्तियों का नियमन करते हैं। जो संकल्प न्यूरॉन तक पहुंच जाता है, वह सफल हो जाता है। न्यूरॉन्स बड़े-बड़े काम संपादित करते हैं। इनकी कार्यप्रणाली को समझना बहुत ही कठिन है। अरबों-खरबों की संख्या में ये ज्ञान-तंतु हमारे मस्तिष्क में बिखरे पड़े हैं। इनका मन की शक्ति के जागरण में बहुत बड़ा उपयोग है। इन ज्ञान-तंतुओं में विचित्र क्षमताएं हैं, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। सम्मोहन का प्रयोग सूचना के आधार पर चलता है। सूचना के आधार पर शारीरिक अवयव भी उसी प्रकार काम करने लग जाते हैं। जब सूचनाओं के आधार पर ज्ञान-तंतु काम करने में तत्पर रहते हैं तब हम उनसे लाभ क्यों नहीं उठाएं? अपने आप सूचना दें। पुराने को बदलने के लिए, नए को घटित करने के लिए सूचनाएं दें। उन तंतुओं के साथ आत्मीयता स्थापित करें। आप जो होना चाहेंगे, वह अवस्था घटित होने लगेगी। परिणमन प्रारंभ हो जाएगा। मन की शक्ति का विकास होने लगेगा।

ब्रेन वाशिंग का मुख्य साधन-भावना

भावना मस्तिष्क की धुलाई करने का बहुत बड़ा साधन है। एक ही बात को बार-बार दोहराते जाएं, उसकी पुनरावृत्ति करते जाएं, ऐसा करते-करते एक क्षण ऐसा आता है कि पुराने विचार छूट जाते हैं और नए विचार चित्त में जम जाते हैं। जब तक हमारी यह धारणा जमी हुई है कि सुख-दुःख देने वाला तीसरा व्यक्ति है, तब तक आदमी का रूपांतरण नहीं होता। भावनायोग के द्वारा जब इस विचार की धुलाई हो जाती है, इस विचार को उखाड़ दिया जाता है, तब सुख-दुःख की कोई भी घटना घटित होने पर आदमी यह नहीं मानेगा कि सुख-दुःख देने वाला स्वयं के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति है। आदमी फिर यही सोचेगा, मैंने ऐसा ही

Scanned by CamScanner

कोई कृत्य किया है, कोई ऐसा आचरण किया है, उसी का यह परिणाम सामने आ रहा है। पूरी दृष्टि अपनी सीमा में चली जाएगी।

प्रश्न होता है, क्या एक बात को बार-बार दोहराने से संस्कार धुल जाता है? नाजियों का यह प्रसिद्ध सूत्र था—एक झूठ को हजार बार दोहराओ; वह सच हो जाएगा। हजार बार दोहराने से एक झूठ सच बन सकता है तो क्या हजार-लाख बार दोहराने से सच सच नहीं बनेगा? आवृत्ति का भी अपना महत्त्व है। आज विज्ञान का विद्यार्थी जानता है कि सूक्ष्म तथ्य को पकड़ने के लिए आवृत्ति पर ही ध्यान देना होता है। किस-किस फ्रीक्वेन्सी में क्या-क्या पकड़ा जा सकता है, यह वह भली-भांति जानता है।

समूचा आकाश ध्वनियों के प्रकंपनों से भरा पड़ा है। पर हमारे कान या अन्य यन्त्र सभी ध्वनियों को नहीं पकड़ पाते। सभी अमुक-अमुक ध्वनि-प्रकम्पनों को ही पकड़ पाते हैं। यह भी आवृत्ति के सिद्धांत पर ही फलित होता है। तरंग-दैर्ध्य और तरंगों की ह्रस्वता, लम्बी तरंगें और छोटी तरंगें, तरंग-दैर्ध्य (**wave-length**) को पकड़ना और आवृत्तियों (**frequency**) को पकड़ना—ये दोनों तथ्य जब ज्ञात हो जाते हैं, तब भावना का मूल्य अपने आप समझ में आ जाता है। हम भावना की कितनी आवृत्तियां करते हैं, किस तरंग की लम्बाई-चौड़ाई के साथ करते हैं, इस पर हमारे संस्कारों की धुलाई निर्भर करती है। मन्त्र और जप अनुप्रेक्षा ही है। यदि मन्त्र का प्रयोग करने वाला यह नहीं जानता कि किस मन्त्र का किस आवृत्ति में उच्चारण करना चाहिए, किस तरंग के साथ करना चाहिए, तो उस मन्त्र का प्रभाव नहीं होता और पूरी आवृत्तियां होने तक वह सिद्ध भी नहीं होता।

अनुकरण और अभ्यास

चरित्र-निर्माण का स्थूल जगत् में भी बहुत बड़ा फार्मूला या तरीका है। आदमी स्वभाव से अपने बड़ों का अनुकरण करता है, उनके गुणों या अवगुणों का अनुकरण करता है। फिर उसी अनुकरण का बार-बार अभ्यास होता है और वही अनुकरण उसकी आदत बन जाता है। अच्छा अनुकरण करके अनेक लोग ऊंचाइयों पर पहुंचे हैं तो बुरा अनुकरण करके लोग पतन के गड्ढे में भी गिरते देखे जाते हैं। नशे में जितनी भी आदतें हैं, वे अनुकरण से सीखी जाती है। बाद में निरन्तर के अभ्यास से वे आदत बन जाती हैं। यह जान लेने के बाद भी कि ये आदतें बहुत खराब हैं—इससे

Scanned by CamScanner

अनेक बुराइयां उत्पन्न होती हैं, आदमी इनको छोड़ने में कठिनाई अनुभव करता है। अगर बुरी आदतों के अनुकरण और अभ्यास से व्यक्ति बुरा बनता है, तो अच्छी आदतों का अनुकरण और अभ्यास का अनुकरण और अभ्यास करवाकर अच्छे नागरिक क्यों नहीं बनाए जा सकते? यही अनुप्रेक्षा और भावना का कार्य है, जिसका अधिकतम उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में 'मूल्यपरक शिक्षा' के लिए किया जा सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण

ध्यान का अर्थ है प्रेक्षा, देखना। उसकी समाप्ति होने के पश्चात् मन की मूर्च्छा को तोड़ने वाले विषयों का अनुचिंतन करना अनुप्रेक्षा है। जिस विषय का अनुचिन्तन बार-बार किया जाता है या जिस प्रवृत्ति का बार-बार अभ्यास किया जाता है, उससे मन प्रभावित होता है, इसलिए उस चिन्तन या अभ्यास को भावना कहा जाता है।

जिस व्यक्ति को भावना का अभ्यास हो जाता है उसमें ध्यान की योग्यता आ जाती है। ध्यान की योग्यता के लिए चार भावनाओं का अभ्यास आवश्यक है :

१. ज्ञान भावना—राग-द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से जानने का अभ्यास।

२. दर्शन भावना—राग-द्वेष और मोह से शून्य होकर तटस्थ भाव से देखने का अभ्यास।

३. चरित्र भावना—राग-द्वेष और मोह से शून्य समत्वपूर्ण आचरण का अभ्यास।

४. वैराग्य भावना—अनासक्ति, अनाकांक्षा और अभय का अभ्यास।

मनुष्य जिसके लिए भावना करता है, जिस अभ्यास को दोहराता है, उस रूप में उसका संस्कार निर्मित हो जाता है। यह आत्म सम्मोहन की प्रक्रिया है। इसे 'जप' भी कहा जा सकता है। आत्मा की भावना करने वाला आत्मा में स्थित हो जाता है। 'सोऽहं' के जप का यही रहस्य है। 'अर्हम्' की भावना करने वाले में 'अर्हम्' होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। कोई व्यक्ति भक्ति से भावित होता है, कोई ब्रह्मचर्य से और कोई सत्संग से। अनेक व्यक्ति नाना भावनाओं से भावित होते हैं। जो किसी भी कुशल कर्म से अपने को भावित करता है, उसकी भावना उसे लक्ष्य की ओर ले जाती है।

Scanned by CamScanner

साधनाकाल में ध्यान के बाद स्वाध्याय और स्वाध्याय के बाद फिर ध्यान करना चाहिए। स्वाध्याय की सीमा में जप, भावना और अनुप्रेक्षा—इन सबका समावेश होता है। यथासमय और यथाशक्ति इन सबका प्रयोग आवश्यक है। 'ध्यान-शतक' में बताया गया है कि ध्यान को सम्पन्न कर अनित्य आदि अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान में होने वाले विविध अनुभवों में चित्त का कहीं लगाव न हो, इस दृष्टि से अनुप्रेक्षा के अभ्यास का बहुत महत्त्व है। धर्मध्यान के पश्चात् चार अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास किया जाता है—

१. एकत्व अनुप्रेक्षा
२. अनित्य अनुप्रेक्षा
३. अशरण अनुप्रेक्षा
४. संसार अनुप्रेक्षा

अनुप्रेक्षा क्या है?

प्रेक्षा-ध्यान का दूसरा अंग है—अनुप्रेक्षा। अनुप्रेक्षा का अर्थ है—ध्यान में जो कुछ हमने देखा, उसके परिणामों पर विचार करना। 'अनु' का अर्थ है—बाद में होने वाला। ध्यान में जो देखा, प्रेक्षा में जो देखा, देखने के बाद उसकी प्रेक्षा करना, परिणामों पर विचार करना, यह है अनुप्रेक्षा। 'अनु' अर्थात् बाद में, प्रेक्षा अर्थात् विचार करना। जैसे—हमने देखा कि शरीर के अमुक भाग में स्पन्दन हो रहा है। परमाणु आ रहे हैं, जा रहे हैं। परमाणुओं का उपचय हो रहा है, अपचय हो रहा है, परमाणु घट रहे हैं, बढ़ रहे हैं। यह सारा देखा। अब सोचना है, उसका परिणाम क्या होगा? हम अनित्य अनुप्रेक्षा करेंगे कि जहां परमाणुओं का स्पन्दन है, आना-जाना है, वह नित्य नहीं हो सकता, वह अनित्य होगा। हम समझ लेंगे कि शरीर अनित्य है। शरीर अनित्य है—इसे जानने का आधार क्या है? इसे जानने का आधार है प्रेक्षा। जब हमने प्रेक्षा में यह देखा कि शरीर में स्पन्दन है, कंपन है, गति है, परमाणुओं का आना-जाना है, परमाणुओं का चय-अपचय है, इसका अर्थ है कि वह अनित्यधर्मा है। इस अनित्यता का अनुभव करना, विचार करना, चिन्तन करना—यह है अनित्य अनुप्रेक्षा।

जीवन-विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है—अनुप्रेक्षा। सचाइयों को ज्ञात करने के लिए प्रेक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है, किन्तु आदतों को बदलने के लिए अनुप्रेक्षा को 'सजेस्टोलॉजी' कहा जा सकता है। अनेक वैज्ञानिक इस पद्धति का प्रयोग करते हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में इसका प्रयोग हो रहा

Scanned by CamScanner

है। 'सजेशन' दो प्रकार से दिया जा सकता है। स्वयं व्यक्ति को सजेशन (सुझाव) देता है या अन्य व्यक्ति के सजेशन को स्वयं सुनता है। दोनों प्रकार प्रचलित हैं। इन सुझावों के द्वारा अकल्पित बातें घटित हो जाती हैं।

अनुप्रेक्षा का प्रयोग सुझाव-पद्धति का प्रयोग है। यह 'ऑटो-सजेशन'—स्वयं को स्वयं के द्वारा सुझाव देने की पद्धति है।

एक आदमी यदि प्रतिदिन सप्ताह तक यह सुझाव दे कि मैं बीमार हूं, तो निश्चित ही वह बीमार हो जाएगा। दूसरा व्यक्ति यदि यह सजेशन देता है कि मैं स्वस्थ हूं, मैं स्वस्थ हूं तो वह स्वास्थ्य का अनुभव करने लग जाएगा, सुझाव की पद्धति को समझकर सुझाव दें, बार-बार सुझाव दें, तो स्वास्थ्य बढ़ता जाएगा।

अनुप्रेक्षा की पद्धति स्वभाव-परिवर्तन की अचूक पद्धति है। इसके द्वारा जटिलतम आदत को बदला जा सकता है। आदत चाहे शराब पीने की हो, तम्बाकू सेवन की हो, चोरी की हो, झूठ या कपट की हो, बुरे आचरण और बुरे व्यवहार की हो, अनुप्रेक्षा-पद्धति से उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। जीवन-विज्ञान की पद्धति में 'प्रेक्षा', 'अनुप्रेक्षा' के प्रयोग कराए जाते हैं। पढ़ाया कुछ भी नहीं जाता। न कोई पुस्तक, न कोई भाषा, न कोई साहित्य, न कोई शोध या समीक्षा, न इतिहास, न गणित, न भूगोल, न विज्ञान। कुछ भी नहीं। केवल प्रयोग और केवल प्रयोग। प्रयोग के लिए साधन चाहिए। ये साधन बाहर से उपलब्ध करने की जरूरत नहीं है। ये अपने पास हैं। शरीर, वाणी, श्वास और वर्ण (रंग)—ये सब हमारे पास हैं। बस, केवल इनका प्रयोग करना है। कहां और कैसे प्रयोग करना है, यह सीखना पड़ता है। हमारे पास सब कुछ है। केवल अपेक्षा है सही संयोजन की। उनका कब, कहां, कैसे संयोजन किया जाए। जो व्यक्ति इसको जान लेता है, वह अपने भीतर की शक्तियों का, बिजली और रसायनों का, श्वास का सही संयोजन कर जीवन की अनेक समस्याओं को हल करना जान लेता है।

अनुप्रेक्षा का प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है असत् से बचने के लिए। सारा जप का विकास इसी आधार पर हुआ है। अनुप्रेक्षा के सिद्धांत के आधार पर जप का विकास हुआ है। इष्ट का जप करो, मन्त्र का जप करो, क्योंकि शुभ भाव और शुभ विचार तुम्हारे मन में रहेगा, तो अशुभ भाव को जागने का मौका नहीं मिलेगा। इसीलिए मन्त्र का आलम्बन लिया गया। कुछ लोग अध्यात्म-साधना के क्षेत्र में मन्त्र की उपयोगिता नहीं मानते। पर

Scanned by CamScanner

हमारा विश्वास है कि मंत्र की भी बहुत उपयोगिता है, उसे नकारा नहीं जा सकता, अस्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि हम सीधे वीतराग तो बन नहीं सकते। सीधे छलांग वाली बात कम घटित होती है। कोई व्यक्ति ऐसा हो सकता है कि सीधी छलांग लगा सकता है। कोई-कोई ऐसा हो सकता है कि छत पर से सीधे नीचे छलांग लगा सकता है, पर हर कोई लगाने लग जाये, तो फिर सीढ़ियों की जरूरत क्या है ? फिर सीढ़ियां लगानी निरर्थक हैं। पर सब छलांगें लगाने लग जाएंगे, तो शायद हॉस्पीटल में स्थान भी खाली नहीं मिलेगा। बड़ी मुसीबत पैदा हो जाएगी। छलांग की बात सार्वजनिक बात नहीं हो सकती। कदाचित् हो सकती है, अपवाद स्वरूप हो सकती है। सीधे वीतरागता की भूमिका में चले जाने की बात एक छलांग की बात है। हमें सीढ़ियों के सहारे चलना पड़ेगा। आदमी सीढ़ी के सहारे चढ़ेगा, ऊपर पहुंचेगा। सीढ़ियों में दोनों बातें होती है। एक ही सीढ़ी बनी हुई है। उससे ऊपर भी चढ़ा जा सकता है, नीचे में आया जा सकता है। ऐसा नहीं होता कि ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां अलग बनती हैं और नीचे आने के लिए सीढ़ियां अलग बनती हैं। उसी सीढ़ी से ऊपर चढ़ा जा सकता है और उसी सीढ़ी से नीचे आया जा सकता है। हमारी एक ही भावधारा है। उसी भावधारा से ऊपर चढ़ा जा सकता है और उसी भावधारा से नीचे उतरा जा सकता है। हमारी भावधारा जब सत् के साथ जुड़ती है, तब हम ऊपर चढ़ सकते हैं, हमारा आरोहरण हो सकता है। ज्यों-ही भावधारा असत् के साथ जुड़ती है तब अवरोहण शुरू हो जाता है, आदमी नीचे उतर आता है। जप का विकास, मन्त्र का विकास, इसी भावना के आधार पर हुआ था कि एक ऐसा आलम्बन बना रहे जिससे बुरे भावों को आने का अवसर कम से कम मिले।

भ्रांतियों का विघटन

मिथ्या कल्पनाओं को तोड़ने के लिए प्रेक्षाध्यान पद्धति में अनुप्रेक्षा का अभ्यास किया जाता है। दो शब्द हैं: एक है प्रेक्षा और दूसरा है अनुप्रेक्षा। मैं बहुत दिनों से सोचता था कि प्रेक्षा के पीछे 'अनु' का प्रयोग क्यों किया गया है ? इसे सोचते-सोचते जो एक बात सूझी वह यह है कि जो सचाई है, उसे देखना, उसका विमर्श करना अनुप्रेक्षा है। सचाई को देखो। उसे अपनी धारणा से मत देखो। मछली ने धारणा बना ली कि आदमी वह होता है जिसका सिर नीचे और पैर ऊपर होते हैं इसी धारणा से वह आदमी को देखते थी। यह अनुप्रेक्षा नहीं है। अपनी धारणा से मत

Scanned by CamScanner

देखो। संस्कार की दृष्टि से मत देखो। काल्पनिक दृष्टि से मत देखो। केवल सचाई को देखो, वास्तविकता को देखो। यथार्थ को देखो। जो सत्य है, जो घटना घटित हो रही है, उसी को देखो। अनुप्रेक्षा का अर्थ है—सत्य के प्रति अनुप्रेक्षा अर्थात् यथार्थ के प्रति अनुप्रेक्षा, वस्तु के प्रति अनुप्रेक्षा। उधारी धारणा से काम मत लो, किंतु जो घटना है, जो वास्तविकता है, जो सचाई है, उसी को देखो। इस प्रकार अनुप्रेक्षा का तात्पर्य है कि हम अपनी धारणाओं को एक बार निकाल दें। अपनी पूर्व-मान्यताओं को छोड़ दें और फिर जो सचाई है, यथार्थ है, उसको देखें। प्रेक्षाध्यान पद्धति की अनुप्रेक्षा पद्धति में इस अनुप्रेक्षा का अभ्यास किया जाता है कि हम रूढ़ियों को, धारणाओं को छोड़कर, वास्तव में सचाई को नहीं देखता। वह सबसे पहले अपनी धारणाओं का चश्मा लगा लेता है और बाद में देखता है। यदि वह ठीक नहीं जचता है, तो वह उसे तोड़ने-मरोड़ने का प्रयत्न करता है।

अनुप्रेक्षा का सिद्धांत सत्य के लिए समर्पित हो जाने का सिद्धांत है। सत्य के लिए पूर्णरूपेण समर्पित हो जाओ। अपनी किसी भी धारणा को महत्त्व मत दो। जो सचाई है उसे ग्रहण करो, स्वीकार करो यह है अनुप्रेक्षा।

सुना होगा, हिमालय के बर्फ पर साधक नग्न होकर बैठा है। चारों ओर बर्फ ही बर्फ है। वह गर्मी का प्रयोग आरम्भ करता है। घंटा बीतता है और साधक के शरीर से पसीना चूने लगता है। वर्फ पर पसीना चूने लग जाता है। यह प्राकृतिक घटना नहीं है। यदि प्राकृतिक घटना होती, तो एक ही आदमी के शरीर से पसीना नहीं चूता। वहां जितने आदमी होंगे, सबके शरीर से पसीना चूएगा। पर एक ही आदमी के शरीर से पसीना चूता है और सब सर्दी में ठिठुरते हैं। यह प्राकृतिक घटना नहीं है। यह ध्वनि का प्रयोग है, संकल्प का प्रयोग है और भावना का प्रयोग है। यह भावनात्मक परिवर्तन है, प्राकृतिक परिवर्तन नहीं है।

गर्मी के दिन हैं। भयंकर गर्मी पड़ रही है। लूएं चल रही हैं। साधक सर्दी की भावना करता है। सर्दी का संकल्प करता है और उसके शरीर में सर्दी व्याप्त हो जाती है। वह ठिठुरने लगता है। वह कंबल ओढ़ता है, फिर भी ठिठुरन समाप्त नहीं होती। यह प्राकृतिक परिवर्तन नहीं है, भावनात्मक परिवर्तन है।

Scanned by CamScanner

एक आदमी आज भी जीवित है, जो प्रति शुक्रवार को क्रॉस पर चढ़ता है। उसके दोनों हाथों में घाव हो जाते हैं। रक्त बहने लग जाता है। हृदय से भी रक्त बहने लगता है। शुक्रवार को ही ऐसा होता है। यह भावनात्मक परिवर्तन है। वह व्यक्ति ईसा मसीह का संकल्प करता है और ऐसा घटित हो जाता है।

पैर में बिवाई फटती है, पीड़ा होती है। अभी बिवाई फटने का मौसम तो नहीं है किन्तु आप भावनात्मक प्रयोग करें। बिवाई फटे या न फटे, दर्द प्रारम्भ हो जाएगा। यदि भवना से दर्द हो सकता है, तो भावना से दर्द मिट भी सकता है। दोनों बातें घटित हो सकती हैं।

भावना

'कंटकात् कंटकमुद्धरेत्'—कांटे से कांटा निकालने की नीति साधना के क्षेत्र में भी लागू होती है। चित्त को वासनाओं से मुक्त करना साधक का लक्ष्य होता है, पर पहले ही चरण में दीर्घकालीन वासनाओं को एक साथ निर्मूल नहीं किया जा सकता। उन्हें निरस्त करने के लिए नई वासनाओं की सृष्टि करनी होती है। वे नई वासनाएं यथार्थपरक होती हैं इसलिए उसका असत् से संबंधित वासनाओं पर दबाव पड़ता है और वे उनसे अभिभूत हो जाती हैं।

वासना का ही दूसरा नाम भावना है। शास्त्रीयज्ञान या शब्दज्ञान का जो सहारा लिया जाता है, वह वासना है। इसे भावना, जप, धारणा, संस्कार, अनुप्रेक्षा और अर्थचिंता भी कहा जाता है और ये सब स्वाध्याय के ही प्रकार हैं।

जैन साधना-पद्धति में 'भावनायोग' शब्द का व्यवहार हुआ है। भावना मन आत्मा या सत्य से युक्त होता है, इसलिए यह योग है। भावना में ज्ञान और अभ्यास—इन दोनों के लिए अवकाश है।

भावना का अर्थ है—सविषय ध्यान। यही इसकी परिभाषा है। जब आपके मन में कोई विषय है, आपने कोई ध्येय चुना है, आप सविषय ध्यान कर रहे हैं, यह है भावना। भावना, सविषय ध्यान और जप में कोई अन्तर नहीं है। तीनों एक हैं। अपनी उपयोगिता के आधार पर भिन्न-भिन्न नामों का चुनाव हुआ है। तात्पर्य में कोई अन्तर नहीं है। जप का अर्थ यह है कि जो जप्य है, जिसका जप करना है, उस जप्य वस्तु के प्रति व्यक्ति का तन्मय और एकाग्र हो जाना। भावना का अर्थ है—भाव्य व्यक्ति या वस्तु के प्रति तन्मय और एकाग्र हो जाना। धारणा का अर्थ भी यही है। जिसकी

Scanned by CamScanner

धारणा करनी है, उसके प्रति तन्मय और एकाग्र हो जाना। सविषय ध्यान भी यही है। विषय के प्रति या ध्येय के प्रति तन्मय और एकाग्र हो जाना। जप, भावना, धारणा और सविषय ध्यान—चारों एक कोटि के हैं। इसमें तात्पर्य-भेद नहीं है, नाम-भेद है।

भावना नौका है। भगवान् महावीर ने कहा—जिसकी आत्मा भावना-योग से विशुद्ध होती है, वह जल में नौका की तरह है। वह जब चाहे पार पहुंच सकती है। अब इस नौका का उपयोग कैसे हो ? वह प्रश्न शेष रहता है। भावना से भावित होना आवश्यक होता है। आप भावित नहीं होते तब तक वह स्थिति नहीं बनती। आगमों में 'भावितात्मा' शब्द आता है। भावितात्मा होने के बाद जो होना होता हैं, वह हो जाता है। यह सारा एकाग्रता का चमत्कार है। हम जो भी होना चाहते हैं, हो जाते हैं। जो घटित करना चाहते हैं, वह घटित हो जाता है। जिस रूप में मन को बदलना चाहते हैं, बदल लेते हैं। मन एक आकार का होता है। उसमें असंख्य पर्याय हैं। वह भिन्न-भिन्न आकारों में बदलता है। हम जैसा चाहते हैं, उसी प्रकार का आकार वह लेना शुरू कर देता है। यह मन की विशेषता है। तन्मयता और एकाग्रता के साथ हमने जो भावना की, वैसा ही होना होता है। उसमें कोई अन्तर नहीं आता। प्रश्न है एकाग्रता का, स्थिरता का। मन बदलता है, तो साथ-साथ शरीर भी बदलता है। स्व-सम्मोहन का प्रयोग, ऑटोसजेशन, अपने आपको सूचना देना, यह अपने आप भावना के द्वारा सम्मोहित हो जाता है। शरीर-प्रेक्षा के द्वारा शरीर के भीतर देखना, फिर संकल्प-शक्ति और भावना के प्रयोग द्वारा बदलने की भावना को अवचेतन मन तक पहुंचा देना। यह है रूपांतरण की प्रक्रिया।

प्रत्येक कोशिका में ज्ञान-केन्द्र है। प्रत्येक कोशिका में प्रकाश-केन्द्र है, बिजली का कारखाना है। हर कोशिका का अपना एक कारखाना है विद्युत् का, शक्ति का। वे कोशिकाएं अपने ढंग से काम करती हैं। उनको बदलना है, उनको नया जन्म देना है, उनको नया रास्ता देना है, तो आपकी अपनी भावना को उन तक पहुंचना होगा।

जब तक हमारी भावना उन तक नहीं पहुंचती तब तक हम नहीं बदल सकते। उदाहरण लें—एक आदमी अपनी क्रोध की आदत को बदलना चाहता है। संकल्प करता है—मैं क्रोध नहीं करूंगा। बार-बार संकल्प करता है, पर सफल नहीं होता। संकल्प तो करता है, पर गुस्सा वैसे ही आ जाता है। इससे तो ऐसा लगता है कि यह प्रयोग सार्थक नहीं

Scanned by CamScanner

है, यह उपाय कारगर नहीं है। मैं बदलना चाहता हूं, फिर भी नहीं बदलता हूं। कितने ही लोग बुरे काम करते हैं और पछताते हैं। फिर सोचते हैं, फिर ऐसा नहीं करूंगा। पर ठीक समय आता है, काम हो जाता है। गुस्सा भी आता है, वासना भी सताती है, वृत्तियां भी सताती है। सब अपने समय पर सताने लगते हैं। शराबी शराब को छोड़ने का संकल्प करता है, तम्बाकू का व्यसनी तम्बाकू को छोड़ने का संकल्प करता है, सोचता है सेवन नहीं करूंगा, पर समय आता है, तो भीतर में ऐसी प्रबल मांग जागती है कि उसका संकल्प धरा का धरा रह जाता है। संकल्प भंग हो जाता है। ऐसा क्यों होता है ? इसलिए होता है कि हम अपने संकल्प को वहां तक पहुंचा नहीं पाते। बाहर ही बाहर में देखते हैं। हम बहुत अभ्यासी हैं बाहरी बात में। बाहर को देखते हैं और सारी कल्पना बाहर ही करते हैं।

परिवर्तन की प्रक्रिया का दूसरा सूत्र है—भावना का प्रयोग, संकल्प-शक्ति का प्रयोग, अप्रभावित रहने का प्रयोग। यह संतुलन का प्रयोग होता है तो जीवन में समता घटित होती है और आदमी सौ कदम आगे बढ़ जाता है।

साधक ध्यान के पूर्व और ध्यान के बाद भावनाओं के अभ्यास का सतत स्मरण करता रहे। उनसे एक शक्ति मिलती है, धीरे-धीरे मन तदनुरूप परिणत होता है, मिथ्या धारणाओं से मुक्त होकर सत्य की दिशा में अनुगमन होता है और एक दिन स्वयं को तथानुरूप प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। भावना और ध्यान के सहयोग से मंजिल सुसाध्य हो जाती है। साधक इन दोनों की अपेक्षा को गौण न समझे। सभी धर्मों ने भावना का अवलम्बन लिया है।

भावनाएं विविध हो सकती हैं। जिनसे चित्त की विशुद्धि होती है, वे सारी भावनाएं हैं। आज की भाषा में भावना का अर्थ है—ब्रेन वाशिंग। इसका अर्थ है—मस्तिष्क की धुलाई। राजनीति के क्षेत्र में ब्रेन वाशिंग की प्रक्रिया बहुत प्रचलित है। इसका प्रयोजन है, पुराने विचारों की धुलाई कर उनके स्थान पर नए विचारों को भर देना। यह बहुत प्रचलित प्रक्रिया है। इसका प्रयोजन प्रत्येक राष्ट्र करता है।

प्रयोजन

अनुप्रेक्षा नहीं करने वाला साधक ध्यान की मर्यादा को नहीं जान सकता। उसके लिये ध्यान में जाना ही सहज, सरल नहीं होता। अनुप्रेक्षा एक सोपान है। जो अनुप्रेक्षा के सोपान पर आरोहण नहीं करता, वह

Scanned by CamScanner

प्रेक्षाध्यान के सोपान पर भी आरोहण नहीं कर सकता। दोनों साथ-साथ चलते हैं। प्रेक्षा के पश्चात् अनुप्रेक्षा और अनुप्रेक्षा के पश्चात् प्रेक्षा। ये दोनों एक ही चित्त की दो अवस्थाएं हैं। जब तक पानी तरल है, तब तक पानी है और जब वह जम जाता है, तब बर्फ बन जाता है। मूलतः दोनों में कोई अन्तर नहीं है। बर्फ का भी अपना मूल्य है और तरल पानी का भी अपना मूल्य है। तरल रहने से उसका मूल्य समाप्त नहीं हो जाता। अनुप्रेक्षा हमारे चित्त की तरल अवस्था है। एक बिन्दु पर हम चित्त को केन्द्रित करते हैं, चित्त वहां जम जाता है, स्थिर हो जाता है वह चित्त ध्यान बन जाता है। जब चित्त उस बिन्दु पर स्थिर नहीं होता, आसपास घूमता है, तब वह अनुप्रेक्षा होती है। समस्या को सुलझाने के लिए अनुप्रेक्षा बहुत जरूरी है। एक समस्या पर ध्यान को केन्द्रित करना "विचय ध्यान" की प्रक्रिया है। अज्ञात को ज्ञात, अनुपलब्ध को उपलब्ध और सत्य का अनुसंधान करना है तो चिंतन के एक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। जब चेतना की धारा एक दिशागामी, एक विचारगामी होती है तब समस्या सुलझ जाती है, अज्ञात ज्ञात हो जाता है। जब तक ध्यान की स्थिति नहीं बनती, तब तक चिंतन या अनुचिंतन के द्वारा ही समस्या को सुलझाया जा सकता है।

ध्यान-साधक के सामने भी अनेक समस्याएं उपस्थित होती हैं। यदि अनुप्रेक्षा का आलंबन न हो, तो साधन उलझ जाता है। कुछ एक व्यक्ति कहते हैं—"ध्यान के साधक को ग्रन्थ नहीं पढ़ने चाहिए, जप नहीं करना चाहिए, संकल्प-शक्ति और प्राण-शक्ति का प्रयोग नहीं करने चाहिए, चिन्तन-अनुचिंतन नहीं करना चाहिए। ध्यान साधक निर्विचार रहे।" इसका कोई विरोध नहीं कर सकता। किन्तु निर्विचारता की उपलब्धि प्रारम्भ में नहीं हो जाती।

अनुप्रेक्षा से बचाव

ध्यान के द्वारा जब कर्म के साथ छेड़छाड़ होती है, तब वह रौद्र रूप धारण कर लेता है। यदि उस समय अनुप्रेक्षा का सम्बल नहीं मिलता, तो साधक उस स्थिति को संभाल नहीं पाता। ध्यान करने से जब ऊर्जा जागती है, तब क्रोध भी बढ़ जाता है। शक्ति का कार्य उत्तेजना पैदा करना है। जब यह शक्ति जागती है और यदि उसे सही रास्ता मिल जाता है, नियामक तत्त्व मिल जाता है, तो वह साधक की अन्यान्य निष्पत्तियों के संवर्धन में हेतुभूत हो सकती है। यदि ऐसा नहीं होता, तो शक्ति बहुत खतरनाक हो सकती है।

Scanned by CamScanner

विचय ध्यान के द्वारा यह जाना जा सकता है कि शक्ति-जागरण होने पर किस प्रकार की अनुप्रेक्षाएं करनी चाहिए। जब अनुप्रेक्षाओं का सहारा लिया जाता है, तब कोई कठिनाई नहीं होती, साधक अपनी शक्ति का संतुलन बनाए रखता है। तात्पर्य है—हम अपनी पूर्व धारणाओं और मान्यताओं को एक बार निकाल दें और फिर जो परम सत्य है, उसका अनुभव करें। प्रेक्षाध्यान साधना-पद्धति में अनुप्रेक्षा का अभ्यास इसलिए किया जाता है कि हम रूढ़ियों, संस्कारों और धारणाओं को छोड़कर सचाई को देखना सीख सकें। अनुप्रेक्षा का सिद्धान्त यथार्थ में सत्य के दर्शन का सिद्धान्त है, सत्य के लिए पूर्णरूपेण समर्पित हो जाएं—यह है अनुप्रेक्षा।

भगवान् महावीर ने सचाई का जीवन जीने के लिए (भ्रांति को मिटाने के लिए) अनुप्रेक्षाओं का बोध दिया। अनुप्रेक्षाएं भ्रांति के चक्र को तोड़ने वाली हैं। जो व्यक्ति अनुप्रेक्षा नहीं करता, उसकी भ्रांति सघन होती चली जाती है। किन्तु अनुप्रेक्षा की तेज धार चक्र को बढ़ाने नहीं देती।

बारह अनुप्रेक्षाओं में एक अनुप्रेक्षा है—अकेलेपन की अनुभूति। व्यवहार की भाषा में "मैं अकेला हूं" ऐसा नहीं कहा जा सकता। मेरी मां, मेरा भाई, मेरा परिवार, मेरा धन, मेरा समाज, मेरा राष्ट्र न जाने सम्बन्धों की शृंखला कितनी व्यापक बन जाती है ? न जाने आदमी कहां-कहां से जुड़ा हुआ है व्यवहार में आदमी फैल जाती है। आदमी सैकड़ों-सैकड़ों धागों से बंधा हुआ है। वह इतना जकड़ा हुआ है कि समाज और व्यवहार के क्षेत्र में उसे कहीं भी अकेलेपन का अनुभव नहीं होता। व्यवहार की बात तो ठीक है, किन्तु वह अन्तिम सच्चाई नहीं है। हम व्यवहार को व्यवहार के जीवन तक ही रहने दें और सच्चाई का जीवन भी साथ में जीएं। जो आदमी कोरा व्यवहार का जीवन जीता है, वह अपने लिए सदा सिरदर्द पैदा करता है। सिरदर्द को वही मिटा सकता है, जो व्यवहार के साथ सच्चाई का जीवन भी जीता है।

हमें दोनों प्रकार का जीवन जीना चाहिए। व्यवहार का जीवन इसलिए कि हम उनके बिना अपनी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते, अपने लिए जीने का साधन नहीं जुटा सकते, न कोई रोटी परोसने वाली मिलेगी, न पानी पिलाने वाला मिलेगा, न कोई सेवा-चाकरी करने वाला मिलेगा, न कोई देने वाला और न कोई लेने वाला। इसलिए व्यवहार का जीवन जीना, सामाजिक जीवन जीना हमारे लिए बहुत जरूरी है।

Scanned by CamScanner

किन्तु दूसरी ओर यदि हम सच्चाई का जीवन नहीं जीते हैं, तो वह व्यवहार और वह समाज हमारे लिए सिरदर्द पैदा कर देता है। व्यवहार का जीवन जीते हुए सच्चाई के जीवन की पृष्ठभूमि बनाए रखना अपेक्षित है। आगे व्यवहार रहे, और पृष्ठभूमि में सच्चाई रहे। दोनों साथ-साथ चले, तो हमारे जीवन की यात्रा ठीक चलेगी और सिरदर्द भी पैदा नहीं होगा।

परिवार, समाज आदि बनाना व्यक्ति के लिए जरूरी है, किन्तु जो व्यक्ति इनको अन्तिम सच्चाई मान कर यह मान लेता है कि मेरा त्राण, मेरी सुरक्षा कहीं है, तो ये परिवार आदि हैं, तो एक दिन वह स्वयं अनुभव करता है कि वह धोखे में था, और व्यक्ति इस सच्चाई को बराबर मानता रहता है कि सुविधा के लिए परिवार है, समाज है, किन्तु अन्तिम सच्चाई यह है कि वस्तुतः "मैं अकेला हूं"। ऐसे व्यक्ति को कभी धोखा नहीं होता।

वास्तविकता यह है कि धोखा देने वाला कोई और नहीं होता। व्यक्ति अपने आपको ही धोखा देता है। क्योंकि वह झूठ को पालता है, सत्य को अस्वीकार करता है। सच्चाई को बराबर ध्यान में रखने वाला कभी धोखा नहीं खाता। इसलिए हम एकत्व अनुप्रेक्षा के प्रयोग के द्वारा इस सत्य का अनुभव करें कि "मैं अकेला हूं, मेरा दूसरा कोई नहीं है, न मैं किसी का हूं और न कोई मेरा है।"

व्यवहार के धरातल पर हमने सत्य की हत्या की है। यदि हम सत्य को स्वीकार कर चलते कि व्यक्तियों का जुड़ना, परिवार और समाज का बनना मात्र एक "संयोग" है, किन्तु अन्तिम सच्चाई नहीं है। यदि हम दोनों सच्चाइयों को सामने रखकर चलें कि "संयोग" और "संबंध" भी एक सीमा में यथार्थ है और "वियोग" तथा "अकेलापन" भी एक वास्तविकता है, तो समस्या उलझती नहीं। "संयोग" और "संबंध"—ये व्यावहारिक धरातल की सच्चाइयां हैं, परन्तु इस अटपटे तथ्य को समझना या जानना अनुप्रेक्षा के अभ्यास के बिना नहीं हो सकता। जब साधक एकत्व अनुप्रेक्षा का अनुचिंतन और अनुभव करता है, और जब यह अनुभव गहरा होता चलता है, तब यह सच्चाई प्रत्यक्ष हो जाती है कि "मैं अकेला हूं।"

यह बात अटपटी अवश्य लग सकती है कि समाज के परिपेक्ष्य में व्यक्ति कैसे मान ले कि "मैं अकेला हूं"। यह प्रश्न उभर कर आता है कि क्या इस चिन्तन से सारे पारिवारिक सम्बन्ध टूट नहीं जायेंगे? यह प्रश्न उभर सकता है। किन्तु हम एकांगी दृष्टिकोण से विचार न करें। जीवन-यात्रा को चलाने के लिए व्यवहार की भूमिका पर यह बात भी जरूरी है कि "मैं

Scanned by CamScanner

अकेला नहीं हूं। मेरे साथ अनेक सम्बन्ध जुड़े हुए हैं। मेरे साथ परिवार का, गांव का, राष्ट्र का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। मैं इन सूक्ष्म धागों से बंधा हुआ हूं।" एक ओर व्यवहार की भूमिका पर आदमी अपने आपको हजारों-हजारों धागों से बन्धा अनुभव करे और दूसरी ओर अध्यात्म की भूमिका पर उन धागों से मुक्त अनुभव करे। दोनों स्थितियां साथ-साथ चलें। दोनों का सामंजस्य हो। व्यवहार की दृष्टि भी चले और निश्चय की दृष्टि भी, प्रेक्षा की दृष्टि भी चले। जो सामाजिक जीवन जीता है, उसे इन धागों से बंधा रहना पड़ता है। किन्तु केवल इसी में रह जाए और आध्यात्मिक चेतना को न जगा पाए, तो मूर्च्छा इतनी सघन हो जाती है और वे धागे मजबूत रस्से बन जाते हैं, फिर उनसे छूटना सरल नहीं होता।

एकत्व अनुप्रेक्षा के द्वारा हम अपनी चेतना को जगाएं और अपने आपमें यह अनुभव करें कि—"मैं अकेला हूं"। जब यह सच्चाई अनुभव के स्तर पर घटित हो जाती है तब व्यक्ति का जीवन संतुलित हो जाता है। आदमी व्यवहारों तथा सम्बन्धों को सच्चाई मानकर जीता जा रहा है। जब वह इन सच्चाइयों का अनुभव कर लेता है, तब व्यवहार नीचे रह जाते हैं और सच्चाई उजागर हो जाती है। अनुप्रेक्षा का प्रयोग केवल सुनने का प्रयोग नहीं है, करने का प्रयोग है। जब हम प्रयोग करते हैं, तब वास्तविकता गहरे में अवचेतन मन तक पहुंच जाती है। इसलिए अनुप्रेक्षा का प्रयोग जरूरी है।

साधक प्रयोग के अभ्यास में विश्वास करे। जो प्रयोग करता है, अभ्यास से गुजरता है, उसको अवश्य अनुभव होता है। जो बात अनुभव के स्तर पर आती है, वह स्थायी और शाश्वत उपयोगी बन जाती है। अभ्यास निरन्तर चले, असंभव संभव लगने लगेगा।

निष्पत्तियां

चित्त शुद्धि की प्रक्रिया

अनुप्रेक्षाएं अनेक हैं। जो व्यक्ति प्रेक्षा के साथ-साथ अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास करता है, उसके चित्त पर कोई मूर्च्छा नहीं जमती, मैल नहीं जमता। इसलिए प्रेक्षाध्यान करने वाले साधकों को चित्तशुद्धि के लिए अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास करना जरूरी है। प्रेक्षाध्यान साधना-पद्धति में जहां ध्यान का महत्त्व है, वहां अनुप्रेक्षा का भी महत्त्व है—इस वास्तविकता को बराबर मानते चलें तो ध्यान के साथ-साथ हमारे चित्त की निर्मलता

Scanned by CamScanner

और चित्त की निर्मलता के आधार पर संभावित दोषों का शोधन करते चले जायेंगे, तब व्यवहार के क्षेत्र में भी जीवन-यात्रा सुखद होती चली जायेगी।

अनित्य अनुप्रेक्षा

अनित्य अनुप्रेक्षा का क्रम प्रारम्भ करने के लिए शांत और जागृत रहकर संकल्प करें कि अनित्य अनुप्रेक्षा करनी है। पहला सूत्र है– ***"इमं सरीरं अणिच्चं"***–यह शरीर अनित्य है।

दूसरा सूत्र है– ***"इमं शरीरं चयावचयधम्मयं"***–यह शरीर चय-अपचय धर्मा है अर्थात् यह पुष्ट होता है, क्षीण होता है।

तीसरा सूत्र है– ***"इमं शरीरं विपरिणामधम्मयं"***–यह शरीर विपरिणामधर्मा है अर्थात् इसमें नाना प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। कभी गर्मी से, कभी सर्दी से, कभी भोजन से, कभी बीमारी से परिवर्तन होता रहता है।

चौथा सूत्र है– ***"इमं शरीरं जरा-मरण-धम्मयं"***–यह शरीर जरा-मरण-धर्मा है अर्थात् इसमें वृद्धावस्था घटित होती है और मृत्यु घटित होती है। हम शरीर को इतना ढीला छोड़ दें कि मानो मृत्यु का अनुभव हो रहा है। यह भावनात्मक परिवर्तन है। भावनात्मक परिवर्तन के द्वारा भावना की अत्यन्त तीव्रता और सघनता के द्वारा हम उस स्थिति का अनुभव करते हैं, जो कुछ समय के बाद घटित होने वाली है।

शरीर अनित्य है, यौवन अनित्य है, परिवार के संयोग अनित्य है, वैभव सम्पदा अनित्य है, इष्ट का संयोग भी अनित्य है और क्या–जीवन भी अनित्य है। जिस साधक को अनित्यता का यह अनुचिन्तन और अनित्यता का अनुभव होता है, उसमें क्रोध आने का अवकाश नहीं रहता। जिसकी चेतना में यह बात जम गई कि संयोग अनित्य है, पदार्थ नश्वर है, तब पदार्थ के चले जाने पर वह दुःखी नहीं होता।

हमारे व्यावहारिक जीवन में अनित्य अनुप्रेक्षा का बहुत बड़ा महत्त्व है। जिस व्यक्ति के चित्त में यह संस्कार पुष्ट बन जाता है कि सब पदार्थ अनित्य है, फिर उस व्यक्तिं के मन से विवाद बढ़ने वाली बात समाप्त हो जाती है। उसकी मानसिक विकृतियां कम हो जाती हैं। बहुत सारी पीड़ा जो व्यर्थ की भोगनी पड़ती है, वह समाप्त हो जाती है।

यह कोई तत्त्वज्ञान की बात नहीं है, अनुभव में उतारने की बात है। अनुप्रेक्षा करने वाला व्यक्ति घटना को जान लेता है, भोगता नहीं। नहीं करने वाला व्यक्ति जानता नहीं, भोगता है। घटना को जानने वाला

Scanned by CamScanner

व्यवहार मधुर बना देता है भोगने वाला दुःख पाता है। अनुप्रेक्षा का साधक मानसिक विकृतियों से मुक्त होकर स्वस्थ चिन्तन करने वाला, स्वस्थ व्यक्तित्व वाला बन जाता है।

प्रश्न हो सकता है कि "अपने आपको अकेला अनुभव करने वाला व्यक्ति क्या व्यवहार से च्युत नहीं हो जाएगा?" उत्तर है–नहीं होगा। व्यक्ति अनुप्रेक्षा का यानी स्वस्थ चिन्तन का अनुसरण करता है, वह कभी असामाजिक और अव्यावहारिक नहीं होगा, प्रत्युत व्यवहार में जितना परिष्कार आता है, समाज में जितना सुधार, क्रांति और भलाई आती है, वह ऐसे व्यक्तियों द्वारा ही आ सकती है।

अनुप्रेक्षा के द्वारा जिन आध्यात्मिक सचाइयों का अनुभव किया जाता है, वे यदि सामाजिक व्यक्ति के जीवन में चरितार्थ हो जाएं, तो समाज का चित्र नया हो जाएगा। आध्यात्मिक भूमिका पर जिस समाज की संरचना होगी और इन सचाइयों के आधार पर जिस समाज का ढांचा खड़ा होगा, वह समाज सचमुच ही व्यवस्थित, शांतिप्रिय और मैत्रीप्रधान होगा।

सहिष्णुता

सहन करना सामान्य बात नहीं है। इसके लिए पुष्ट आलम्बन चाहिए। किसी आलंबन के आधार पर ही सहिष्णुता का विकास किया जा सकता है। सामान्यतः क्रोध का उत्तर क्रोध से, उत्तेजना का उत्तेजना से दिया जाता है। कोई क्रिया हो और सामने वाला प्रतिक्रिया न करे, ऐसा संभव नहीं लगता। किन्तु अनुप्रेक्षा के आलंबन के सहारे इस स्थिति को सहा जा सकता है, कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। आवेशजन्य स्थितियों को सहने के लिए और मन को शांत और संतुलित रखने के लिए अनुप्रेक्षा के माध्यम से सहिष्णुता का विकास किया जा सकता है।

समाधि की उपलब्धि

अनुप्रेक्षा का एक महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है समाधि। जीवन का सबसे बड़ा विज्ञान है समाधि। जिस व्यक्ति को समाधि उपलब्ध हो जाती है, उसकी दूसरी सारी विशेषताएं नीचे रह जाती हैं। दूसरी-दूसरी विशेषताओं से संपन्न व्यक्ति अत्राण और असहाय देखे जाते हैं। किन्तु जिस व्यक्ति को समाधि उपलब्ध है, वह कभी अत्राण और असहाय नहीं होता। वह कभी अशरण और दुःखी नहीं रहता। समाधि की उपलब्धि जब होती है, तब

Scanned by CamScanner

व्याधि नहीं सताती, उपाधि नहीं सताती और आधि नहीं सताती। ये तीनों–व्याधि, उपाधि और आधि जब निःशेष हो जाती है, तब समाधि घटित होती है। व्याधि आती है, रोग होता है, तब आदमी की स्थिति भयंकर हो जाती है। मानसिक उलझन आदमी को इतना बेचैन बना देती है कि आदमी एक क्षण के लिए भी सुख की सांस नहीं ले सकता। आधि की कठिनाई व्याधि से अधिक है। आधि की स्थिति में आदमी पागल बन जाता है। सब कुछ साधन होने पर भी वह बहुत दुःखी बन जाता है। उपाधि की स्थिति आधि से भी जयादा भयंकर होती है। उपाधि का अर्थ है–कषाय। उसमें क्रोध जागता है, कपट उभरता है, लालच जागता है। इन सबके अस्तित्व में आदमी कुछ करता है जो उसे कभी नहीं करना चाहिए। व्याधि, आधि और उपाधि–तीनों खतरें हैं। इनकी अवस्थिति में समाधि नहीं आ सकती।

समाधिस्थ होने के लिए तीनों से पार पाना जरूरी होता है। शरीर निरंतर बीमार रहता है, समाधि कैसी होगी? मन उलझनों से भरा रहता है, समाधि कैसे होगी? आदमी उपाधि से भरा रहता है, कषाय से भरा रहता है, समाधि कैसे उपलब्ध होगी? इन सबसे पार जाने पर ही समाधि का बिन्दु उपलब्ध होगा। प्रत्येक मनुष्य अपने मार्ग का चुनाव कर सकता है। मुझे कौन-सा जीवन जीना है? व्याधि, आधि और उपाधि का जीवन जीना है या समाधि का जीवन जीना है? आप पूछना चाहेंगे कि यह कोई चुनाव का प्रश्न है? क्या कोई व्यक्ति आधि, व्याधि और उपाधि का जीवन जीना चाहेगा? प्रश्न हो सकता है। सहज लगता है प्रश्न। किन्तु उत्तर भी जटिल नहीं है, बहुत सीधा है। आदमी चाहता है, तब बीमार होता है, आदमी चाहता है, तब मानसिक उलझनों में फंसता है और चाहता है, तब उपाधि से ग्रस्त होता है। अगर वह न चाहे, तो कभी बीमार नहीं हो सकता, कभी आधिग्रस्त नहीं हो सकता और कभी उपाधिग्रस्त नहीं हो सकता। यह सब चाह पर निर्भर होता है। कठिन है उस चाह को पकड़ना, उस चाह को समझना और देखना। हम देखना नहीं चाहते। हमारे भीतर एकाएक बीमार होने की चाह जागती है और हम बीमार हो जाते हैं। व्यक्ति अति काम, अति भोजन, अति क्रोध करता है, वह सारी बीमारी की चाह है। हम कैसे भेदरेखा खीचेंगे कि अति भोजन की चाह, अति स्वाद की या अति लोलुपता की चाह तो है और बीमारियों की चाह नहीं है। असंयम की चाह का मतलब है–बीमार होने की चाह। हम इन्हें

Scanned by CamScanner

अलग नहीं कर सकते, कभी नहीं कर सकते। जिसके मन में बीमार होने की चाह नहीं होती, वह बीमार नहीं होता। जिस व्यक्ति में मानसिक उलझनों में जाने की चाह नहीं होती, वह मानसिक उलझन में नहीं जाता। मानसिक उलझन इसलिए होती है कि हमारे भीतर किसी को प्रिय मानने की चाह है और किसी को अप्रिय मानने की चाह है, तब अप्रियता का संवेदन रहे और मानसिक उलझन न रहे, यह कभी नहीं हो सकता। हम मानसिक तनाव में, मानसिक उलझन में, प्रियता और अप्रियता के संवेदन में भी कोई अन्तर नहीं कर सकते। उनके बीच में कोई भेद-रेखा नहीं खींच सकते। जो क्रोधी होना नहीं चाहता, क्या वह कभी क्रोधी हो सकता है? क्रोध उसी व्यक्ति को आएगा, जो क्रोधी होना चाहता है। सबसे बड़ी बीमारी है चाह, अतृप्ति, आकांक्षा। सारी बीमारियों की जड़ में है आकांक्षा, अविरति। यदि आकांक्षा मिट जाए, अविरति समाप्त हो जाए, तो फिर न कषाय होगा और न कोई बीमारी होगी। हम इस सचाई को देखें, इस सचाई को जानें और जो इस सचाई को जानते हैं, उनके सामने यह प्रश्न जटिल नहीं बनता कि चुनाव कैसा होना चहिए?

व्याधि, आधि और उपाधि से पीड़ित होने का चुनाव कौन करेगा? किन्तु आदमी यह चुनाव करता है। वह इसलिए करता है कि उसके भीतर चाह मौजूद है। परन्तु जब मनुष्य को स्वतंत्रता है और वह चुनाव करने में सक्षम है, तो व्याधि, आधि और उपाधि से दूर हटकर समाधि का चुनाव करता है, तब उसकी सारी जीवन की दिशा बदल जाती है। समाधि हमारे जीवन की दिशा है। समाधि हमारे जीवन का मार्ग है। यह जीवन की एक पद्धति है। जो इस जीवन की पद्धति को समझ लेता है, जीवन की कला को समझ लेता है, जीवन के विज्ञान को समझ लेता है, वह शांत और सहज जीवन जीता है। समाधि की साधना समग्र जीवन की साधना है। प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा द्वारा जैसे-जैसे देखने और जनने का—चैतन्य-केन्द्रों में होने वाली प्रकंपनों को जानने का—अभ्यास बढ़ता है, वैसे-वैसे राग-द्वेषयुक्त क्षण जीने का विकास होता है, साधना बढ़ती है, अनुभव करने का अभ्यास बढ़ता है। साधक जीवन-यात्रा को चलाते हुए भी, व्यवहार की भूमिका पर करणीय कार्य करते हुए भी समाधि को प्राप्त कर अच्छे साधक का जीवन जी सकता है।

अनुप्रेक्षा की प्रक्रिया को समझ लेने पर ध्यान की बहुत बड़ी प्रक्रिया हस्तगत हो जाती है। हमारे हाथ में एक बहुत बड़ा आलंबन आ जाता है।

Scanned by CamScanner

यह आलम्बन है संयम का, संवर का, समता का और सामायिक का। अनुप्रेक्षा के बिना संयम घटित नहीं हो सकता, संवर घटित नहीं हो सकता, सामायिक घटित नहीं हो सकता, मन में समता का अवतरण नहीं हो सकता।

इसलिए समाधि की अभ्यर्थना करने वाला साधक, समाधि को उपलब्ध होने की भावना रखने वाला साधक, दर्शन और ज्ञान की क्षमता को विकसित करने वाला साधक, अनुप्रेक्षा का आलम्बन ले, उसके प्रयोग के सहारे वस्तु-सत्यों को खोजे, वस्तु-स्वभाव को जाने। जो वस्तु-स्वभाव को जानता है, उसे प्रियता और अप्रियता के संवेदन से, राग और द्वेष से, अहंकार और ममकार से मुक्ति पाने का बहुत सरल उपाय उपलब्ध हो जाता है, और जो साधक प्रियता और अप्रियता, राग और द्वेष, अहंकार और ममकार से मुक्ति पा लेता है, वह आधि, व्याधि से मुक्त होकर समाधि प्राप्त करता है।

व्याधि-मुक्ति

शरीर में नाना प्रकार की अवस्थाएं आती हैं। आदमी कभी दुःखी होता है, कभी सुखी; कभी स्वस्थ होता है, कभी बीमार; कभी जवान होता है, कभी बूढ़ा। तीन दुःख बतलाए गए हैं—रोग, बुढ़ापा और मौत। आदमी को रोग के दुःख की अनुभूति होती है। दुःख आने पर आदमी बेचैन होता है। सामान्यतः हर आदमी को रोग आता है, पीड़ा होती है।

वर्तमान में वैज्ञानिक इस खोज में लगे हुए हैं कि बीमारी की अवस्था में भी पीड़ा न हो। वे पीड़ा कम करने के लिए पीड़ाशामक औषधियां देते हैं। दर्द शांत करने के लिए अफीम से बनने वाली गोलियां, मोर्फिन का इन्जेक्शन आदि, अरबों-खरबों रुपयों की औषधियां प्रतिवर्ष बाजार में बिक रही हैं और बहुत सारे सिरदर्द, जोड़ों का दर्द, घुटनों का दर्द—इन सब दर्दों को मिटाने के लिए गोलियां खाते रहते हैं।

दर्द को मिटाने के लिए और रोग को शांत करने के लिए चिकित्सा की अनेक पद्धतियां विकसित हुईं। एक पद्धति उसके साथ मैत्री स्थापित करने की है। आज के मनोवैज्ञानिक बता रहे हैं कि हम दस-बीस वर्षों में ऐसी मानसिक प्रक्रिया खोज लेंगे कि बीमार को ऐसा प्रशिक्षण दें कि वह बिना दवा के दर्द को सहन कर सके। हमारी एक शारीरिक प्रणाली है, उसमें पीड़ा-शामक रसायन बनते हैं (जिसे "एण्डोर्फीन" कहते हैं)। साधना

Scanned by CamScanner

के द्वारा व्यक्ति पीड़ा-शामक रसायन को भीतर ही पैदा कर पीड़ा को सहन कर सकता है।

साधना के क्षेत्र में एक उपाय खोजा गया जिससे बीमारी की अवस्था में भी आदमी शांत रह सकता है, समता में रह सकता है और सुख का अनुभव कर सकता है। इधर पीड़ा और उधर वह सुख अनुभव करे, यह एक बहुत विचित्र खोज है। साधना के प्रयोग से रोगी भय, चिंता और तनाव से मुक्त हो सकता है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग से व्यक्ति अभय का विकास करे, चिंतामुक्त रहे तो पीड़ा पांच प्रतिशत जितनी भी अनुभव नहीं होगी। भय और चिंता के साथ पीड़ा बढ़ जाती है और अभय एवं निश्चिंतता की स्थिति में पीड़ा कम हो जाती है। हमारी भावात्मक और मानसिक स्थितियां पीड़ा के होने और न होने के हेतुभूत बनती हैं। अनुप्रेक्षा की निष्पत्ति है—अभय का विकास करना और चिंता एवं तनाव से मुक्त होना।

भावना के प्रयोग से आदमी में परिवर्तन आ जाता है। भावना बदली और आदमी बदल जाता है, क्योंकि भावना के साथ हमारे रसायन बदलते हैं। उसमें विश्वास और आस्था की शक्ति बड़ा काम करती है। न जाने कितने लोग संतों के पैरों की धूलि लेकर भयंकर बीमारियों से मुक्त हो जाते हैं। तो क्या यह धूलि का चमत्कार है? नहीं, यह भावना का चमत्कार है, विश्वास और आस्था की शक्ति का चमत्कार है। ऑटो-सजेशन (भावना) के प्रयोग के द्वारा आस्था और विश्वास की शक्ति को काम में लिया जा सकता है और रासायनिक परिवर्तनों के द्वारा बीमारियों का शमन किया जा सकता है तथा उन्हें नष्ट भी किया जा सकता है। आंतरिक रसायनों को बनाने की और बदलने की प्रक्रिया एक प्रकार से आध्यात्मिक चिकित्सा की प्रक्रिया है।

प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा—इन दोनों की समन्वित साधना व्यक्ति को आधि, व्याधि और उपाधि से मुक्ति दिला सकती है। प्रेक्षा के प्रयोग से पता चलता है कि स्थिति क्या है। जैसे-जैसे देखने का अभ्यास बढ़ता है, पूरे शरीर में होने वाले प्राण के प्रकंपनों को जानने का व अनुभव करने का अभ्यास बढ़ता है। उसे पता चलता है, शरीर के कौन-से तन्त्र और कौन-से अवयव में गड़बड़ी है। फिर भावना-प्रयोग से उन तन्त्र या अवयव की प्रक्रिया में सुधार किया जा सकता है। और व्यक्ति व्याधि से मुक्त हो सकता है।

Scanned by CamScanner

अभ्यास

१. अनुप्रेक्षा की परिभाषा लिखिए और इसका वैज्ञानिक आधार स्पष्ट कीजिए।

२. "अनुप्रेक्षा की पद्धति मनुष्य के स्वभाव-परिवर्तन की अचूक पद्धति है।" इस कथन को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

३. जैन साधना-पद्धति में 'भावनायोग' का स्वरूप एवं महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

४. "प्रेक्षा के पश्चात् अनुप्रेक्षा और अनुप्रेक्षा के पश्चात् प्रेक्षा" ऐसा मानने का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

५. अनुप्रेक्षा की निष्पत्ति क्या है? स्पष्ट कीजिए।

६. "व्याधि, उपाधि और आधि जब निःशेष हो जाती है तब समाधि घटित होती है।" इस कथन के प्रकाश में व्याधि, उपाधि और आधि का स्वरूप समझाते हुए बताइए कि ऐसा क्यों माना गया है?

७. स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ राष्ट्र और स्वस्थ विश्व के निर्माण में अनुप्रेक्षाओं की साधना का व्यावहारिक महत्त्व प्रकट कीजिए।

Scanned by CamScanner

आसन, प्राणायाम और मुद्रा

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

प्रेक्षाध्यान में आसन, प्राणायाम, मुद्रा और यौगिक क्रियाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब तक आसन नहीं सधता, मुद्रा ठीक नहीं होती—ध्यान की पूर्व तैयारी ही नहीं हो पाती। बिना आसन साधे ध्यान में बैठ जाने वाले का शरीर स्थिर नहीं रह पाता जो कायोत्सर्ग की पहली शर्त है। शरीर का शिथिलीकरण नहीं होता तो कायोत्सर्ग नहीं होता है। ये दोनों हुए बिना चैतन्य के प्रति जागरूकता आ नहीं सकती क्यों चित्त शरीर की अस्थिरता और चंचलता में ही अटका रह जाता है। प्राणायाम श्वास-प्रेक्षा का आधार है। मुद्राओं का भावों के साथ सीधा सम्बन्ध है। जैसे भाव वैसी मुद्रा और जैसी मुद्रा वैसा ही भाव का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इसलिए ध्यान के लिए आसन, मुद्रा, प्राणायाम और यौगिक क्रियाएं विज्ञान-सम्मत अनिवार्यताएं हैं।

अस्थि-तन्त्र

हमारे शरीर का हड्डियों का ढांचा सारे शरीर का बोझ उठाये हुए है। अस्थियों में जगह-जगह जोड़ हैं जिनसे हम शरीर के उस भाग को आसानी से मोड़ सकते हैं। जिस तरह दरवाजे को कई दिन न खोला जाए तो उसके कब्जे को जंग पकड़ लेता है और दरवाजा आसानी से नहीं खुलता, इसी तरह शरीर के जोड़ों को शुरू से ही आसन आदि के द्वारा स्वस्थ नहीं रखा जाए, तो वे जल्दी ही कड़े होकर दुखने लग जाते हैं। जोड़ों का दर्द आज के विश्व की एक बड़ी बीमारी है। आसन करने से जोड़ स्वस्थ बने रहते हैं और वहां शरीर से ऐसे स्राव पहुंचते हैं जिनसे उनके मुड़ने में मदद मिलती है। हड्डियां स्वस्थ बनी रहने से और मजबूत बनी रहने से हमारी रोग-प्रतिरोधक शक्ति भी बनी रहती है क्योंकि अनेक आवश्यक तत्त्व शरीर को हमारी अस्थि-मज्जा से प्राप्त होते हैं।

मांसपेशियां—हमारी शरीर में अस्थितन्त्र तथा अन्य अवयवों की

Scanned by CamScanner

सुरक्षा के लिए मांसपेशियां बनी हैं। ये मांसपेशियां शरीर के हलन-चलन में सहायक है। ये दो प्रकार की हैं—ऐच्छिक और अनैच्छिक। ऐच्छिक मांसपेशियों को हम अपनी इच्छानुसार काम में लेते हैं और अनैच्छिक स्वयं ही संचालित होती हैं। मांसपेशियों की कुल संख्या ५१९ है। इसमें ४५१ तो अस्थियों के संचालन में सहायक हैं। बाकी ६८ आंख, कान, जीभ आदि अवयवों से सम्बन्धित हैं। अनैच्छिक मांसपेशियां हृदय, फेफड़े, रक्त-खण्डों और पूरे पाचन-तन्त्र में फैली हुई हैं। इन मांसपेशियों पर आसनों और यौगिक क्रियाओं का जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। आसन करने से मांसपेशियां ज्यादा सक्रिय और मुलायम बन जाती हैं। उनकी कार्य-क्षमता बढ़ जाती है। शरीर की सुन्दरता भी मांसपेशियों के स्वरूप पर निर्भर है। अगर मांसपेशियां ढीली पड़ जाती हैं तो शरीर भी बूढ़ा दीखने लगता है। मांसपेशियां स्वस्थ हों तो सुन्दरता अपने आप आ जाती है। ज्यादातर मांसपेशियां अस्थितन्त्र को बांधकर रखती हैं और अस्थियों के हलन-चलन में सहायक होती हैं। अगर मांसपेशियों में लचीलापन नहीं है तो शरीर का हलन-चलन ठीक नहीं होगा। शरीर अकड़ जाने से शरीर को पूरी क्षमता भर नहीं मोड़ सकते। शरीर की अकड़न बुढ़ापे की निशानी है। आसन करने से इन सबमें सुधार आता है। अनैच्छिक मांसपेशियां भी स्वस्थ होने पर शरीर के पाचनतन्त्र, आंख, हृदय, कान, जीभ आदि को अधिक सक्रिय बनाकर पूरे शरीर को स्वस्थ बनाती हैं। जब आसन किये जाते हैं तो उसके साथ भाव भी कार्य करते हैं और हमारे भावों के अनुरूप मांसपेशियां बननी शुरू हो जाती हैं।

पाचनतन्त्र पर प्रभाव

आसनों और यौगिक क्रियाओं से पाचनतन्त्र का सम्यक् व्यायाम होता है। कहा जा सकता है कि व्यायाम से भी यह काम किया जा सकता है किन्तु जहां व्यायाम से ३ से लेकर ४४ केलौरी ऊर्जा खर्च होती है वहां आसनों से दशमलव शून्य, कायोत्सर्ग में दशमलव शून्य ३ केलौरी ऊर्जा ही खर्च होती है। आमाशय, लीवर, छोटी आंत, बड़ी आंत, पेनक्रियाज, विसर्जन तन्त्र आदि सभी पाचन और विसर्जन-तन्त्र आसनों और यौगिक क्रियाओं से प्रभावित होते हैं। (पाचनतंत्र के चित्र के लिए देखें पृष्ठ ८७) साथ ही वे जीवन भर लचीले बने रहते हैं, जबकि व्यायाम से वे कड़े पड़ जाते हैं और आगे चलकर स्वास्थ्य को हानी पहुंचाते हैं। सात्त्विक और सन्तुलित आहार योगासनों में अनिवार्य तौर पर लेना जरूरी है, तभी आसनों से लाभ हो सकता है।

Scanned by CamScanner

रक्त-संचरण तन्त्र

प्राणायामों, आसनों और यौगिक क्रियाओं के साथ हृदय, रक्तवाहिनी नलिकाएं और पुनः हृदय में रक्त पहुंचाने वाली नलिकाएं—सब लचीली बनी रहती हैं और स्वस्थ रहती हैं। (चित्र के लिए देखें पृष्ठ ८५ पर) आसन-प्राणायाम करने और संयम से जीने वालों को जल्दी रक्त-चाप जैसी बीमारियां नहीं होती हैं।

श्वसन-तन्त्र

प्राणायाम के जरिये श्वास को लम्बा करके अधिकतम ऑक्सीजन

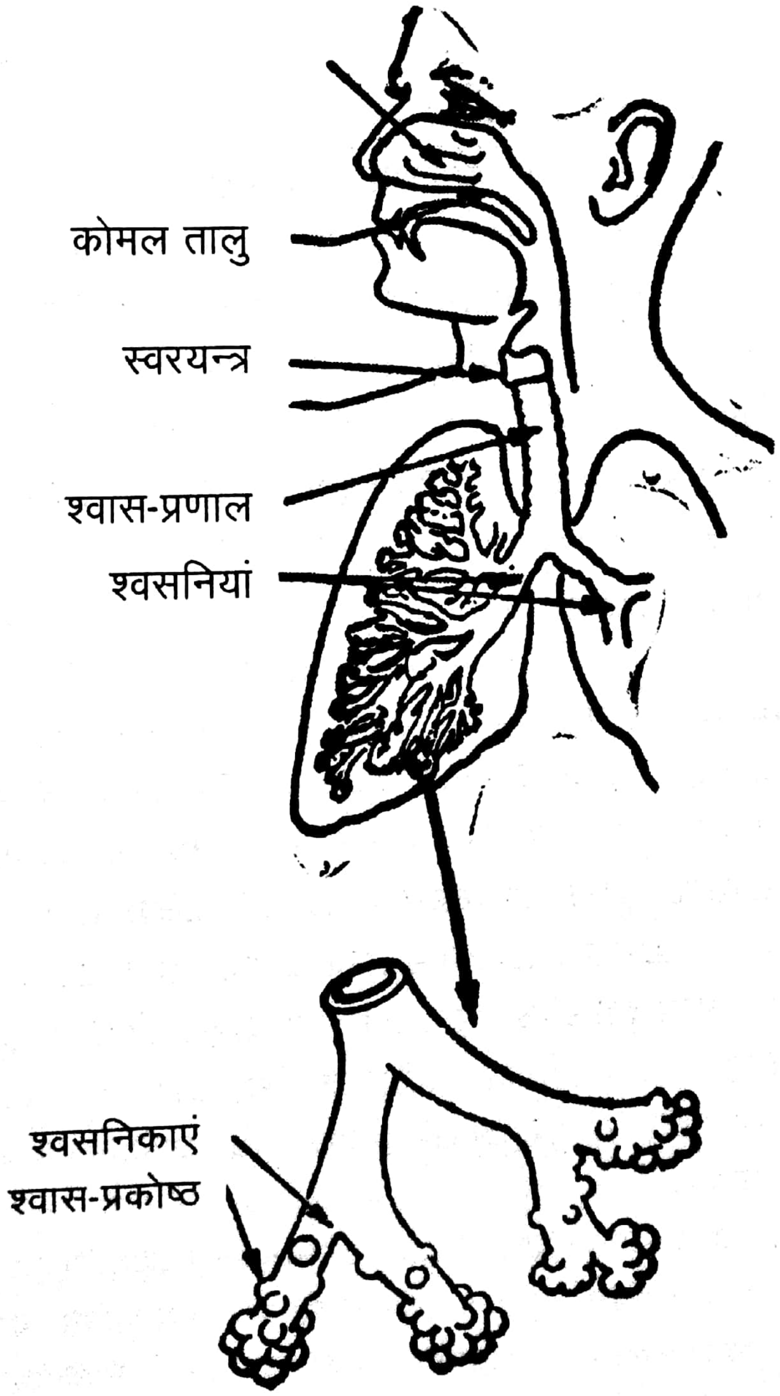

Scanned by CamScanner

का शरीर में उपयोग करते हैं और अधिकतम कार्बन डाइऑक्साइड निकालते हैं। नाड़ी शोधन प्राणायाम के जरिये खून की नस-नाड़ियों का शोधन करके उसको स्वस्थ बनाया जाता है। इससे रक्त-चाप जैसी बीमारी या तो होती ही नहीं और अगर पहले से है तो ठीक हो जाती है। भस्त्रिका प्राणायाम के जरिये श्वसन तन्त्र के अवयवों को स्वस्थ रखा जाता है। इससे कफ आदि के बिगड़ने से होने वाली बीमारियां नहीं हो पातीं।

नाड़ी-तन्त्र

रीढ़ की हड्डी में साइकिल के चेन की तरह अनेक हड्डियां मिली हुई होती हैं जो इस हड्डी को लचीला बनाती हैं। (चित्र के लिए देखें पृष्ठ ८४ पर) इस हड्डी का लचीलापन स्वास्थ्य की निशानी है। आसन-प्राणायामों के माध्यम से रीढ़ की हड्डी को लम्बी उमर तक लचीला बनाकर रखा जा सकता है। रीढ़ की हड्डी के भीतर से **योगशास्त्र** के हिसाब से तीन मुख्य नाड़ियां गुजरती हैं : इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इन नाड़ियों को प्राणायाम के जरिये स्वस्थ और सक्रिय रखा जाता है। आसन-प्राणायाम के जरिये न्यूरोन्स को अधिकतम विश्राम दिया जा सकता है और उनकी उम्र बढ़ाई जा सकती है। इस तरह हमारी स्मरण शक्ति लम्बे समय तक न सिर्फ बनी रहती है बल्कि सबल भी बनी रहती है। चिन्तन और कल्पना के सही तरीके के कारण व्यक्ति की कार्य-कुशलता भी बढ़ जाती है। रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क सम्बन्धी अनेक बीमारियों से बचाव होता है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र

आसनों, यौगिक क्रियाओं, मुद्राओं और प्राणायाम का असर हमारे भावों पर पड़ता है। निषेधात्मक भावों की जगह विधेयात्मक भाव लेते हैं और इस तरह हमारा भावनात्मक स्वास्थ्य अच्छा होता है। दीर्घ-श्वास-प्राणायाम के अभ्यास से तमाम निषेधात्मक भावों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। दीर्घ-श्वास-प्रेक्षा से भावों का शमन होता है और आसनों से ग्रन्थि स्राव संतुलित होते हैं। (चित्र के लिए देखें पृष्ठ ८८ पर) इस तरह अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर आसनों, प्राणायाम आदि का असर स्पष्टतया दीखता है।

आज का आयुर्विज्ञान बहुत ही उन्नत है। आयुर्विज्ञान ने आसनों का अनेक रोगों पर प्रयोग किया और पाया कि जहां अनेक दबाएं काम नहीं करतीं, वहां आसनों से फायदा होता है। इन्हीं प्रयोगों के आधार पर

Scanned by CamScanner

आयुर्विज्ञान ने एक नवीन शाखा का उद्भव किया जिसे 'फिजियोथेरापी' कहा जाता है। आज विश्व में प्रायः सभी रोगों में आसन के महत्त्व को स्वीकार किया गया है और वे अपने प्रचार-तन्त्र द्वारा आसनों का खुल कर प्रचार कर रहे हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण

अध्यात्म चेतना की अन्तरंग अभिव्यक्ति है। व्यक्ति अपनी अनुभूतियों से गुजर कर आनन्द को उपलब्ध करता है। साधना की विविध परम्पराओं ने उसके लिए व्यक्ति का मार्गदर्शन किया है।

विज्ञान ने मनुष्य को जहां सुख-सुविधा के लिए साधन दिए हैं, वहां मानसिक तनाव और शारीरिक अस्वास्थ्य का अभिशाप भी दिया है। जो देश जितना आधुनिक और यन्त्रों से सुसज्जित हुआ, वह देश स्नायविक तनाव से ग्रसित और मानसिक व शारीरिक दृष्टि से रुग्ण बना। हिन्दुस्तान अभी भी पूर्ण आधुनिक नहीं है फिर भी ज्यों-ज्यों यंत्रों के साधनों का विकास यहां हो रहा है, मानसिक तनावों के दोष विकसित होते जा रहे हैं। व्यक्ति चिन्ता, भावुकता, परेशानियों से घिरता जा रहा है, जिससे उसका जीवन तनाव-ग्रस्त होने लगता है। तनाव से ग्रसित व्यक्ति केवल मानसिक दृष्टि से ही पीड़ित नहीं होता, बल्कि शारीरिक दृष्टि से भी रुग्ण व पीड़ित होता है। मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के उपलब्ध होने का सरल और सहज मार्ग योगासन है। योगासन जहां साधना की सिद्धि में सहयोगी बनते हैं, वहां शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक प्रसन्नता के लिए वरदान बनते हैं। योगासनों से सुख-दुःख, लाभ-अलाभ आदि द्वन्द्वों का अभिघात होता है। कष्ट-सहिष्णुता एवं माध्यस्थ्यवृत्ति भी विकसित होने लगती है। आसन शरीर के अवयवों, मांसपेशियों, स्नायु-मण्डल को सक्रिय, शक्तिशाली एवं सन्तुलित बनाने के लिए उपयोगी है। आसनों के असंख्य प्रकार हैं। जीवों की जितनी योनियां हैं, उनके शरीर के जो आकार हैं, उन सबको आसन की संज्ञा दी जा सकती है। शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति की दृष्टि से उपयोगी आसनों की विधि एवं चर्या ही यहां उपयुक्त रहेगी। योगासन प्रारम्भ करने से पूर्व कुछ आवश्यक संकेत मननीय हैं, जिनसे योगासन का पूर्ण लाभ उठाया जा सकता है।

योगासन का अभ्यास एकान्त, शान्त व खुली जगह में करें। आसन का समय प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व एवं सूर्योदय के एक घण्टा पश्चात्

Scanned by CamScanner

करना उत्तम है। आसन खाली पेट ही करना चाहिए। भोजन के तीन घण्टे तक आसन करना वर्जित है। आसन करते ही तत्काल भोजन न करें। आसन के समय तंग वस्त्र न पहनें। आसन के समय शरीर एवं मन को शांत रखें।

आसन प्रारम्भ करने वाले नवीन साधक को प्रथम दिन दो चार सरल आसन ही करने चाहिए। आसन की विधि और अभ्यास को अच्छी तरह समझ लें या योग्य व्यक्ति के निर्देशन में अभ्यास करें।

आसन के दो प्रकार हैं—स्थित्यात्मक और गत्यात्मक। स्थित्यात्मक आसनों में पद्मासन, सिद्धासन आदि ध्यानासन आते हैं। स्थित्यात्मक आसनों में मांसपेशियों को विश्राम मिलता है। गत्यात्मक आसनों में शरीर के अवयवों को गतिशील करना होता है। यह गति अत्यन्त धीमी तथा सावधानीपूर्वक की जाती है। इन्हें करते समय ध्यान शरीर की बदलती हुई तंत्रिका पेशियों को विशेष स्थिति में लाने के लिए रक्खा जाता है। गत्यात्मक आसनों में शरीर गति करता हुआ प्रतीत होता है। परन्तु गति के पश्चात् शरीर को कुछ समय तक शिथिल छोड़ देना आवश्यक है, जिससे विजातीय तत्त्व का निरसन एवं शरीर में शक्ति-संचय हो सके।

आसन के अभ्यास से शुरू में पेशियों पर स्वल्प तनाव आता है। क्रमशः अभ्यास से आसन की सहज स्थिति तक पहुंच जाते हैं। उस समय तनाव का अनुभव नहीं होता। केवल पेशियों या किसी अवयव को एक आकार में ले जाना ही आसन का उद्देश्य नहीं है। आसन के साथ शरीर को शिथिल छोड़ना भी आवश्यक है, क्योंकि उससे ही स्नायु-संस्थान में ठहरे हुए विजातीय तत्त्वों का शोधन होता है। योगसूत्र में उल्लिखित "प्रयत्नशैथिल्यं" की यही अवस्था है। इससे शरीर शिथिल होकर तनाव-मुक्त हो जाता है।

यह निर्विवाद है कि काया की क्षमता के अभाव में वाक् और मन शीघ्र उत्तेजित हो जाते हैं। वाक् और मन पर संयम से पूर्व काय-संयम आवश्यक है। उसके लिए आसनप्रक्रिया एक सम्यग्-अनुष्ठान है। आचार्य कुन्दकुन्द ने तो स्पष्ट उद्घोषित किया है कि जिन-शासन को जानने के लिए आहार-विजय के साथ आसन-विजय को जानना आवश्यक है। जैन परम्परा में आसनों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। वे इस प्रकार हैं—

१. उत्थित—खड़े होकर किए जाने वाले आसन।

Scanned by CamScanner

२. स्थित–बैठकर किए जाने वाले आसन।

३. शयन–लेटकर किए जाने वाले आसन।

उत्थित आसनों में वीर-वंदन, समपाद, एकपाद, गृध्रोड्डीन, त्रिकोणासन, ताड़ासन आदि हैं। स्थित आसनों में पद्मासन आदि हैं। शयन आसनों में दण्डशयन आदि है।

आसन-प्राणायाम भारतीय चिन्तन में सभी विचारधाराओं में हैं। वैदिक विचारधारा–हठयोग प्रदीपिका में आसनों के बारे में लिखा है–

हठस्य प्रथमांगत्वादासनं पूर्वमुच्यते।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम् ।।१७।।

इसका अर्थ इस प्रकार है–

हठयोग का प्रथम अंग आसन का वर्णन करते हुए कहा गया है कि आसन में स्थिरता इसलिए करें कि मन की चंचलता जो रजोगुण का धर्म है उसका आसन नाश करता है। यानी चित्त का विक्षेप नहीं होता। महर्षि पतंजलि ने रोग को भी चित्त का विक्षेप कहा है। व्याधि-उत्थान-संशय-प्रमाद-आलस्य-अविरति-भ्रांति दर्श अलब्धभूमि (पूर्वोक्त भूमियों का न मिलना), अनवस्थित (चंचलता) ये चित्त के विक्षेप रूप विघ्न हैं। अंगों के लाघव से ये सभी विघ्न जल्दी नजदीक नहीं आते।

इसी हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम के बारे में लिखा है–

चले वातं चले चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायु निरीधयेत्।।२।।

अर्थ–प्राणवायु के चलायमान होने से चित्त भी चलायमान हो जाता है। प्राणवायु के निश्चल होने पर चित्त भी निश्चल होता है। प्राणवायु और चित्त दोनों के निश्चल होने पर योगी स्थाणु रूप को प्राप्त होता है यानी दीर्घकाल तक जीता है। इसलिए योगियों को दीर्घकाल तक श्वास पर अधिकार प्राप्त करने का अभ्यास करना चाहिए।

घेरण्ड ऋषि ने आसनों के बारे में लिखा है–

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीव–जन्तवः।
चतुरशीति लक्षानि शिवे नाभिहितानि च।।१।।
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम्।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम्।।२।।

अर्थ–महर्षि घेरण्ड ने कहा है–संसार में जितने जीवों की योनियां हैं

Scanned by CamScanner

उतने ही आसन होते हैं। जीव योनियां ८४ लाख मानी गई हैं। आसन भी ८४ लाख होते हैं। इनमें भी ८४ आसन श्रेष्ठ माने गये। इनमें भी ३२ आसन अति विशिष्ट, अधिक शुभ समझने चाहिए।

घेरण्ड मुनि के अनुसार आदिनाथ ने पहले ८४ लाख आसन बताए क्योंकि संसार में प्राणियों के भी इतने ही प्रकार होते हैं। हर प्राणी में कुछ न कुछ विशेषता होती है। जैसे कुत्ते में घ्राण शक्ति तेज होती है तो गिद्ध में दृष्टि तेज होती है। जानवरों के शरीर के आकार और स्वभाव की भावना करने और तद्‌रूप बनने से उनके गुण भी आ ही जाते हैं। किन्तु इतने आसनों पर काम करना सम्भव न जानकर ८४ आसन विशिष्ट समझकर छांटे गए। उनमें भी ३२ आसन अति विशिष्ट मानकर तय किए गए। इस तरह हम देखते हैं कि आसनों की महत्ता हमारे अति प्राचीन योग-ग्रन्थों में भी पाई जाती हैं।

प्राणायाम के बारे में भी घेरण्ड संहिता में वर्णन है। श्वास पर नियन्त्रण प्राप्त करना ही प्राणायाम है। इसका मत भी प्राणायाम के बारे में हठयोग प्रदीपिका से मिलता है।

बौद्धों में भी आनापानसति के नाम से श्वास का बहुत महत्त्व है। ज्यों-ज्यों स्वभाव परिवर्तन होता है, श्वास भी बदल जाता है। इस तरह देखते हैं कि श्वास और वृत्तियों का गहरा सम्बन्ध है।

भारतीय चिन्तन और अध्यात्म में आसन और प्राणायाम का बहुत महत्त्व है जो आज विज्ञान द्वारा समर्थित हो चुका है।

विज्ञान किसी भी देश-विशेष, जाति-विशेष, वर्ग-विशेष और धर्म-विशेष की वस्तु नहीं है। इसी तरह योग अध्यात्म का प्रयोगसिद्ध सिद्धांत है। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में "योग योग होता है। वह न जैन होता है, न बौद्ध और न पातञ्जल। फिर भी व्यवहार ने कुछ रेखाएं खींच दीं, योग के प्रवाह को बांध बना दिया और नाम रख दिया—जैन योग, बौद्ध योग, पातंजल योग। पर इस सत्य को न भूलें—योग योग है, फिर उसका कोई भी नाम दो।"

परमाणु प्रयोगशाला में सिद्ध वैज्ञानिक सत्य है। फिर चाहे उसको रूस के वैज्ञानिक ने अपनी प्रयोगशाला में प्रयोग कर सिद्ध किया हो, चाहे अमेरिकन या जापान ने ही। उसी तरह योग के सिद्धांत अध्यात्म की प्रयोगशाला में परखे जाते हैं और तभी वे सत्य रूप में सामने आते हैं। यह मानना नहीं—जानना है। योग सत्य का प्रयोग है।

Scanned by CamScanner

अध्यात्म में प्राणधारा का मूल आधार सात चक्रों को माना गया है। ये सभी चक्र मस्तिष्क से लेकर रीढ़ की हड्डी के भीतर से जाने वाली नाड़ियों से होते हुए रीढ़ की हड्डी के अन्तिम छोर तक फैले हुए हैं। नई खोजों से पता चलता है कि पूरे शरीर में अनेकों चेतना-केन्द्र फैले हुए हैं, फिर भी चक्रों, विज्ञान की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों और प्रेक्षाध्यान के चैतन्य-केन्द्रों की तुलना करने पर लगता है कि ये भिन्न नाम होते हुए भी एक ही प्रयोगसिद्ध सत्य का उद्घाटन करने वाले हैं।

आसनों और प्राणायामों के जरिए इन चैतन्य-केन्द्रों को प्रभावित करके शक्ति का ऊर्ध्वारोहण किया जा सकता है। शक्ति का ऊर्ध्वारोहण होने से व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य और प्रेरणाएं पशु स्तर से ऊपर उठकर सम्यक् ज्ञानदर्शन से प्रभावित होती हैं। सम्यक् ज्ञानदर्शन से प्रभावित व्यक्ति अपने लक्ष्य की ओर जब कदम बढ़ाता है तो उसका चरित्र भी तदनुरूप हो जाता है। उसकी संकल्पशक्ति दृढ़ हो जाती है। इस तरह प्राणायाम के जरिए सफलता का रास्ता खुल जाता है।

इसी साधना-क्रम को अष्टांग योग ने ८ (आठ) अंगों में विभाजित किया, जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये पांच बहिरंग योग कहलाते हैं और धारणा, ध्यान और समाधि—ये तीन अन्तरंग योग हैं। इसी तरह का मिलता-जुलता क्रम जैन ध्यान-पद्धति में भी है जैसे अनशन, अवमौदर्य, वृत्ति-संक्षेप, रस-परित्याग, कायक्लेश, प्रतिसंलीनता—ये छह बहिरंग हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग—ये छः अन्तरंग हैं। यम-नियमों को जैन योग में संयम के अन्तर्गत और उपर्युक्त १२ को निर्जरा के अन्तर्गत लिया है। उद्देश्य दोनों का ही कैवल्य प्राप्त करना है। इस तरह हम स्पष्ट नतीजे पर पहुंचते हैं कि जहां योग और ध्यान साधना का सम्बन्ध है, वहां कहीं भी प्रयोगसिद्ध सचाई ही मान्य है।

आसन : प्रयोजन

आसन केवल शारीरिक प्रक्रिया मात्र नहीं है, उसमें अध्यात्म निर्माण के बीज छिपे हैं। आसन अध्यात्म-प्रवेश का प्रथम द्वार है। आसन शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। आस् धातु बैठने के लिए प्रयुक्त होती है। पतंजलि के अनुसार—'स्थिर सुखमासनम्'—जिससे स्थिरता और सुखपूर्वक ठहरा जा सके, वह आसन है। विधिपूर्वक लेटना, बैठना, खड़े रहना—तीनों मुद्राओं में आसन किए जा सकते हैं। आसन शरीर की क्रियाओं को

Scanned by CamScanner

व्यवस्थित ही नहीं बनाता, अपितु वाक् और मन को भी स्थिरता प्रदान करता है। वर्तमान युग में आसनों की उपयोगिता निर्विवाद सिद्ध है।

प्रेक्षा स्वरूप उपलब्धि की प्रक्रिया है। व्यक्ति मूढ़ता से बहिर्यात्रा करने लगता है। बहिर्मुखी वृत्ति ही व्यक्ति को स्वरूप से दूर ले जाती है। स्वरूप की दूरी ही आधि-व्याधि और असमाधि का कारण बनती है। प्रेक्षा-साधना सर्वांगीण पद्धति है। इसमें जहां अध्यात्म के शिखरों की चर्चा है, वहां शरीर-शुद्धि, श्वास और प्राण-शुद्धि के लिए आसन और प्राणायाम का भी विधिवत् प्रशिक्षण दिया जाता है।

आसन के लिए प्रयुक्त होने वाले वस्त्र आदि को भी आसन की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ये आसन सूत, कुशा, तिनके, ऊन आदि के होते हैं। ऊन का आसन श्रेष्ठ माना जाता है। आसन शरीर की सहज स्थिति के लिए है। हठयोग में आसनों के असंख्य प्रकार बताए गए हैं। जीव योनियों के समान आसनों की संख्या भी चौरासी लाख है। इनमें से चौरासी आसनों की प्रधानता रही है। समय, क्षेत्र एवं शारीरिक बनावट को ध्यान में रखते हुए प्रेक्षाध्यान की दृष्टि से कुछ चुने हुए आसनों की यहां चर्चा की गई है। शरीर की स्थिति को जैन परम्परा में "कायगुप्ति" कहा गया है।

आसन और शक्ति-संवर्धन

संस्कार-शुद्धि के साथ संयम एवं शक्ति-संवर्धन के लिए आसन का अभ्यास किया जाता है। स्थिति एवं गति आसन के दो स्वरूप हैं। स्थिति गुप्ति और गति समिति है। इससे संस्कारों का विलय होता है। ध्यान के लिए "स्थित आसन" उपयोगी है। इसमें लम्बे समय तक ठहरा जा सकता है। पद्मासन, वज्रासन, सिद्धासन, सुखासन एवं कायोत्सर्ग ये ध्यान-आसन हैं। स्थित-आसन से मांसपेशियों को विश्राम मिलता है। विश्राम की यह स्थिति कायोत्सर्ग का एक प्रकार है।

गति वाले आसनों में मांसपेशियों की पारस्परिक गति से शरीर को संतुलित बनाया जाता है। ये पेशियां जोड़ों को व्यवस्थित बनाती हैं तथा गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध सन्तुलन बनाए रखती हैं। इससे शक्ति का संवर्धन होता है।

गत्यात्मक आसनों में शरीर के अवयवों को गतिशील करना होता है। यह गति अत्यन्त धीमी तथा सावधानीपूर्वक की जाती है। इन्हें करते समय शरीर की बदलती हुई पेशियों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

Scanned by CamScanner

गति के पश्चात् शरीर को कुछ समय तक शिथिल छोड़ देना आवश्यक होता है, जिससे विजातीय तत्त्वों का निरसन एवं शरीर में शक्ति संचय हो सके।

प्रारम्भ में आसन के अभ्यास से पेशियों पर स्वल्प-सा तनाव आता है, पर क्रमशः अभ्यास के द्वारा आसन की सहज स्थिति तक पहुंचा जा सकता है। उस समय तनाव का अनुभव नहीं होता। केवल पेशियों या किसी अवयव को आकार में ले आना ही आसन का उद्देश्य नहीं है। आसन के साथ शरीर को शिथिल छोड़ना भी आवश्यक है क्योंकि उससे ही स्नायु-संस्थान में ठहरे हुए विजातीय तत्त्वों का शोधन होता है। योग-सूत्र में उल्लिखित "प्रयत्नशैथिल्य" यही अवस्था है। इससे शरीर शिथिल होकर तनाव-मुक्त हो जाता है।

आसन-विजय साधना का आधार है। उसके अभाव में व्यक्ति दीर्घ ध्यान, कायोत्सर्ग, भावना-योग आदि का अभ्यास कैसे कर सकता है? आसन का प्रयोग केवल शारीरिक ही नहीं, आध्यात्मिक भी है। आसनों के अभ्यास से न केवल कायसंयम, अपितु वाक् और मन भी संयमित होता है। इससे शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक तनावमुक्ति सहज होती है। आसनों के नियमित अभ्यास से काया अन्तरंग यात्रा के उपयुक्त बन जाती है। बाह्य-क्लेश एवं परीषह-विजय की क्षमता उत्पन्न होने लगती है।

आसन और स्वास्थ्य

आसन शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति एवं आध्यात्मिक विकास के लिए उपयुक्त भूमिका का निर्माण करता है। आसन अस्वस्थ व्यक्ति के लिए उपयोगी है, जो स्वस्थ व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान युग में कार्याधिक्य एवं व्यस्तता से मनुष्य अपने जीवन की उपयोगी एवं आवश्यक क्रियाओं का भी परित्याग कर देता है, जिससे न केवल वह स्वास्थ्य से हाथ धोता है, अपितु जीवन-विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर देता है।

आसन से मानसिक प्रसन्नता के साथ-साथ शरीर के अवयवों पर सीधा असर होता है। संधि-स्थल, पक्वाशय, यकृत, फेफड़े, हृदय, मस्तिष्क आदि सम्यक्तया अपना कार्य करने लगते हैं।

आसन में मांसपेशियां सुदृढ़ एवं सुडौल बनती हैं, जिससे पेट एवं कमर का मोटापा दूर होता है। चर्बी भी आसन से स्वयं कम होने लगती है। आसन करने से शरीर के सभी अंग एवं कोशिकाएं सक्रिय हो जाती हैं, जिससे रोग-प्रतिकार की क्षमता एवं स्वास्थ्य उपलब्ध होता है।

Scanned by CamScanner

स्नायु-मण्डल को शक्ति-सम्पन्न एवं सक्रिय करने के लिए आसन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्नायुओं में क्रियावाहिनी और ज्ञानवाहिनी दोनों प्रकार की नाड़ियां होती हैं। आसन से उन पर विशेष प्रकार का दबाव पड़ता है, जिससे उनका संकोच-विकोच होता है। इससे वे पुष्ट एवं सक्रिय बनती हैं। उनकी सक्रियता एवं क्रियाशीलता शक्ति उत्पन्न करती है। स्नायुमंडल मस्तक से लेकर पांव के अंगुष्ठ तक फैले हुए हैं। आसन से समस्त स्नायु प्रभावित होते हैं, अतः स्वास्थ्य-साधना की दृष्टि से आसन की उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता।

साधना की दृष्टि से जोड़ों का लचीलापन अत्यन्त अपेक्षित है। सुषुम्नाशीर्ष तथा सुषुम्ना के जोड़ों में लचीलापन होने से उनके अन्दर से प्रवाहित होने वाले शक्ति-स्रोतों को सक्रिय किया जा सकता है। स्वास्थ्य एवं साधना की दृष्टि से सुषुम्ना (स्पाइनलकोर्ड) का स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है। आसनों से सुषुम्ना पर सीधा असर होता है।

आसन की गतिविधि से पाचन-संस्थान सक्रिय बनता है। उससे रासायनिक द्रव्यों का समुचित स्राव होता है।

आसनों का असर रक्त-संचार पर भी होता है। आसन से रक्त-शिराओं की गति में संकोच-विकोच होता है, जिससे उनमें रक्त-संचार सम्यक्तया होने लगता है। साथ ही प्रत्येक अंग का पोषण एवं अशुद्ध तत्त्व का परिहार होता है।

बौद्धिक विकास के साथ भौतिक वातावरण ने व्यक्ति को आज तनावपूर्ण स्थिति में पहुंचा दिया है। रक्तचाप एवं रक्तमंदता की बीमारी प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस पर नियन्त्रण के लिए योगासन अकसीर साधन है। कायोत्सर्ग के रूप में खोजी गई विधि जहां व्यक्ति को तनावमुक्त करती है, वहां रक्तचाप एवं उसकी मन्दता पर भी नियन्त्रण करती है।

आसनों में श्वास-प्रश्वास का भी विशेष प्रयोग किया जाता है जिससे फेफड़ों की क्रिया पूरी होती है। उसका परिणाम हृदय और रक्त-शोधन पर पड़ता है।

आसन का हमारी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (एण्डोक्राइन ग्लैण्ड्स) पर भी प्रभाव पड़ता है, जो शरीर एवं भावनाओं का नियंत्रण करती हैं, इन ग्रंथियों से एक विशेष प्रकार का स्राव होता है, जिसे हार्मोन कहते हैं। इससे शरीर, मन एवं चैतन्य-केन्द्रों के विकास में सहयोग मिलता है। शरीर-विज्ञान

Scanned by CamScanner

ने ग्रन्थियों के कार्य एवं प्रवृत्तियों पर सूक्ष्मता से अनुसंधान किया है। उससे ज्ञात हुआ है कि कौन-कौन सी ग्रन्थियां किन-किन भावों का काय एवं नियंत्रण करती हैं। उनको नियन्त्रित करने के लिए आसन, बंध एवं यौगिक क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है।

आसन का उद्देश्य

आसन से शरीर की सुघड़ता और सौदर्य में अभिवृद्धि होती है। साथ ही मानसिक शांति और निश्चिन्त जीवन की उपलब्धि होती है। आसन करने का उद्देश्य है–शरीर के यन्त्र को साधना के अनुरूप बनाना। शरीर का प्रत्येक अवयव सक्रिय एवं स्वस्थ बने, यह स्वास्थ्य और साधना दोनों दृष्टियों से अपेक्षित है। यह निर्विवाद है कि काया की क्षमता के अभाव से वाक् और मन शीघ्र उत्तेजित हो जाते हैं। वाक् और मन पर संयम से पूर्व काय-संयम आवश्यक है। उसके लिए आसन प्रक्रिया सम्यग् अनुष्ठान है। आचार्य कुन्दकुन्द ने तो स्पष्टतः उद्घोषित किया है–"जिन शासन को जानने के लिए आहार-विजय के साथ आसन-विजय को जानना आवश्यक है।"

योगासन और व्यायाम में मौलिक अन्तर है। व्यायाम एक्सरसाइज अथवा बॉडी-बिल्डिंग से शरीर की मांसपेशियां एवं कुछ अवयव ही पुष्ट बनते हैं। उनकी पुष्टता एक बार मांसपेशियों में उभार के रूप में सामने आती है, पर अन्त में उनमें कड़ापन आने लगता है। उनको छोड़ देने से मांसपेशियां ढीली पड़ जाती हैं और वे असुन्दर दिखाई देने लगती हैं। दूसरे प्रकार के व्यायाम कुश्ती, दौड़, बैठकें एक बार तो शरीर की मांसपेशियों आदि को प्रभावित करते हैं, किन्तु स्थायित्व की दृष्टि से उनके भी अन्तिम परिणाम सुन्दर नहीं आते।

योगासन योगियों द्वारा खोजा गया अनूठा विज्ञान है। योगासन हाथ-पांवों को ऊंचा-नीचा करना मात्र ही नहीं है, अपितु उसके पीछे पूरा विज्ञान है। कौन-सा आसन किस अवयव पर क्या प्रभाव डालता है, वह प्रभाव क्यों और किसलिए होता है, इन सबकी प्रायोगिक व्याख्याएं आज शोधकर्ताओं के पास उपलब्ध हैं।

आसन की श्रेणियां

१. शयन स्थान–लेटकर किये जाने वाले आसन।

२. निषीदन स्थान–बैठकर किये जाने वाले आसन।

३. ऊर्ध्व स्थान–खड़े होकर किये जाने वाले आसन।

Scanned by CamScanner

शरीर को विधिवत् स्थिर बनाकर रखना स्थान आसन कहलाता है। यह कायगुप्ति है। कायगुप्ति शरीर का संयम है। यह तीनों प्रकार से हो सकता है। लेटकर, बैठकर और खड़े होकर—तीनों प्रकार से आसनों को सिद्ध किया जा सकता है। आसन की सिद्धि सरलता से प्राप्त की जा सके, इसलिए सर्वप्रथम शयन-स्थान से आसन का प्रारम्भ करना शरीर-विज्ञान की दृष्टि से उपयोगी है। बच्चा प्रारम्भ में लेटकर क्रिया करता है, फिर बैठता है और फिर खड़े होकर अपनी यात्रा करता है। अतः आसन का क्रम भी शयन, निषीदन और ऊर्ध्व-स्थिति क्रम में रखा गया है। शयन स्थान के अन्तर्गत आसनों का विवरण दिया गया है। लेटने पर जो-जो अंग प्रभावित होते हैं, उनको लक्षित कर शयन-आसनों का चुनाव किया गया है। शयन-स्थान पीठ के बल और पेट एवं सीने के बल लेटकर किये जाते हैं, वे निम्नानुसार हैं :

शयन स्थान :—लेटकर किये जाने वाले आसन

१. कायोत्सर्ग
२. उत्तान पादासन
३. पवन मुक्तासन
४. भुजंगासन
५. शलभासन
६. धनुरासन
७. मकरासन
८. सर्वांगासन
९. हलासन
१०. मत्स्यासन
११. हृदयस्तंभासन
१२. नौकासन
१३. वज्रासन, सुप्त वज्रासन

निषोदन स्थान :—बैठकर किये जाने वाले आसन

१. सुखासन
२. स्वस्तिकासन
३. पद्मासन
४. योगमुद्रा
५. बद्ध पद्मासन
६. तुलासन
७. उत्थित पद्मासन
८. उत्कटासन
९. गोदुहासन
१०. गोमुखासन
११. जानुशिरासन
१२. पश्चिमोत्तानासन
१३. शशंकासन
१४. अर्धमत्स्येन्द्रासन
१५. उष्ट्रासन
१६. सिंहासन
१७. ब्रह्मचर्यासन
१८. सिद्धासन
१९. हंसासन
२०. कुक्कुटासन

Scanned by CamScanner

ऊर्ध्व स्थान :–खड़े होकर किये जाने वाले आसन

१. समपादासन
२. ताड़ासन
३. इष्ट वन्दन
४. त्रिकोणासन
५. मध्यपादशिरासन
६. महावीरासन
७. हस्तिसुण्डिकासन
८. उड्डियान
९. गरुड़ासन
१०. नटराजासन
११. पाद हस्तासन

शिशिष्टि आसन

१. शीर्षासन
२. अर्ध शंखप्रक्षालन
३. मयूरासन
४. चक्रासन

आवश्यक विधि निषेध

१. जिन व्यक्तियों के कान बहते हों, नेत्र-ताराएं कमजोर हों एवं हृदय दुर्बल हों, उन्हें शीर्षासन नहीं करना चाहिए।
२. उदरीय अवयवों से पीड़ा एवं तिल्ली में अभिवृद्धि वाले व्यक्तियों को भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन नहीं करने चाहिए।
३. कोष्ठ-बद्धता (कब्ज) से पीड़ित व्यक्ति को योगमुद्रा पश्चिमोत्तानासन अधिक समय तक नहीं करना चाहिए।
४. हृदय दौर्बल्य में साधारणतया उड्डीयन और नौली क्रिया नहीं करनी चाहिए।
५. फेफड़े के दौर्बल्य में उज्जाई प्राणायाम और कुम्भक न किया जाए।
६. जिन व्यक्तियों में उच्च रक्तचाप रहता हो, उन्हें कठोर यौगिक अभ्यास नहीं करना चाहिए।

सावधानियां

- इन आसनों के अभ्यास यथासम्भव प्रातःकाल के समय करना चाहिए। इस समय पेट हल्का होता है।
- कम उम्र के बालकों को कठिन आसन नहीं करने चाहिए।
- बुखार या रुग्णावस्था में आसन प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

Scanned by CamScanner

- आसन के अभ्यास के लिए स्थान साफ होना चाहिए। वायुमंडल शुद्ध होना चाहिए।
- अभ्यास के समय वस्त्र अधिक नहीं पहनने चाहिए। गंजी, जंघिया आदि तंग न हों।
- आसन एवं प्रणायाम के तत्काल बाद नाश्ता नहीं करना चाहिए। नाश्ते में पेय पदार्थ के अतिरिक्त खाना लाभदायक नहीं होगा।
- प्रारम्भ में हलके आसनों से ही शुरुआत करनी चाहिए।
- आसनों के अभ्यास में शीघ्रता नहीं करके धीरे-धीरे शांति से क्रमबद्ध तरीके से ही अभ्यास किया जाना चाहिए। प्रत्येक आसन के बाद १ मिनट का कायोत्सर्ग करके ही दूसरा आसन प्रारम्भ करना चाहिए।
- आसन प्रारम्भ करने पर आने वाले २-४ दिन शरीर में हल्का-सा दर्द महसूस हो सकता है। इससे घबराकर आसन करना छोड़ना नहीं चाहिए। धीरे-धीरे दर्द अपने आप चला जाएगा।
- अभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व मोटी दरी और उस पर कम्बल बिछा लेना चाहिए।
- किसी भी आसन को केवल एक ओर करके ही नहीं छोड़ देना चाहिए। जैसे दायीं ओर झुककर कोई अभ्यास किया है तो बायीं ओर का अभ्यास भी पूरा करना चाहिए।
- किसी के शरीर की कोई हड्डी किसी कारण पहले टूटी हुई हो तो ऐसे व्यक्ति को उस हड्डी को प्रभावित करने वाला कठिन आसन नहीं करना चाहिए।
- आसनों का अभ्यास करते समय मन प्रसन्न रहना चाहिए। मस्तिष्क शांत रहना चाहिए। किसी भी प्रकार की चिंता या भय नहीं रहना चाहिए। अभ्यास के बाद ऐसा महसूस होना चाहिए कि शरीर ने कुछ श्रम किया है। तभी शरीर हलका-फुलका-फुर्तीला एवं ताजगीयुक्त प्रतीत होगा।
- कुछ आसन ऐसे हैं जिनके अभ्यास के समय श्वास की गति को भीतर या बाहर रोका जाता है। अतः अभ्यास के समय श्वास की गति का उसी के अनुसार ध्यान रखना चाहिए।
- यदि आसन करते समय पसीना आ जाए तो उसे कपड़े से पोंछना नहीं चाहिए। कपड़े से पोंछने के बजाय दोनों हाथों से

Scanned by CamScanner

शरीर पर मल देना चाहिए। इससे त्वचा सुन्दर एवं चमकदार बनती है।

- अभ्यास के समय केवल नाक से श्वास लेना व निकालना चाहिए।
- अभ्यास के बाद पूर्ण विश्राम आसन करना अत्यन्त आवश्यक है। अर्थात् पीठ के बल सीधा लेटकर शरीर के सभी आंगों को बिलकुल शिथिल कर देना चाहिए, मानो शरीर पर आपका कोई अधिकार न रहा हो। ५-७ मिनट तक इसी अवस्था में रहना आवश्यक है।
- यदि किसी कारण से लम्बे समय तक अभ्यास रुक गया हो तो वापस प्रथम दिन ही पूरा अभ्यास न कीजिये। थोड़े से शुरुआत की जानी चाहिए। पूरी मात्रा तक शीघ्र ही पहुंचा जा सकेगा।
- अभ्यास काल में रूखा व बासी आहार नहीं करना चाहिए। सुपाच्य एवं संतुलित भोजन करना चाहिए।
- यह ध्यान में रखने की बात है कि अधिक काम, अति निद्रा या अनिद्रा से आसनों से होने वाले लाभों में कमी आती है।
- यदि किसी विशेष आसन को एक ही स्थिति में अधिक समय तक रखने की इच्छा हो तो ऐसा किया जा सकता है।

प्राणायाम : प्रयोजन

प्राण ऐसी जीवन शक्ति है, जिससे प्राणी जीवित एवं सक्रिय रहते हैं। प्राणायाम जहां प्राण को नियमित और विस्तृत बनाता है, वहां दूसरी ओर प्राण की शक्ति को स्वाधीन बनाकर तेजस्वी भी बनाता है। श्वास प्राणायाम के द्वारा नाड़ियों और कोशिकाओं में प्राण प्रवाहित होता है।

प्राणायाम केवल पूरक, रेचक अथवा कुम्भक नहीं है, बल्कि प्राणायाम प्राण को अनुशासित करने की प्रक्रिया है। प्राणायाम श्वास-क्रिया का सम्यग् नियमन और नियोजन है। प्राणायाम श्वास-प्रश्वास का सम्यग् अभ्यास है। प्राणायाम ही एकमात्र साधन है, जिससे व्यक्ति श्वास, मन और प्राण को वश में कर अपनी सुप्त चेतना को जागृत कर सकता है।

स्वास्थ्य और प्राणायाम

जहां स्वास्थ के लिए आसन उपयोगी है, वहां प्राणायाम उसमें नवजीवन संचार करने वाला है। प्राणायाम प्राण-शक्ति को विकसित और

Scanned by CamScanner

जागृत करता है। इस जागृति का निमित्त प्राणायाम बनता है। श्वास-प्रश्वास को व्यवस्थित एवं संयमित करने से प्राणायाम फलित होता है। अतः श्वास-प्रश्वास पूरक, रेचक और कुंभक को प्राणायाम कह दिया जाता है, किंतु साधना करने वाला साधक इस भेद-रेखा को स्पष्ट समझता है। विद्युत् बल्ब के द्वारा अभिव्यक्त होती है। तारों में प्रवाहित होने वाला विद्युत्-प्रवाह तार एवं बल्ब से भिन्न है, हालांकि बल्ब एवं तार के द्वारा विद्युत् को अनुशासित एवं व्यवस्थित किया जाता है। ठीक विद्युत्-प्रवाह की तरह प्राण भी प्राणायाम के द्वारा जागृत और अनुशासित होता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार श्वास और प्रश्वास की गति का विच्छेद ही प्राणायाम है। जब श्वास-प्रश्वास अनुशासित होकर निग्रह की स्थिति में पहुंचता है, तब प्राणायाम की पूर्णता होती है। "प्राण वै बलम्" अर्थात् प्राण ही बल है—इसके अनुसार प्राण शक्ति-संपन्न होकर शरीर के अंग-अंग में फैलता है, और उसे बलवान बनाता है।

प्राणायाम संजीवन शक्ति है, जिससे शारीरिक स्वास्थ्य तो बनता ही है, साथ-साथ चित्त की निर्मलता भी बढ़ती है। इससे आध्यात्मिक शक्ति को जागृत होने का अवसर उपलब्ध होता है। प्राणायाम मानसिक शांति एवं आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। उससे समाधि की उपलब्धि होती है, व्यक्ति अपने स्वरूप की यात्रा करने लगता है। शारीरिक स्वास्थ्य उसका पहला फलित है।

महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के परिणाम की चर्चा करते हुए लिखा है—"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्"—प्राणयाम के द्वारा प्रकाश पर आया आवरण क्षीण हो जाता है। चेतना पर आया आवरण हट जाता है। प्राणायाम केवल श्वास-प्रश्वास का व्यायाम नहीं है, अपितु कर्म-निर्जरा का वह महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जिससे चित्त की निर्मलता बढ़ती है। ज्ञान का विकास होता है। इन्द्रिय-शुद्धि एवं मन की प्रसत्ति एवं एकाग्रता बढ़ती है।

दहन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथामलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

स्वर्ण, रजत आदि धातुओं के मल को जलाने के लिए अग्नि उपयोगी है वैसे ही इन्द्रिय-विकार को जलाने के लिए प्राणायाम आवश्यक है। प्राण के निग्रह से दोषों का परिहार हो, सिंह की तरह पराक्रम उत्पन्न होता है।

Scanned by CamScanner

प्राणायाम से रक्त का शोधन, जठराग्नि की वृद्धि, देह में स्फूर्ति, लचक और क्रांति बढ़ती है।

प्राणायाम का शरीर और मन पर प्रभाव

प्राण जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक तत्त्व है। उसके बिना जीवन की यह यात्रा खण्डित हो जाती है। भोजन और पानी शरीर धारण करने के लिए अपेक्षित है, तो प्राण के बिना जीवन का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। प्राण सतत-प्रवाही जीवन-शक्ति है। वह प्राणवायु से तेजस्वी बना रहता है। प्राणवायु श्वसन-क्रिया पूरक, रेचक और कुम्भक से सक्रिय होता है।

प्राणायाम क्या है ?

प्राणायाम श्वसन क्रियाओं का सम्यग् नियमन और नियोजन है। प्राणायम श्वास-उच्छ्वास का सम्यग् अभ्यास है। प्राण का व्यवस्थित विस्तार और संयम प्राणायाम है। प्राणायाम से शरीर को शक्ति प्राप्त होती है, वहीं चैतन्य-जागरण की भूमिका का निर्माण होता है। प्राणायाम से रक्त एवं स्नायुमण्डल का शोधन होता है। शरीर-ताप एवं गति-शीलता के लिए हजारों-हजारों नसें रक्त को प्रवाहित करती हैं। रक्त में आए दोष प्राणायाम से विशुद्ध होते हैं और शक्ति का संचयन होता है।

प्राणायाम केवल श्वास और निश्वास के नियमन का ही प्रयोग नहीं है, अपितु मन और इन्द्रियों को संयम में स्थापित कर चैतन्य के द्वार उद्घाटित करता है। प्राणायाम ऊपर से श्वास-उच्छ्वास से संचरण और निरोध की क्रिया दिखाई देता है, परन्तु प्राणायाम से इन्द्रिय और मन सभी प्रभावित होते हैं।

शक्ति की क्रिया और प्रतिक्रिया से प्रतिक्षण रासायनिक परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन से पुराने तन्तु टूटते हैं, नये निर्मित होते हैं। इस टूट-फूट को व्यवस्थित करने के लिए प्राणायाम अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यद्यपि प्रत्येक प्राणी स्वभाविक क्रम से पूरक, कुम्भक और रेचक की क्रिया करता है, परन्तु कार्याधिक्य में यह क्रिया स्वाभाविक और विधिवत् नहीं होती। इससे रुग्णता में वृद्धि होती है। प्राणायाम होने से शरीर, मन, चैतन्य, स्वास्थ्य को उपलब्ध होते हैं।

साधारणतः श्वास की पूरक और रेचक क्रिया में फेफड़ों का आधे से कम हिस्सा उपयोग में आता है। प्राणायाम द्वारा पूर्ण पूरक और रेचक कर

Scanned by CamScanner

हम फेफड़ों का उपयोग कर सकते हैं। विधिवत् प्राणायाम की क्रिया से फेफड़े अधिक शुद्ध वायु ग्रहण करते हैं। दीर्घ रेचन से अशुद्ध वायु निकल जाती है, जिससे शरीर दीप्तमान और स्वस्थ बनता है। प्राणायाम की क्रिया से मस्तिष्क के स्नायु-मण्डल मजबूत एवं तेजस्वी होते हैं। मस्तिष्क की सुप्त शक्तियां प्राणायाम से जागृत होने लगती हैं। प्राणायाम से शरीर का प्रत्येक अंग स्वस्थ और सुन्दर बनता है।

प्राणायाम से फेफड़ों पर सीधा असर होता है। फेफड़ों में छोटे-छोटे तन्तुओं के करोड़ों कुटीर हैं। इनका कार्य है, श्वास को भरना और उसे छोड़ना। जब श्वास अन्दर जाता है तो फेफड़े फैलते हैं और प्रश्वास होता है, तब वे सिकुड़ते हैं। सामान्यतः एक व्यक्ति एक मिनट में १६ से २२ तक श्वास-प्रश्वास करता है। यह श्वास-प्रश्वास ही शरीर की समस्त प्रक्रिया का आधार बनता है। इससे ही फेफड़े रक्त शुद्ध कर शरीर को रोग मुक्त रखते हैं। श्वास-प्रश्वास के समय हम जितने जागरूक या होश में होते हैं, श्वास का परिणाम उतना ही लाभदायक होता है।

प्राण के प्रकार

प्राण शक्ति है, उसे विभाजित नहीं किया जा सकता। जीवन-संचालन की दृष्टि से शक्ति के पांच विभाग किए जाते हैं। सम्पूर्ण शरीर में परिभ्रमण करती हुई यह शक्ति अलग-अलग स्थलों पर भिन्न-भिन्न कार्य करती है। योग के आचार्यों ने उनके नाम इस प्रकार बताए हैं—

प्राण—प्राण का मुख्य स्थल कण्ठ-नली है, जो श्वास-पटल के मध्य है। इसका मुख्य कार्य सक्रियता है, श्वास-प्रश्वास, स्वर यंत्र, भोजन-नलिका आदि से इसका सम्बन्ध है।

अपान—अपान का स्थान नाभि स्थल से नीचे है। अपान उत्सर्जन संस्थान, यकृत, आंत, पेट, हृदय आदि स्थानों का नियंत्रण करता है। उन्हें शक्ति एवं सक्रियता प्रदान करता है।

समान—समान की स्थिति हृदय एवं नाभि के मध्य है। यह पाचन-संस्थान, क्लोम आदि के रस-स्राव को प्रेरित करता है।

उदान—इससे स्वर-यंत्र के ऊपर के स्थान प्रभावित होते हैं। नेत्र, नासिका, कान, मस्तिष्क आदि सक्रिय होते हैं।

ध्यान—यह समस्त शरीर के अवयवों को प्रभावित करता है। इससे समस्त अंगों की संधियां, पेशियां एवं कोशिकाएं क्रियाशील बनती हैं। नाग, कुर्म, क्रिकर, देवदत्त तथा धनंजय पांच उपप्राणों की चर्चा भी योग

Scanned by CamScanner

के ग्रन्थों में आती है। उनका अपना विशिष्ट कार्य है, जिससे हिचकी लेना, छींकना, जम्हाई लेना आदि क्रियाएं होती हैं।

शरीर और चेतना का सेतु-प्राण

शरीर में चैतन्य की अभिव्यक्ति प्राण द्वारा ही होती है। प्राण संपूर्ण शरीर में परिव्याप्त है। जैन परम्परा में प्राणों के विभाग को इस रूप से अभिव्यक्त किया गया है :

१. श्रोत्रेन्द्रिय प्राण	२. चक्षुरिन्द्रिय प्राण
३. घ्राणेन्द्रिय प्राण	४. रसनेन्द्रिय प्राण
५. स्पर्शनेन्द्रिय प्राण	६. मनोबल/प्राण
७. वचन बल/प्राण	८. कायबल/प्राण
६. श्वासोच्छ्वास प्राण	१०. आयुष्य/प्राण

पांच इन्द्रियों को सक्रिय रखने वाले प्रथम पांच प्राण हैं। मन, वचन और काया को सक्रिय रखने वाले मन, वचन और काया-प्राण हैं।

श्वासोच्छ्वास प्राण रक्त शोधन की क्रिया के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर को सक्रिय रखता है। आयुष्य प्राण जीवन की अवधि के अस्तित्व का आधार है।

शरीर तक चैतन्य की धारा को प्रवाहित करने वाले प्राण नाना विधाओं से अपना कार्य करते हैं। श्रवणेन्द्रिय के समस्त क्रिया-कलापों को श्रोत्रेन्द्रिय प्राण नियन्त्रित करता है। इन्द्रिय के दो प्रकार हैं–द्रव्य और भाव। द्रव्य-इन्द्रिय भौतिक है। इसका बाह्याकार और रचना शरीर में स्पष्ट है। द्रव्य-इन्द्रियां भावेन्द्रिय की सूचनाओं को ग्रहरण करती है, वहां बाहर से आने वाले संकेतों को भाव जगत तक पहुंचाती है। इस प्रकार बाहर और अन्तर जगत का सम्बन्ध बना हुआ है। श्रवण-इन्द्रिय की तरह चक्षुरिन्द्रिय आदि कार्य करते हैं।

मन-प्राण, वचन-प्राण और काया-प्राण अपने-अपने कार्यों को सुचारु ढंग से करते हैं।

मन मनोवर्गणाओं के स्कन्धों को शरीर से ग्रहण कर चिंतन, मनन, स्मृति, कल्पना द्वारा अपना कार्य करता है। वचन भी इसी तरह भाषा-वर्गणा के स्कन्धों को शरीर से ग्रहण कर विचार, संकेत स्वर और भाषा के द्वारा अपना कार्य करता है।

द्रव्य-इन्द्रिय और द्रव्य-प्राण, भाव-इन्द्रिय और भाव-प्राण क्रमशः भौतिक और अभौतिक हैं।

Scanned by CamScanner

प्राण का वैज्ञानिक आधार

पदार्थ की शक्ति गति, स्पन्दन और क्रिया के द्वारा अभिव्यक्त होती है। चैतन्य का मूल गुण ज्ञान, शक्ति और आनन्द है। उसका किंचित् अनुभव प्राण के माध्यम से होता है। प्राण की सक्रियता ही हमारे जीवन का आधार है। उसके बिना व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। वह निर्जीव जड़ बन जाता है। प्राण सजीवता का लक्षण है। शरीर में होने वाली सक्रियता का आधार ऊर्जा ही है। मस्तिष्क आदि उसकी अभिव्यक्ति के मुख्य-केन्द्र-स्थल हैं। ऊर्जा सम्पूर्ण शरीर में शक्ति रूप में प्रवाहित होती है, इससे आज कोई इन्कार नहीं कर सकता। विज्ञान आज पदार्थ से चैतन्य की ओर यात्रा करने को बाध्य हो रहा है। विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले अनुसंधानों ने ऐसी सम्भावनाएं उत्पन्न कर दी हैं, जिससे कि प्राण के अस्तित्व से विज्ञान इन्कार नहीं कर सकता। उसे पुनर्जन्म, आत्मा के अस्तित्व एवं कर्तृत्व आदि तथ्यों को देर-सबेर स्वीकार करना ही होगा।

वैज्ञानिकों के एक दल—डॉक्टर बी. इन्यूशिक, वी. ग्रिसवेको, एन. बोरोवेव, एन. शोइस्की, एन. फेदरोवा, एफ. गिवमदुलिन ने सन् १९६८ की खोज के बाद घोषित किया है कि पेड़-पौधे, पशु और मनुष्य अणुओं, परमाणुओं से बने पार्थिव शरीर-मात्र नहीं हैं। इस शरीर के अतिरिक्त एक ऊर्जा-शरीर भी होता है, जिसे उन्होंने नाम दिया है—"द बायोलोजिकल प्लाज्मा बॉडी।" श्रीमती मेरट के अनुसार यह ऊर्जा-शरीर ही भविष्य और दूरानुभूति/टेलीपैथी का अनुभव करता है।

कजाकिस्तान के फिरोव विश्वविद्यालय के कुछ और वैज्ञानिकों ने प्रयोगों से पता लगाया कि ऊर्जा-शरीर की रचना एक प्रकार के उत्तेजित विद्युत्-अणुओं से बने प्रारम्भिक जीवाणुओं के समूह का योग है, पर ऊर्जा-शरीर को मात्र अणुसमूह मानना गलत होगा। वह व्यवस्थित, स्वचालित घटक है। एक घटक के रूप में ऊर्जा-शरीर स्वयं का विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र विस्तृत करता है। हाई फ्रीक्वेंसी फोटोग्राफी के आविष्कारक किरलिएन सन् १९३९ से इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण अनुसंधान कर रहे हैं। एक दिन एक जैसी दो पत्तियां लेकर अनुसंधान कर रहे थे। ये एक जैसी दो पत्तियां एक ही जाति के पेड़ की थीं। दोनों की सूक्ष्म फोटोग्राफी में भारी अन्तर आया। हालांकि दिखने में दोनों पेड़ और पत्तियां समान ही दिखाई देती थीं, परन्तु फोटोग्राफी से आने वाली बीमारी का पहले ही पता लग गया। बाद में वैज्ञानिक ने बताया कि एक पौधे को बीमारी से ग्रसित किया गया था।

Scanned by CamScanner

इसी प्रकार पौधे और पशुओं की मृत्यु के समय लिए गए चित्रों से पता लगा कि जैसे-जैसे मृत्यु हुई, वैसे-वैसे जीवाणु शरीर से लिपटे और चिनगारियां अंतरिक्ष में विलीन होती दिखाई दीं। स्वल्प समय पश्चात् एक क्षण ऐसा आया, जब पौधे और पशु-शरीर से कोई प्रकाश नहीं निकला। इस प्रकाश का आधार प्राण-ऊर्जा है।

हृदय आदि बन्द हो जाने से व्यक्ति की मृत्यु नहीं होती, उसकी मृत्यु आयुष्य-प्राण के विलीन होने से ही होती है। श्वास-इन्द्रिय आदि का प्राण वियोग होने के बाद भी व्यक्ति जीवित हो उठता है। उसका कारण प्राण की स्थिति ही है। चैकोस्लोवाकिया के प्रसिद्ध शिल्पी ब्रेतिस्लाव काफका का मत है कि जीवित प्राणी को एक प्रकार का प्रभा-मण्डल घेरे रहता है। यह प्रभा-मण्डल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सूक्ष्म और संवेदनशील तत्त्व है, जो टेलीपैथी, दूरश्रवण, दूरदर्शन आदि क्रियाओं में कार्य करता है। इसके समाप्त होते ही मृत्यु घटित हो जाती है।

प्राणवायु और प्राण में अन्तर

शब्द-संकेत की अपनी कठिनाई है। कई शब्द अर्थ की अभिव्यक्ति भिन्न रखते हुए भी एक रूप में प्रयुक्त होते हैं। प्राण शब्द भी इसका अपवाद नहीं है। प्राण को ऊर्जा, शक्ति आदि अनेक रूपों में समझा जाता है। योग-ग्रथों में प्राण, अपान आदि पांचों वायुओं को भी प्राण कह देते हैं, परन्तु प्राण और प्राणवायु एक नहीं है। प्राण शक्ति है जो पांचों वायुओं के रूप में शरीर के विभिन्न अंगों में कार्य करती है; इसलिए प्राण शक्ति को भी प्राणवायु समझा जाने लगा है। प्राण सूक्ष्म ऊर्जा है, जबकि प्राणवायु स्थूल तत्त्व है। प्राणवायु सभी अंगों में काम आती है; इसलिए प्राणवायु को प्रधानता मिलना अस्वाभाविक नहीं है। प्राणशक्ति जीवन का आधारभूत तत्त्व है। अतः प्राण और प्राणवायु को एक नहीं समझना चाहिए।

श्वास-प्रश्वास की क्रिया के अवरुद्ध हो जाने को सामान्य भाषा में प्राण निकल गया कहा जाता है, किन्तु श्वास-प्रश्वास और प्राण में मौलिक अन्तर है। श्वास-प्रश्वास जब तक जीवित रहता है, चलता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि श्वास और प्रश्वास ही प्राण है। प्राण जीवन-शक्ति है, जो सम्पूर्ण शरीर में परिव्याप्त है। वह सूक्ष्म शक्ति शरीर के प्रत्येक अंग एवं स्नायुओं में परिभ्रमण करती है, जबकि श्वास-प्रश्वास केवल फेफड़ों में जाता है, जहां रक्त के शोधन में सहयोगी बनता है। अतः प्राण श्वास-प्रश्वास का पर्याय नहीं हो सकता है।

Scanned by CamScanner

प्राणायाम : प्रयोग में सावधानियां

- गंदे, दूषित वातावरण में प्राणायाम न करें।
- तेज वायु में प्राणायाम न करें।
- बिस्तर में मुंह ढककर प्राणायाम न करें।
- भोजन के पश्चात् दो घण्टे तक प्राणायाम न करें।
- सहज प्राणायाम किसी भी समय किया जा सकता है।
- प्राणायाम करते समय पद्मासन एवं वज्रासन उत्तम आसन है।
- प्राणायाम से पूर्व जठर, आंत एवं मूत्राशय को खाली कर लें।
- आसन के पश्चात् कायोत्सर्ग कर प्राणायाम करें।
- शरीर को शिथिल एवं मुखाकृति को शांत एवं प्रतिक्रिया रहित रखें। शरीर के किसी अवयव पर तनाव न आए।
- प्राणायाम का अभ्यासी धूम्रपान एवं अन्य उत्तेजक द्रव्यों का सेवन न करे।
- प्राणायाम अभ्यासी बलपूर्वक श्वास-प्रश्वास की क्रिया न करे। कुंभक, अभ्यास क्रमिक बढ़ाना चाहिए, एक साथ नहीं।
- शीतकाल में शीतकारी, शीतली और चंद्रभेदी प्राणायाम सामान्यतः नहीं करना चाहिए। किंतु पित्त प्रकृति वाले व्यक्ति इन प्राणायामों को कर सकते हैं।
- ग्रीष्मकाल में भस्त्रिका, सूर्यभेदी प्राणायाम, सर्वांगस्तंभन प्राणायाम न करें। किंतु कफ प्रधान प्रकृति वाला व्यक्ति इन्हें कर सकता है। वातप्रधान प्रकृति वाले ठण्डक पहुंचाने वाले प्राणायाम न करें क्योंकि इससे वायु दोष बढ़ता है।
- प्राणायाम के अभ्यास के समय पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन और सुखासन का उपयोग करें। वज्रासन में भी प्राणायाम किया जा सकता है।
- धुआं, धूल, शीलनयुक्त वातावरण में प्राणायाम न करें।
- ज्वर-पीड़ित एवं विक्षिप्त व्यक्ति को प्राणायाम नहीं करना चाहिए। प्राणायाम में बैठने की मुद्रा शांत एवं स्थिर रहे।
- अति आहार, तामसिक गरिष्ठ भोजन का उपयोग न करें।
- दुर्बल एवं हृदय रोगी को भस्त्रिका, सर्वांगस्तंभन प्राणायाम के प्रयोग नहीं करने चाहिए।
- प्राणायाम सिद्धि के लिए उतावलापन न करें। आधा मिनट से

Scanned by CamScanner

क्रमशः धीरे-धीरे अभ्यास को बढ़ाएं। सिंह और प्राण समान है। उतावलेपन से वश करने की कोशिश से स्वयं का नाश कर देता है।

मुद्रा : प्रयोजन

'मुद्रा' शब्द आते ही जो सामान्य बोध होता है, वह करेंसी के रूप में होता है। जब विनिमय के लिए मुद्रण की व्यवस्था की गई, तब से सिक्कों को मुद्रा कहना प्रारम्भ हुआ होगा। ऐसे सामान्य टंकण भी मुद्रण का एक प्रकार है। भारतीय परम्परा में प्रत्येक शब्द के साथ उसकी आत्मा पर विचार किया जाता है। शब्द यद्यपि एक संकेत ही होता है, फिर भी वह उसके निकटतम भाव का स्पर्श करता है। 'मुद्रा' शब्द साधना-पद्धति में विशिष्ट आकृति के लिए प्रयुक्त होता है। आकृति को संस्थान, पोज (pose), मुद्रा भी कहा जाता है। शरीर की भिन्न-भिन्न आकृतियां हमें भिन्न-भिन्न भावों को समझने का अवकाश देती है। मुद्रा ऐसे तो शरीर के ऊपर अभिव्यक्त होने वाली समस्त आकृतियों को ही कहा जाता है, किन्तु हमारी यह विवशता है कि हम समस्त भावों को पकड़ नहीं पाते हैं; इसलिए शरीर पर स्थूल रूप से निर्मित होने वाली विशिष्ट आकृतियों को मुद्रा कहते हैं।

मुद्रा : अन्तर की अभिव्यक्ति

हमारे अन्तर्भाव के साथ शरीर की विभिन्न आकृतियां स्वतः निर्मित होने लगती हैं। हमारा अन्तर् और बाह्य एक दूसरे से इतना सम्बन्धित है कि उस पर घटित होने वाली घटना बाहर से अन्दर प्रतिबिम्बित हो जाती है। अन्तर् का प्रकम्पन बाहर आकृति ले लेता है। अन्तर् में उठने वाले आवेग प्रतिक्षण शरीर पर घटित होते हैं और शरीर पर घटने वाली घटना अन्तर् के प्रकम्पनों को प्रभावित करती है। इसलिए भी प्रतिक्षण हमारी मुद्रा में परिवर्तन होता रहता है। उसे तेज गति वाला 'मूविंग केमरा' भी फिल्मा नहीं सकता। वह भी अनेक उठने वाली तरंगों को स्थूल अवस्था तक पहुंचाने पर ही अंकित कर पाता है। फिल्म पर अभिव्यक्त होने वाली पूरी आकृति कई तस्वीरों का जोड़ है। उसी प्रकार अन्तर् से उठने वाली भावना के प्रकम्पनों का जोड़, एक विशिष्ट आकृति का निर्माण करता है।

मुद्रा की वैज्ञानिकता

भारतीय मनीषियों ने ध्यान के गहन प्रयोगों से गुजर कर जो

Scanned by CamScanner

अनुभूतियां पाईं, उनको बाह्य जगत् में स्थूल रूप से अभिव्यक्त किया। उनकी खोज दो छोरों पर थी, जहां उन्हें चैतन्य की गहराई में उतरकर निराकार का अनुभव कराना पड़ता था। वहां उस गहन और सूक्ष्म को साकार की ओर संकेत देना पड़ता था। निराकार से उठने वाले प्रकम्पन साकार पर एक जैसे प्रतिबिम्बित नहीं होते, तब साकार (शरीर) पर निर्मित की हुई आकृति पूर्णरूप से निराकार का प्रतिनिधित्व कैसे कर पाएगी ? धर्म के सम्मुख सबसे बड़ी कठिनाई है तो यही है कि वह अपनी अनुभूतियों को हस्तांतरित अथवा यंत्रप्रदर्शित नहीं कर सकता। लेकिन उसके अस्तित्व को ठुकराया भी नहीं जा सकता, क्योंकि जो है, उसको कितने तर्क से अस्वीकार करें, वह वैसा का वैसा उपस्थित रहता है। हमारे शरीर पर जो कुछ मुद्रित होता है, वह केवल मानसिक एवं शारीरिक घटना ही नहीं है, उसके साथ-साथ आत्मिक (आंतरिक) भी है। आत्मा की बातें आते ही कुछ लोग चौंकते हैं, इससे क्या ? हम क्या शरीर ही हैं; कुछ कामनाएं और भावनाएं ही हैं ? इतना मान लेने से प्रश्न का समाधान नहीं होता, विज्ञान पदार्थ को तोड़कर परमाणु पर पहुंचा, तब वह एक आश्चर्य में पड़ा। परमाणु जब धन है तब वह उनकी पकड़ में है और जब वह तरंगित होता है तब वह है तो अवश्य किन्तु शक्ति रूप में है। तब हम उसे इंकार कैसे करें ?

बाह्य-मुद्रा से अन्तर् का द्वार

बाह्य-मुद्रा स्थूल है, वह हमारी पकड़ में आती है। उसके सहारे ही हम अन्तर् यात्रा के लिए उतर सकते हैं। अन्तर् से उठने वाले क्रोध के आवेग के साथ हाथ की मुद्रा एक विशेष प्रकार का आकार ले लेती है। सामान्य अवस्था में जब वैसी मुद्रा का प्रयोग करते हैं, तब शरीर और मन पर कुछ तनाव अवश्य प्रकट हो जाता है। प्रेम और विनय से भरा चित्त भिन्न मुद्रा में आ जाता है। उसी मुद्रा का पुनः प्रयोग करने से चित्त प्रेम और विनय से पूर्ण बनता है। बाह्य-मुद्रा के निर्माण से चित्त की एक विशेष स्थिति निर्मित हो जाती है। इस विशेष स्थिति से भावना में प्रगाढ़ता आती है, भावना से प्रभावित चित्त अन्तर्-लोक में प्रविष्ट हो जाता है। वीतराग-मुद्रा, ज्ञान-मुद्रा, ब्रह्म-मुद्रा, कायोत्सर्ग-मुद्रा, महा-मुद्रा, सर्वेन्द्रिय-संयम-मुद्रा, अनिमेष-मुद्रा आदि मुद्राएं अन्तर् को समलयता में लाने के द्वार हैं।

Scanned by CamScanner

अभ्यास

१. आसन और प्राणयाम का संबंध स्पष्ट करते हुए आसन का वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से महत्त्व प्रकट कीजिए।

२. शरीर-सौष्ठव के लिए व्यायाम से योगासनों की श्रेष्ठता बताइये और योगासनों के नामोल्लेख पूर्वक उनकी उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।

३. प्राणायाम का विवेचन करते हुए उसकी उपयोगिता सिद्ध करें।

४. प्राणायाम क्या है? उसके प्रकारों को बताएं।

५. मुद्रा का विश्लेषण करते हुए उसकी वैज्ञानिकता का आधार बताएं।

Scanned by CamScanner

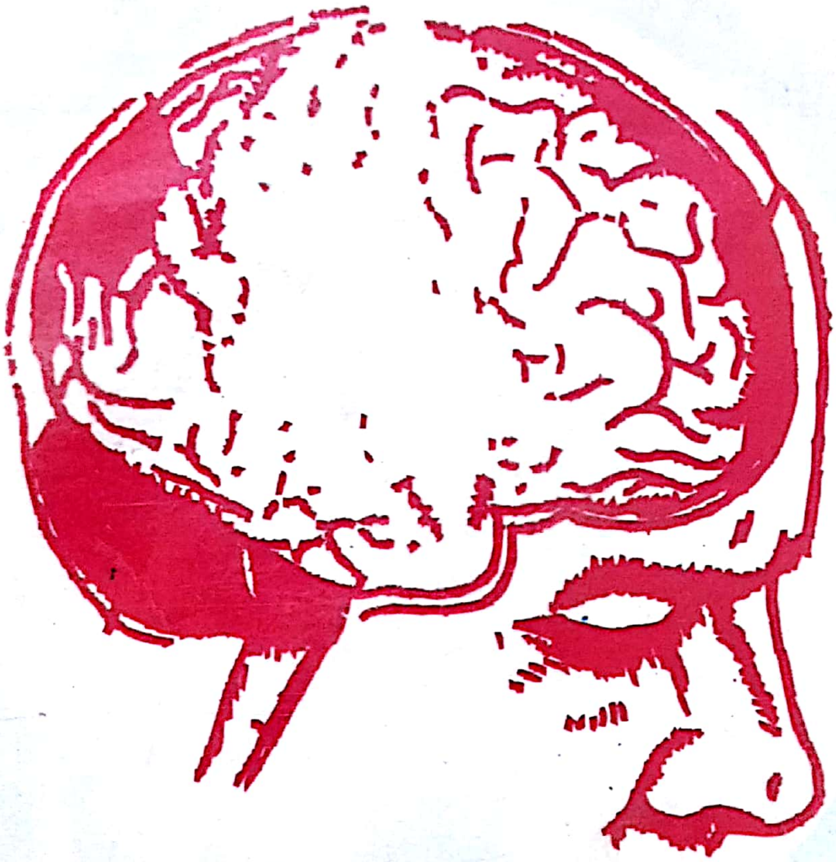

जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)

Scanned by CamScanner